प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण जनवरी—१९५७
मूल्य ५)
अथवा
मूल्य—नए पाँच सौ पैसे

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फर खाँ, आगरा।

साकेत की टीका

मङ्गलाचरण

शब्दार्थ—कुमार = पार्वतीपुत्र कार्तिकेय । अभियोग-गिरा=अभियोग वाणी । अम्ब=पार्वती माता । हरेम्ब=गणेश जी । तुदिल=तोंद और भारी शरीर वाले । कदुक=गेंद ।

भावार्थ—गणेश जी के लिए कुमार कार्त्तिकेय की पार्वती से कही हुई यह अभियोग वाणी विजयिनी हो जिसे सुनकर अपने सभी गणों सहित महादेव जी प्रसन्न होते हैं ।

"हे माता देखो गणेश जी अपने भारी और तोंद वाले शरीर से मान-सरोवर के तीर पर ऊधम मचा रहे हैं । उनकी गोद लड्डुओं से भरी हुई है । सूँड़ से उठाकर वे उन मोदकों को मुझे देने का भाव प्रगट करते हैं । परन्तु लड्डू न देकर बड़े विनोद सहित उन्हें ऊपर गेंद की भांति उछालते हैं, और पुनः सूंड से लपक कर बड़े आनन्द के साथ खाते हैं ।"

प्रथम सर्ग

अयि दयामयि ... आज तू । (पृ० १७)

शब्दार्थ—वरद पाणि=वरद हस्त । देहतन्त्री=देह रूपी वीणा । मानस मराल=मन रूपी हंस । कंठ केकी=मयूर के समान कंठ ।

भावार्थ—कवि कहता है कि हे दयामयी सुखदायिनी शारदा, अपना वरद हस्त अपने इस दास की ओर भी बढ़ा दे । उसकी देह रूपी वीणा को स्वर साधना के योग्य बना दे । वीणा के तारों की भांति उसके शरीर के रोम-रोम में नई झंकार भर दे । वीणा पाणि, मेरे मानस रूपी हंस पर विराजमान होकर उसे सनाथ बना । मधुर स्वरों का भार वहन करने वाला मयूर का मधुर कंठ साथ लेना । हे माँ इस प्रकार अपने सब साज सज कर मेरे साथ अयोध्या चल और मेरा सफल मनोरथ कर ।

स्वर्ग से भी ... लीला धाम है । (पृ० १८)

शब्दार्थ—भाग्य भास्कर=सौभाग्य रूपी सूर्य । अखिलेश=ईश्वर ।

भावार्थ—आज पृथ्वी तल की शोभा स्वर्ग से भी बढ़ गई है। उसके सौभाग्य रूपी सूर्य का उदय हुआ है। स्वय अखिलेश ने आज अवतार लिया है। उनका निराकार रूप मनुज बनकर सागर रूप मे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ है। प्रभु ने मनुज अवतार के रूप में विविध मानस लीलाएँ क्यों की ? मनुष्य बनकर पुत्र रूप में एक मानवी का दुग्ध पान क्यों किया ? यह सब भक्तों को सुख और आनन्द प्रदान करने के लिए है। यही तो प्रभु की भक्त वत्सलता है। यही ससार तो उनका लीला धाम है।

पथ दिखाने ... अनादि अनन्त है। (पृ० १८)

शब्दार्थ—जन दृष्टियों=भक्त जनों के नेत्रों को।

भावार्थ—ससार का पथ प्रदर्शन करने के लिए, पापियों के भार से उसे मुक्त बनाने के लिए, अपने दर्शन से भक्तजनों के नेत्रों को सफल बनाने के लिए प्रभु ने अपने इस लीला क्षेत्र ससार में अवतार लेकर विविध मानवीय लीलाएँ कीं। ससार में जो शिशिर और हेमन्त की भाति दुखदायी दुष्टजनों का शासन है, वह अब शीघ्र ही नष्ट होने वाला है क्योंकि स्वय भगवान बसन्त ऋतु के समान सुखदायी राम राज्य की स्थापना भूतल पर करेंगे। भूमि पर आदि और अन्त रहित ईश्वर ने अवतार ले लिया है। इसलिए पापियों के अन्त होने मे अब विलम्ब नहीं है।

राम-सीता ... भारतवर्ष है। (पृ० १८–१९)

शब्दार्थ—धीराम्बर=आकाश की भाति प्रशात। इला=पृथ्वी। भगवद् भूमि=देवताओं की लीला भूमि। पुण्योत्कर्ष=बढा हुआ पुण्य।

भावार्थ—अपने महाकाव्य के प्रमुख पात्रों का परिचय देते हुए कवि का कथन है "रामचद्र जी धीर प्रशात आकाश के समान हैं तो सीता जी साक्षात पृथ्वी हैं। लक्ष्मणजी शौर्य की मूर्ति हैं, और उर्मिला सम्पत्ति के समान उनके साथ रहने वाली हैं। भरत यदि कर्त्ता हैं तो उनकी पत्नी माडवी उनकी क्रिया हैं। शत्रुओं का विनाश करने वाले शत्रुघ्न जी के लिए श्रुतकीर्ति उनकी मधुर कीर्ति के समान हैं। इस प्रकार राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न, ब्रह्म की चार मूर्तियाँ हैं जिनके रूप में इस सृष्टि की रचना हुई है। सीता, उर्मिला, [illegible]वी और श्रुतकीर्त्ति भी माया की मूर्तियों के समान हैं। दशरथ और

जनक का पुण्योत्कर्ष धन्य है जिनके यहाँ इन सब ने जन्म ग्रहण किया है। देवताओं की लीला भूमि भारतवर्ष भी धन्य है, जहाँ ये सब अवतरित हुए हैं।

देख लो .... उन पर पड़ी। (पृ० १९)

शब्दार्थ—केतु पट=झंडे के वस्त्र। अमर-दृग=देवताओं की दृष्टि। कनक-कलश=साकेत रूपी नारी के स्वर्ण कलश के समान कुच। गेहियों=गृहस्थियों।

भावार्थ—देख लो, यही वह अयोध्या की नगरी है जो स्वर्ग से मिलने के लिए गगन की ओर जा रही है। उसकी लहराती हुई पताकाएँ मानो उसका अचल है। मंदिरों के स्वर्ण कलश ही साकेत रमणी के युगल कुच हैं जिन पर स्वर्ग के देवताओं की सतृष्ण दृष्टि पड़ रही है। अयोध्या नगरी में विविध शालाएँ और भवन शोभायमान हैं। उनकी दीवालें विविध चित्रों से अलकृत हैं। उन चित्रों में मानो भवन निवासियों के पवित्र चरित्र की झलक प्रतिबिम्बित हो रही है।

स्वच्छ, सुन्दर .... भूप पर। (पृ०१९–२०)

शब्दार्थ—अट्ट=अट्टालिकाएँ। पौर कन्याए=नगर की कन्याएँ। प्रसून स्तूप=फूलों का ढेर।

भावार्थ—अयोध्या नगरी में स्वच्छ, सुन्दर और विशाल भवन बने हुए हैं। प्रत्येक द्वार पर इन्द्र धनुष के आकार के तोरण बने हुए हैं। स्वर्ग के देव दम्पत्ति भी इन अट्टालिकाओं की सराहना करते हैं। वे भी स्वर्ग से उतर कर इन अट्टालिकाओं के वासी बनना चाहते हैं।

इन भवनों के विशाल छज्जो पर फल फूलों से लदी हुई विविध लताएं फैली हुई हैं। इन्हीं छज्जो पर फूलों का ढेर लगाकर नगर कन्याएँ अपने राजा पर फूलों की वर्षा करती हैं।

फूल-पत्ते हैं .... अयोध्या है लिखी। (पृ० २०)

शब्दार्थ—गवाक्षो=खिड़कियों। पारावत=कबूतर। शिखी=मोर।

भावार्थ—इन भवनों की खिड़कियों पर विविध फूल पत्ते चित्रित हैं। वे इतने सजीव हैं मानो प्रकृति ने स्वयं उनकी रचना की हो। उन फूल पत्तों पर कभी बिजली का प्रकाश पड़ता है तो कभी चन्द्रमा की चाँदनी अपनी

भावार्थ—आज पृथ्वी तल की शोभा स्वर्ग से भी बढ़ गई है। उसके सौभाग्य रूपी सूर्य का उदय हुआ है। स्वय अखिलेश ने आज अवतार लिया है। उनका निराकार रूप मनुज बनकर सागर रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ है। प्रभु ने मनुज अवतार के रूप में विविध मानस लीलाएँ क्यों की ? मनुष्य बनकर पुत्र रूप में एक मानवी का दुग्ध पान क्यों किया ? यह सब भक्तों को सुख और आनन्द प्रदान करने के लिए है। यही तो प्रभु की भक्त वत्सलता है। यही ससार तो उनका लीला धाम है।

पथ दिखाने .... अनादि अनन्त है। (पृ० १८)

शब्दार्थ—जन दृष्टियों=भक्त जनों के नेत्रों को।

भावार्थ —ससार का पथ प्रदर्शन करने के लिए, पापियों के भार से उसे मुक्त बनाने के लिए, अपने दर्शन से भक्तजनों के नेत्रों को सफल बनाने के लिए प्रभु ने अपने इस लीला क्षेत्र ससार में अवतार लेकर विविध मानवीय लीलाएँ कीं। ससार में जो शिशिर और हेमन्त की भाति दुखदायी दुष्टजनों का शासन है, वह अब शीघ्र ही नष्ट होने वाला है क्योंकि स्वय भगवान बसन्त ऋतु के समान सुखदायी राम राज्य की स्थापना भूतल पर करेंगे। भूमि पर आदि और अन्त रहित ईश्वर ने अवतार ले लिया है। इसलिए पापियों के अन्त होने में अब विलम्ब नहीं है।

राम-सीता .... भारतवर्ष है। (पृ० १८-१९)

शब्दार्थ—धीराम्बर=आकाश की भाति प्रशात। इला=पृथ्वी। भगवद् भूमि=देवताओं की लीला भूमि। पुण्योत्कर्ष=बढ़ा हुआ पुण्य।

भावार्थ—अपने महाकाव्य के प्रमुख पात्रों का परिचय देते हुए कवि का कथन है "रामचद्र जी धीर प्रशात आकाश के समान हैं तो सीता जी साक्षात पृथ्वी हैं। लक्ष्मणजी शौर्य की मूर्ति हैं, और उर्मिला सम्पत्ति के समान उनके साथ रहने वाली हैं। भरत यदि कर्त्ता हैं तो उनकी पत्नी माडवी उनकी क्रिया हैं। शत्रुओं का विनाश करने वाले शत्रुघ्न जी के लिए श्रुतकीर्ति उनकी मधुर कीर्ति के समान हैं। इस प्रकार राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न, ब्रह्म की चार मूर्तियाँ हैं जिनके रूप में इस सृष्टि की रचना हुई है। सीता, उर्मिला, माडवी और श्रुतकीर्त्ति भी माया की मूर्त्तियों के समान हैं। दशरथ और

जनक का पुण्योत्कर्ष धन्य है जिनके यहाँ इन सब ने जन्म ग्रहण किया है। देवताओं की लीला भूमि भारतवर्ष भी धन्य है, जहाँ ये सब अवतरित हुए हैं।

देख लो उन पर पड़ी। (पृ० १६)

शब्दार्थ—केतु पट=झंडे के वस्त्र। अमर-दृग=देवताओं की दृष्टि। कनक-कलश=साकेत रूपी नारी के स्वर्ण कलश के समान कुच। गेहियों=गृहस्थियों।

भावार्थ—देख लो, यही वह अयोध्या की नगरी है जो स्वर्ग से मिलने के लिए गगन की ओर जा रही है। उसकी लहराती हुई पताकाएँ मानो उसका अञ्चल है। मंदिरों के स्वर्ण कलश ही साकेत रमणी के युगल कुच हैं जिन पर स्वर्ग के देवताओं की सतृष्ण दृष्टि पड़ रही है। अयोध्या नगरी में विविध शालाएँ और भवन शोभायमान हैं। उनकी दीवालें विविध चित्रों से अलंकृत हैं। उन चित्रों में मानो भवन निवासियों के पवित्र चरित्र की झलक प्रतिबिम्बित हो रही है।

स्वच्छ, सुन्दर भूप पर। (पृ०१६–२०)

शब्दार्थ—अट्ट=अट्टालिकाएँ। पौर कन्याएं=नगर की कन्याएँ। प्रसून स्तूप=फूलों का ढेर।

भावार्थ—अयोध्या नगरी में स्वच्छ, सुन्दर और विशाल भवन बने हुए हैं। प्रत्येक द्वार पर इन्द्र धनुष के आकार के तोरण बने हुए हैं। स्वर्ग के देव दम्पत्ति भी इन अट्टालिकाओं की सराहना करते हैं। वे भी स्वर्ग से उतर कर इन अट्टालिकाओं के वासी बनना चाहते है।

इन भवनों के विशाल छज्जों पर फल फूलों से लदी हुई विविध लताएं फैली हुई हैं। इन्हीं छज्जों पर फूलों का ढेर लगाकर नगर कन्याएँ अपने राजा पर फूलों की वर्षा करती हैं।

फूल-पत्ते है अयोध्या है लिखी। (पृ० २०)

शब्दार्थ—गवाक्षों=खिड़कियों। पारावत=कबूतर। शिखी=मोर।

भावार्थ—इन भवनों की खिड़कियों पर विविध फूल पत्ते चित्रित हैं। वे इतने सजीव हैं मानो प्रकृति ने स्वयं उनकी रचना की हो। उन फूल पत्तों पर कभी बिजली का प्रकाश पड़ता है तो कभी चन्द्रमा की चाँदनी अपनी

भावार्थ—आज पृथ्वी तल की शोभा स्वर्ग से भी बढ गई है। उसके सौभाग्य रूपी सूर्य का उदय हुआ है। स्वय अखिलेश ने आज अवतार लिया है। उनका निराकार रूप मनुज बनकर साकार रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ है। प्रभु ने मनुज अवतार के रूप में विविध मानस लीलाएँ क्यों की? मनुष्य बनकर पुत्र रूप में एक मानवी का दुग्ध पान क्यों किया? यह सब भक्तों को सुख और आनन्द प्रदान करने के लिए है। यही तो प्रभु की भक्त वत्सलता है। यही ससार तो उनका लीला धाम है।

पथ दिखाने ... अनादि अनन्त है। (पृ० १८)

शब्दार्थ—जन दृष्टियों=भक्त जनों के नेत्रों को।

भावार्थ —ससार का पथ प्रदर्शन करने के लिए, पापियों के भार से उसे मुक्त बनाने के लिए, अपने दर्शन से भक्तजनों के नेत्रों को सफल बनाने के लिए प्रभु ने अपने इस लीला क्षेत्र ससार में अवतार लेकर विविध मानवीय लीलाएँ कीं। ससार में जो शिशिर और हेमन्त की भाति दुखदायी दुष्टजनों का शासन है, वह अब शीघ्र ही नष्ट होने वाला है क्योंकि स्वय भगवान बसन्त ऋतु के समान सुखदायी राम राज्य की स्थापना भूतल पर करेंगे। भूमि पर आदि और अन्त रहित ईश्वर ने अवतार ले लिया है। इसलिए पापियों के अन्त होने में अब विलम्ब नहीं है।

राम-सीता ... भारतवर्ष है। (पृ० १८–१९)

शब्दार्थ—धीराम्बर=आकाश की भाति प्रशात। इला=पृथ्वी। भगवद् भूमि=देवताओं की लीला भूमि। पुण्योत्कर्ष=बढ़ा हुआ पुण्य।

भावार्थ—अपने महाकाव्य के प्रमुख पात्रों का परिचय देते हुए कवि का कथन है "रामचद्र जी धीर प्रशात आकाश के समान हैं तो सीता जी साक्षात पृथ्वी हैं। लक्ष्मणजी शौर्य की मूर्ति हैं, और उर्मिला सम्पत्ति के समान उनके साथ रहने वाली हैं। भरत यदि कर्त्ता हैं तो उनकी पत्नी माडवी उनकी क्रिया हैं। शत्रुओं का विनाश करने वाले शत्रुघ्न जी के लिए श्रुतकीर्ति उनकी मधुर कीर्ति के समान हैं। इस प्रकार राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न, ब्रह्म की चार मूर्तियाँ हैं जिनके रूप मे इस सृष्टि की रचना हुई है। सीता, उर्मिला, माडवी और श्रुतकीर्त्ति भी माया की मूर्त्तियों के समान हैं। दशरथ और

जनक का पुण्योत्कर्ष धन्य है जिनके यहाँ इन सब ने जन्म ग्रहण किया है। देवताओं की लीला भूमि भारतवर्ष भी धन्य है, जहाँ ये सब अवतरित हुए हैं।

देख लो .... उन पर पड़ी। (पृ० १९)

शब्दार्थ—केतु पट=झंडे के वस्त्र। अमर-दृग=देवताओं की दृष्टि। कनक-कलश=साकेत रूपी नारी के स्वर्ण कलश के समान कुच। गेहियों=गृहस्थियों।

भावार्थ—देख लो, यही वह अयोध्या की नगरी है जो स्वर्ग से मिलने के लिए गगन की ओर जा रही है। उसकी लहराती हुई पताकाएँ मानो उसका अन्चल है। मंदिरों के स्वर्ण कलश ही साकेत रमणी के युगल कुच हैं जिन पर स्वर्ग के देवताओं की सतृष्ण दृष्टि पड़ रही है। अयोध्या नगरी में विविध शालाएँ और भवन शोभायमान हैं। उनकी दीवालें विविध चित्रों से अलंकृत हैं। उन चित्रों में मानो भवन निवासियों के पवित्र चरित्र की झलक प्रतिबिम्बित हो रही है।

स्वच्छ, सुन्दर .... भूप पर। (पृ०१९–२०)

शब्दार्थ—अट्ट=अट्टालिकाएँ। पौर कन्याएं=नगर की कन्याएँ। प्रसून स्तूप=फूलों का ढेर।

भावार्थ—अयोध्या नगरी में स्वच्छ, सुन्दर और विशाल भवन बने हुए हैं। प्रत्येक द्वार पर इन्द्र धनुष के आकार के तोरण बने हुए हैं। स्वर्ग के देव दम्पत्ति भी इन अट्टालिकाओं की सराहना करते हैं। वे भी स्वर्ग से उतर कर इन अट्टालिकाओं के वासी बनना चाहते हैं।

इन भवनों के विशाल छज्जों पर फल फूलों से लदी हुई विविध लताएं फैली हुई हैं। इन्हीं छज्जों पर फूलों का ढेर लगाकर नगर कन्याएँ अपने राजा पर फूलों की वर्षा करती हैं।

फूल-पत्ते हैं .... अयोध्या है लिखी। (पृ० २०)

शब्दार्थ—गवाक्षों=खिड़कियों। पारावत=कबूतर। शिखी=मोर।

भावार्थ—इन भवनों की खिड़कियों पर विविध फूल पत्ते चित्रित हैं। वे इतने सजीव हैं मानो प्रकृति ने स्वयं उनकी रचना की हो। उन फूल पत्तों पर कभी बिजली का प्रकाश पड़ता है तो कभी चन्द्रमा की चाँदनी अपनी

एक तरु के   जीवन के लिए। (पृ० २२-२३)

शब्दार्थ—सरल ही है।

भावार्थ—एक ही वृक्ष पर विकसित फूलों की भाँति अयोध्या के नागरिक जन परस्पर हिलमिल कर रहते हैं। जिस प्रकार फूल स्वतन्त्र रूप से विकसित होते हुए भी वृक्ष के अग होते हैं, उसी प्रकार अयोध्या के नागरिक जन भी स्वतन्त्र रूप से अपना जीवन विकास करते हुए सामाजिक उत्तर दायित्वों का भी पालन करते हैं। क्योंकि वृक्ष के फूलों की भाति वे भी समाज के अङ्ग हैं, उसकी शोभा हैं। सभी नागरिक स्वस्थ, शिक्षित, सुसस्कृत और परिश्रम शील हैं। बाह्य रूप से सासारिक सुखों का भोग करते हुए भी आतरिक रूप से योगी के समान वे इन भोगों से उदास हैं। ससार में लीन होते हुए भी वे उससे विरक्त हैं। शारीरिक रोगों से उनके शरीर मुक्त हैं। मानसिक दुख दैन्य का भय भी उन्हें नहीं सताता। धन की सुरक्षा के लिए चोरो का भय भी नहीं है। इस प्रकार अयोध्या निवासी तन, मन, धन तीनों प्रकार से सुरक्षित हैं। सब प्रकार के सुख उन्हें प्राप्त हैं।

एक भी आँगन   बाहर नाट्य हैं। (पृ० २३)

शब्दार्थ—सिंजित=झकार। नेपथ्य=नाट्यशाला का वह भाग जहाँ पात्र अपने अभिनय के अनुरूप अपने को सजाते हैं।

भावार्थ—अयोध्या के सभी घर दाम्पत्य जीवन के सुख से भरे हुए हैं। एक भी घर का आगन बालकों की मनोहर क्रीड़ाओं से रहित नहीं है। ऐसा भाग्यहीन कोई घर नहीं है जहाँ गाय और घोड़ों के लिए स्थान न हो। धन-धान्य से सबके घर परिपूर्ण हैं। रङ्गशाला की सजावट के समान सबके घर सजे हुए हैं। इन घरों के वासी नागरिक जनों की योग्यता और कला कौशल उनके लोकोत्तर आनन्द का कारण क्यों न बनें? चाहे घर हो अथवा घाट सर्वत्र अयोध्या वासियों के ठाट हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सासारिक ऐश्वर्य की देवी ने विलक्षण हाट का आयोजन किया हो। किसी प्रकार की बाधा और भय से मुक्त मार्ग मधुर जल से सिंचे हुए हैं। कोलाहल के मधुर रस से वे गुंजित हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे अयोध्यावासियों के घर तो नेपथ्यशाला हैं और बाहर का भाग नाट्य शाला है। जिस प्रकार नेपथ्य शाला में

अभिनय कर्त्ता अपने-अपने अभिनय के अनुरूप साज सजते हैं, उसी प्रकार इन घरों में नागरिक जन भी विविध कला कौशल और गुणों का अर्जन करते हैं। नाट्य शाला में अपने अभिनय के प्रदर्शन के समान भी नागरिक जन बाहर अपने कला कौशल और गुणों का प्रदर्शन करते हैं।

अलग रहती है   अभिषेक हो। (पृ० २३-२४)

शब्दार्थ—ईतिया—खेती को हानि पहुँचाने वाले उपद्रव। ये छः प्रकार के होते हैं—(१) अतिवृष्टि (२) अनावृष्टि (३) टिड्डियों का आक्रमण (४) चूहे तथा अन्य कीड़ों का लगना (५) पक्षियों से हानि (६) अन्य राजाओं का आक्रमण। भीतिया = भय।

भावार्थ—कृषि को हानि पहुचाने वाले उपद्रव अयोध्या में नहीं होते। भाति भाति के भय अयोध्या मे प्रवेश नहीं पाते, वे तो शून्य में ही भटकने के लिए हैं। यहा की सभी कार्य प्रणाली नीति पूर्ण हैं। रीति और नीति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। राजा और प्रजा का पारस्परिक प्रेम सर्वथा पूर्ण है।

महाराजा दशरथ ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जीवन के इन चार फलों के रूप में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न पुत्रों को प्राप्त किया है। उनकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गई हैं। उनकी बस एक कामना शेष है कि राम का अभिषेक शीघ्र ही पूर्ण हो।

सूर्य का यद्यपि   जब, तब मिटा। (पृ० २४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सूर्य उदय होने मे अभी विलम्ब है, किन्तु रात्रि की कालिमा विलीन होती जा रही है। जिस प्रकार निर्जीव प्राणी पीला पड़ जाता है उसी प्रकार रात्रि का शरीर भी पीला पड़ गया है। (सूर्योदय से पूर्व प्रकृति पीला पन लिए हुए होती है) तारो के रूप में जो रात्रि के सुन्दर आभूषण थे वे भी ढीले पड़ गए हैं, अर्थात् तारो की ज्योति निष्प्रभ हो गई है। सत्य तो यह है कि जहा एक शक्तिशाली राजा न होकर अगणित छोटे छोटे राजा होते हैं वहा राष्ट्र की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। उसी प्रकार आकाश मे अगणित तारों का प्रकाश अगणित खण्डो मे बँटा होने के कारण अंधकार का नाश

नहीं कर पाता। अंधकार तो एक ही प्रकाश-केन्द्र सूर्य के आगमन पर ही नष्ट होता है।

✓ **नींद के भी पैर ... निकट संकोच। है (पृ० २४-२५)**

शब्दार्थ—पैर कपना=भयभीत होना। निष्प्रभ=ज्योति हीन।

भावार्थ—सूर्य का आगमन होते ही जागरण की वेला मे नींद भयभीत होकर भागने लगी। उसके नेत्र रूपी कुमुद कापने लगे। मनोहर वेशभूषा से शृंगार सजा कर उषा आगई। लोगों के मुखरूपी कमल खिल उठे। (सूर्य आगमन पर कुमुद का फूल मुरझा जाता है और फिर कमल खिल उठता है।)

पक्षीगण मधुर कलरव कर चहचहाने लगे। जागरण का स्वर अधिक तीव्र हो उठा। रात्रि को देखे गए स्वप्नों की स्मृति धूमिल होने लगी। प्राणियों को नींद से मुंदे नेत्र खुलने लगे। दीप कुल का प्रकाश क्षीण हो चला। उसकी ज्योति अब चारों ओर प्रकाशित नहीं होती, वह एक घेरे में ही सिमिट कर रह गई है। दीपकुल के प्रकाशित न होने पर चिंता की क्या आवश्यकता है? सूर्य का प्रकाश जो छा रहा है। सूर्य आगमन पर दीपकुल का निष्प्रभ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि इस प्रकार उन्होने अपने गुरुजन के समक्ष सकुचित होकर विनय ही प्रगट की है।

हिम-कणों ने ... रोप के। (पृ० २५)

शब्दार्थ—शून्य=आकाश।

भावार्थ—हिम कणों ने जिसे शीतलता प्रदान की है, सुगन्धि ने जिसे नई स्फूर्ति दी है, वही शीतल मंद सुगन्ध पवन प्रेम से पागल होकर बहने लगा। प्रेम से पागल होने के कारण ही वह अपने समस्त शरीर मे फूलों का पराग मल रहा है।

प्रभात कालीन वेला मे हरी-भरी दूब पर ओस की बूंदें चमक रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी ने बड़े प्रेम के साथ अपना हरा-भरा आंचल फैला दिया है और ओस की बूंदों के रूप में वह आकाश के तारे समेट लाई है। यही कारण है कि अपने खजाने के तारे रूपी रत्नों को हरा हुआ देखकर लालिमा युक्त आकाश मानो क्रोध का भाव प्रगट कर रहा है।

ठौर ठौर लिप   पुत गए। (पृ० २५-२६)

शब्दार्थ—भैरवराग=एक राग विशेष जो प्रभात कालीन समय मे गाया है। श्रुति पुटो = कान रूपी प्यालो।

भावार्थ—स्थान स्थान पर प्रभातियां गाई जा रही हैं। इस प्रकार लोग आलस्य की मलिनता को दूर कर रहे हैं। इस प्रभाती के इस मनमोहक को भैरव अर्थात भयंकर राग कहना उचित नहीं। क्योकि इस राग को ान रूपी प्यालों द्वारा प्राण पी रहे हैं।

आकाश का धूमिल रग अब पूर्णतः स्पष्ट हो चुका है। सूर्य के रथ मे घोड़े जु। गए हैं। इस प्रकार सूर्योदय होने पर चतुर्दिक प्रकाश छा गया सूर्य की किरणो मे ससार के सभी घर बार चमकने लगे हैं, मानो वे पुत कर स्वच्छ बन गए हो।

सजग जन-जीवन   राग-पूर्ण सुहाग है। (पृ० २६)

शब्दार्थ—विश्रात=थकान खोकर। दधिविलोड़न=दधि मथन। रागपूर्ण= भरा।

भावार्थ—थकान खोकर समस्त जीवन सजग और स्फूर्ति से भर गया इस चैतन्य जीवन के सामने मृत्यु जड़ बन गई है। सर्वत्र दही विलोया हा है। स्वाध्याय और शास्त्र मथन हो रहा है। सभी जनों के तन और हर्ष से पुलकित और तृप्त हैं (दधि मथन के नवनीत से लोगो का तन होता है तथा शास्त्र मथन से मन की तृप्ति होती है।)

सूर्योदय के रूप में मानो पूर्व दिशा ने अपना द्वार खोल दिया है। ऐसा होता है जैसे आकाश रूपी समुद्र मे ज्वार उठा हो। यह तो पूर्व का ग्य है जहा सर्व प्रथम सूर्योदय होता है। यह मानो विधि की ओर से देशा को प्रदान किया हुआ प्रेम भरा सुहाग है।

अरुण पट   गढ़ चुके। (पृ० २६–२७)

शब्दार्थ—अरुण पट=लाल वस्त्र। आह्लाद मे=प्रसन्न मुद्रा में।

भावार्थ—महाकाव्य की नायिका उर्मिला के सौंदर्य का वर्णन करते हुए का कथन है—

लाल रग के वस्त्र धारण किए हुए प्रसन्न मुद्रा मे यह कौन बाला राज-

है कि यह अन्य तोता कहाँ से आ गया।

यों वचन कहकर   आँखों में खिला। (पृ० २६)

शब्दार्थ—पङ्कनी=कमलिनी, यहाँ उर्मिला से तात्पर्य है। मराल=हंस। भित्तियाँ=दीवाले।

भावार्थ—हास्य से भरी हुई विनोद की इतनी बातें कह चुकने के उपरान्त लक्ष्मणजी हृदय की प्रसन्नता से मुग्ध होते हुए उर्मिला के निकट स्थिर चाल से चलते हुए उसी प्रकार आकर खड़े हो गए जैसे हंस कमलिनी के निकट पहुचकर रुक जाता है।

सुन्दर चित्रों से सजी हुई विशाल दीवालें भी मानों यह सब कुछ देखकर खड़ी की खड़ी रह गई। ऐसा प्रतीत होता था जैसे लक्ष्मण और उर्मिला के रूप में प्रीति और आवेग का मिलन हो रहा हो। दोनों की ही आँखो में हृदय का उल्लास हँस रहा था।

मुस्करा कर   परस्पर बात थी। (पृ० २६–३०)

शब्दार्थ—मोहिनी=यहाँ उर्मिला से अभिप्राय है।

भावार्थ—अपनी मुस्कान से अमृत बरसाती हुई तथा प्रेम के रसीलेपन को और भी अधिक मधुर बनाती हुई उर्मिला लक्ष्मणजी से बोली 'क्य आप जग गए ? आपको स्वप्न का खजाना प्रिय कब से लगने लगा है लक्ष्मणजी ने तत्काल ही उत्तर दिया "जब से तुम जैसी सुन्दरी ने मेरे ऊप मन्त्र पढ़ दिया है और तुम्हें जब से जागरण भला मालूम देने लगा है। तभ से मुझे ये स्वप्न की निधियाँ भली मालूम देने लगी हैं अर्थात् अब मैं देर जगने लगा हूँ।

विगत रात्रि को प्रेम संलाप मे निमग्न होने के कारण वे बहुत रात्रि त जागते रहे थे। इस समय दोनो पहले सोकर उठने के विषय को लेकर बा। चीत कर रहे थे।

"जागरण है स्वप्न   तुम्हारा दास हूँ।" (पृ० ३०)

शब्दार्थ—मनोज्ञता=मनोहरता।

भावार्थ—उर्मिला ने कहा "जागरण स्वप्न से कहीं अधिक श्रेष्ठ है लक्ष्मण ने उत्तर दिया "प्रेम मे कुछ भी अनुचित नहीं होता। अनुचित

उचित बन जाता है।" उर्मिला बोली "तुम्हारे प्रेम की इस विचित्र रुचि की सराहना ही करनी चाहिए, परन्तु प्रेम में बुद्धि का होना क्या तनिक भी आवश्यक नहीं है?" लक्ष्मण ने उत्तर मे कहा "हे प्रिये, तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी सुन्दर मूर्त्ति, तुम्हारी मजुल छवि सब धन्य है। तुम्हारी श्रेष्ठता को पास पाकर तो मैं भी धन्य हूँ। हे प्रिये! मैं भी तो तुम्हारा दास मात्र हूँ।"

"दास बनने का प्रणय सेवी सदा।" (पृ० ३०)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—उर्मिला ने कहा "तुम यह दास बनने का बहाना क्यों कर रहे हो? क्या अपने को दास कहाकर मुझे भी अपनी दासी बनाना चाहते हो? तुम तो सदैव मेरे देव ही बने रहो और मुझे अपनी देवी बनाए रखो।" उर्मिला इतना कहकर तनिक शात हुई। तब लक्ष्मण ने प्रत्युत्तर में कहा "तुम्हारा कथन ही उचित है। तुम मेरे हृदय की आराध्य देवी बनी रहो और मैं तुम्हारे प्रेम का उपासक बना रहूँ।

फिर कहा आश्रित वत्सले।" (पृ० ३१)

शब्दार्थ—आश्रित वत्सले=शरणागत पर अनुग्रह करने वाली।

भावार्थ—लक्ष्मण ने पुनः कहा "अपने इस भक्त को कुछ वरदान भी दोगी? हे मानिनी तुम्हारे मान का भागी भी मैं बन सकूँगा?" उत्तर में उर्मिला बोली "उपासक का यह धर्म नहीं होता कि वह किसी कामना को लेकर उपासना करे। उसकी भक्ति तो निष्काम होनी चाहिए।" लक्ष्मण ने कहा "अपनी छोटी-बड़ी सभी कामनाओं को मैंने तुम्हारे चरण-कमलों पर समर्पित कर दिया है। वह मेरी नहीं तुम्हारी ही वस्तु है। इसलिए हे शरणागतों पर अनुग्रह करने वाली देवी! शरण में आई हुई इन कामनाओं को चाहे स्वीकार करो अथवा अस्वीकार।"

"शस्त्रधारी हो न दे जो हरा। (पृ० ३१)

शब्दार्थ—शिरोरुह=मस्तक, केश समूह। पल्लवपुटो=अधर सम्पुटों।

भावार्थ—अपने को लक्ष्मणजी की ओर से आश्रित वत्सले का सम्बोधन पाकर उर्मिला कुछ तीक्ष्ण स्वर में कहती है "तुम शस्त्रधारी हो और विष से बुझे भी हो। (लक्ष्मण जी शेष नाग के अवतार हैं, विष से बुझे सम्बोधन

द्वारा इसी ओर संकेत किया गया है ।) इसीलिए तुम मुझे काँटों में घसीट रहे हो। मैं अबला और विवश नारी तुम्हारा कुछ प्रतिकार भी नहीं कर सकती। तुम चाहे जो कुछ करो, किन्तु अपनी कामनाओं को मेरे चरणों पर समर्पित मत करो। वे तो मेरे मस्तक पर शिरोधार्य करने के लिए हैं।

लक्ष्मण जी का उत्तर है—हे निष्ठुर प्रिये, मेरी कामनाओं को मस्तक पर धारण कर मुझे साँप मत पकड़ाओ (सिर का केश समूह लक्ष्मणजी के लिए साँपों के समान हैं।) इन्हें तो देखकर ही विष चढ़ने लगता है। तुम्हारे इन पल्लव समान कोमल अधर सम्पुटों में अमृत भरा हुआ है जो नीरस मन को भी सरस बना देता है। अतः विष के स्थान पर मुझे यही अमृत रस प्रदान करो।

'अवश-अबला' फलती हुई।" (पृ० ३१-३२)

शब्दार्थ—कोटर=खोखला भाग। गुहा=गुफा। गर्त्त=गड्ढे। सलिल-आवर्त्त=पानी के भँवर। चिंतामणि=एक रत्न, जो समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देता है। कल्पवल्ली=कल्पवृक्ष की डाली, जो समस्त अभिलषित फल प्रदान करने वाली होती है।

भावार्थ—अपनी पत्नी उर्मिला को सम्बोधित करते हुए इन पंक्तियों में लक्ष्मणजी ने नारी जाति की महत्ता पर सुन्दर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं—कौन तुमको अनाथ और शक्तिहीन बतलाता है। संसार का समस्त बल, सारी वीरता, गम्भीरता और ध्रुव के समान अटल धीरता, सब तुम्हारे एक भ्रूभंग पर न्यौछावर हैं। तुम्हारी ही प्रेम भरी दृष्टि को पाकर यह समस्त संसार जीवित है और तुम्हारी क्रोध भरी दृष्टि के कारण मरण तुल्य है।

भूमि के कोटर, गुफाएं, पर्वत, गड्ढे, शून्य से भरा नभ, जल के भंवर आदि जितने भी भयप्रद और दुख से भरे स्थान हैं, वे भी नारी जाति के सहवास से प्राणीसमुदाय को स्वर्ग के समान आनन्ददायक प्रतीत होते हैं। पुरुष के लिए अपनी जन्मभूमि (पीहर) का मोह छोड़ कर उस पर अनन्य अनुग्रह करती हो। पुरुष हृदय की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करती हुई, चारु चिन्तामणि से स्पर्द्धा करती हो। समस्त अभिलषित कामनाओं को पूर्ण करने वाली कल्पवृक्ष की वल्लरी के समान फल फूल कर दिव्य फल का दान करती हो

'खोजती हैं यों हलका करे। (पृ० ३२)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लक्ष्मण द्वारा वर्णित नारी जाति की महिमा के प्रत्युत्तर में उर्मिला भी नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हुई पुरुष जाति के महत्व की व्याख्या इन शब्दो मे करती हुई कहती है कि हम नारियों को पुरुष रूप मे एक आश्रय चाहिए। हमें तुम जैसे ही एक पात्र की प्राप्त करने की इच्छा होती है, जिसे अपना समझ हम अपने हृदय की दुख सुख की बाते कर सकें और इस प्रकार सासारिक भार को हलका कर सके। (वास्तव में लक्ष्मण के शब्दों में नारी जाति कल्प वल्लरी के समान है तो उर्मिला के शब्दो में पुरुष जाति इस कल्प वल्लरी को सहारा देने वाला आश्रय रूप है। यहाँ उर्मिला दम्पत्ति विज्ञान का कितना सुन्दर भाव प्रकट करती है। स्त्री और पुरुष का यह सम्बन्ध अनादि काल से इसीलिए चला आ रहा है कि जीवन में दोनों एक ऐसे साथी की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, जिससे वे एक दूसरे से अपने सुख दुख कह सके।)

तदपि तुम—यह अयोध्या में धरे।" (पृ० ३२–३३)

शब्दार्थ—सारिका = मैना।

भावार्थ—पारस्परिक वार्त्तालाप के बीच उर्मिला को तोते का ध्यान आता है और तोते की ओर उन्मुख होकर वह पूछती है "यह तोता न जाने या कहना चाहता था? अरे बोल तुझे क्या चाहिए।" उत्तर में तोते ने हा 'मुझे तो जनकपुर की राजवाटिका में विहार करने वाली सुकुमार और न्दर मैना चाहिए।" तोते के मुँह से अपनी प्रदान की गई शिक्षा की यह फलता देखकर लक्ष्मण हँस उठे। तोते के इस अप्रत्याशित उत्तर से उर्मिला ास्मित होगई। उसके खजन समान नेत्र अपने आप में ही उलझ कर रह ए। उत्तर में उर्मिला ने कहा "जनकपुर की सारिका को प्राप्त करने के लिएं ाते को भी धनुष तोड़ना होगा।" लक्ष्मण ने कहा—हे प्रिये उस धनुष को प्रभु रामचन्द्रजी पहले ही तोड़ चुके हैं। फिर भला टूटे हुए धनुष का ा. क्या तोड़ना। तोते का काम तो वैसे भी अनार का वह दाना फोड़ना है

जो तुम्हारे दाँतों से स्पर्द्धा करने के लिए अयोध्या या मिथिला में जन्म धारण करे।

ललित ग्रीवा परस्पर जीत है। (पृ० ३३)

शब्दार्थ—ग्रीवा = गर्दन। गीतातीत = शब्दों के वर्णन से परे।

भावार्थ—अपनी सुन्दर ग्रीवा को तिरछी घुमाकर आकर्षक मुद्रा में उर्मिला ने अपने प्रियतम लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहा "तोते पढ़ाने के अतिरिक्त भी तुमने और कोई काम किया है ?" लक्ष्मण ने मुस्कराते हुए कहा "तुम्हें पाकर मैं अभी यही सीख सका हूँ।" इसके उत्तर में उर्मिला 'देख लूँगी' बस इतना ही कह सकी। इसके उपरात विविध प्रकार से हास परिहास का अमृत पति पत्नी के बीच बहने लगा। परस्पर के इस विनोद में कभी पति की विजय होती, कभी पत्नी की। परन्तु हार कर भी वे विजय से अधिक आनंद का अनुभव करते। प्रेमियों का प्रेम सचमुच वर्णनातीत है अर्थात् शब्दों उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी हार में भी परस्पर जीत है।

"कल प्रिये, निज सारे शीघ्र ही।" (पृ० ३३-३४)

शब्दार्थ—अतिरेक=बाहुल्य। पूत=पवित्र। पर पावन=दूसरों को पवित्र करने वाला। क्षत्र-कुल=क्षत्रिय कुल।

भावार्थ—उर्मिला को राम के राज्याभिषेक की सूचना देते हुए लक्ष्मण कहते हैं "हे प्रिये कल आर्य रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक होगा। सर्वत्र आनद और उल्लास छा रहा है। राम द्वारा सञ्चालित राज्य की व्यवस्था होने जा रही है। रामराज्य के रूप में ऐसा नया युग पदार्पण कर रहा है जो स्वय पवित्र है और दूसरों को भी पवित्र करने वाला है। आर्य देव नई वेश भूषा से सुसज्जित होंगे। क्षत्रियकुल का कार्य शीघ्र सम्पन्न होगा। यह दृश्य देखकर हमारे नेत्र सफल होंगे। हमारे समस्त पुण्य कर्मों का फल हमें प्राप्त होगा।"

"ठीक है पर दूगा यहाँ।" (पृ० ३४)

शब्दार्थ—सेंतमेंत=बिना कुछ मूल्य दिए।

भावार्थ—लक्ष्मण के मुँह से राज्याभिषेक की सारी बातें सुनकर उर्मिला बोली तुम्हारा कथन ठीक है। परन्तु यदि तुम बदले में कुछ पुरस्कार देने को रहो, अपने नेत्रों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले फल को बिना मूल्य का न

हने दो, तो मैं तुम्हें अभी अभिषेक दिखला दूँ और उसका दृश्य तुम्हारे सामने ला दूँ।" तभी हर्ष से पुलकित होकर लक्ष्मण ने आग्रह पूर्वक कहा – क्या तुमने चित्र बनाया है ? वह कहाँ हैं ? तनिक उसे लाकर दिखलाओ। मैं तुम्हें बदले में 'कुछ' नहीं 'बहुत कुछ' दूँगा।

उर्मिला ने माया थी लिए। पृ० (३४–३५)

शब्दार्थ—मचिया=पीढ़ा, चौकी। चित्रस्थ=चित्रलिखित से। उत्कर्णता=उत्कण्ठा। वर्ण-निधि=रगो का भडार। चित्र के मिप=चित्र के बहाने से। मोहन जाल = मोहित करने वाला जाल।

भावार्थ—उर्मिला ने प्रेम की साकार मूर्ति बनकर तब मणिमुक्ताओं से जड़ी स्वर्ण चौकी पर प्रियतम को विराजमान कर चित्र उनके सम्मुख ला उपस्थित किया। चित्र, चित्र होकर भी अद्भुत था। उसे देखकर लक्ष्मण भी चित्रलिखित से होगए। चित्र भावो की सजीवता और रगों के उचित तथा सुन्दर विधान के कारण स्वय बोलता हुआ सा प्रतीत होता था। फलतः सवाक चित्र के वाक्यो को सुनने की तीव्र उत्कण्ठा लक्ष्मण के हृदय में हुई।

चित्रकार की तूलिका में सर्वत्र सतुलन था। ऐसा प्रतीत होता था मानो चित्रपट रूपी आकाश पर भाँति-भाँति के रगो का भडार खुल गया हो। अथवा चित्र के रूप में मानो स्वय माया ही नेत्र रूपी पक्षियो को फसाने के लिए मोहन जाल लिए खड़ी हो।

सुध न अपनी जिस पर है तना। (पृ० ३५-३६)

शब्दार्थ—क्षेम से=कुशलता पूर्वक। रोध=रुकावट। वैदूर्य=मणि विशेष। क्षौम=सन आदि के रेशों से बुने वस्त्र।

भावार्थ—लक्ष्मणजी बड़ी देर तक चित्र देखते रहे। चित्र देखकर वे अपनी सुध बुध ही भूल गए। अन्त में वे बड़े प्रेम पूर्वक बोले "हे प्रिय तुम कुशलता पूर्वक (युग युग तक) जीओ।

चित्र मे दुर्ग के सम्मुख दूर तक जहाँ दृष्टि का अवरोध नहीं है विशाल सभा मण्डप बना हुआ है। जिस प्रकार माँग मे मोती गूँथे जाते हैं, उसी प्रकार मण्डप की झालरों मे सुन्दर मुक्ता मोती पिरोए गए हैं। वैदूर्य मणि के

विशाल स्तम्भ बने हुए हैं। पताकाओं पर कुल गुरु सूर्य के चिन्ह अंकित हैं। मंडप के द्वार पर विजय और हर्ष की दुंदुभी बज रही है। समस्त प्रहरी जन प्रसन्नता से भरे हुए हैं। छत में सन आदि रेशे से बने हुए गुच्छे लटक रहे हैं। उनके सामने चँवर भी तुच्छ हैं। कमल के समूह के समान पटासन पड़े हुए हैं और बाघाम्बरों के पाँवड़े बिछे हुए हैं। बीच में रत्नजटित सिंहासन सुशोभित है, जिस पर छत्र और चँदोवा तना हुआ है।

आर्य दम्पति ... बुलाये जा सके। (पृ० ३६-३७)

शब्दार्थ—आर्य दम्पति = रामचन्द्र जी और सीता जी। शालग्राम = विष्णु की मूर्त्ति। नय निष्ठ=नीति निपुण। सुर सभा-गृह=देवताओं का सभा भवन। पुरजन=नागरिक जन। मांडलिक नरवीर=मंडल या प्रान्त के शासक।

भावार्थ—सिंहासन पर आर्य रामचन्द्र जी और आर्या सीता जी विराजमान हैं। वे साक्षात शालग्राम और तुलसी के समान शोभायमान हो रहे हैं। समस्त सभासद गण सभा की मर्यादा से युक्त और नीति निपुण हैं। कुलगुरु वशिष्ठ अभिषेक जल छोड़ रहे हैं। रामचन्द्र जी और सीताजी नम्रता वश कैसे झुके हुए हैं, मानो संसार का भार वहन कर रहे हों। स्थान स्थान पर जड़ी हुई मणियों का प्रकाश बरस रहा है, जिसके तेज में सारी सभा डूबी हुई है। देवताओं का सभा भवन भी इसी सभा मंडप का प्रतिबिम्ब है जो आकाश रूपी कांच में प्रतिबिम्बित हो रहा है। पंच लोग, नागरिक जन, मंत्री सभी प्रमुदित भाव से खड़े हुए हैं। विविध मंडलों के वीर अधिपति कैसे प्रसन्न खड़े हुए हैं। अपने हाथों में वे विविध राज्य भेंटें लिए हुए हैं। अपने अपने देश के अनुरूप उनकी विचित्र वेश भूषा है। किन्तु सभी मित्र नरेश इस राज्याभिषेक में सम्मिलित नहीं हो सके हैं। भरत भी तो इस अवसर पर नहीं बुलाए जा सके।

यह तुम्हारी ... पारस्परिकता ही प्रिये। (पृ० ३७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—राम के राज्याभिषेक में भरत सम्मिलित न हो सके परन्तु उर्मिला ने अपने चित्र में भरत की उपस्थिति दिखलाई है। इस सम्बन्ध में लक्ष्मण जी कहते हैं कि तुम्हारी भावना का स्फुरण उचित ही है क्योंकि जो

अपूर्ण है उसी की पूर्ति करना तो कला का चरम प्रयोजन है। ससार में यत्र तत्र जो कुछ हो रहा है, इस यथार्थ की अभिव्यक्ति ही यदि कला कर सकी तो वह निरर्थक है। कला तो यथार्थ से आगे आदर्श वादिनी बन कर यह भी स्पष्ट करती है कि कब और कहा क्या होना चाहिए। जो कला को कला के लिए ही मानते हैं, वे उसे स्वार्थिनी बनाते हैं। कला तो जीवन के लिए है और जीवन कला के लिए। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है और दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।

मंजरी सी अगुलियों .... निमज्जित होगए। (पृ० ३७-३८)

शब्दार्थ —सरल है।

भावार्थ--(प्रेममग्न लक्ष्मण उर्मिला से बोले) मंजरी के समान तुम्हारी सुकुमार उङ्गलियाँ कला में इतनी प्रवीन हैं। इन्हें देखकर मैं अपनी सुधबुध क्यों न भूल जाऊँ ? क्यों न मैं मस्त गज सा झूमता हुआ तुम्हारे कर रूपी कमल को चूम लूँ ? कमल के समान खिले हुए कर को आगे बढ़ाकर मुस्कराती हुई उर्मिला बोली "तुम मस्त हाथी बन तो रहे हो परन्तु कहीं विवेक मत खो देना। क्योंकि हाथी जैसे कमल को तोड़ डालता है वैसे कहीं मेरे हाथ को कमल समझ कर मत तोड़ डालना। उर्मिला के ये वचन सुनकर लक्ष्मण जी लज्जित होगए और प्रेम के सागर में निमग्न होगए।

पकड़ कर सहसा .... मैं दूँगी वही।" (पृ० ३८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—— लक्ष्मण जी ने सहसा उर्मिला का वही हाथ पकड़कर बार-बार उसका चुम्बन लिया और बोले "हे प्रिये तुम्हारी समानता में एक भी उपमा उपयुक्त नहीं बैठती। यह उचित भी है क्योंकि वे सब तुम्हारे योग्य भी नहीं हैं। अब मैं इस विषय में सदैव सावधान रहूँगा और तुम्हें अनुपमा ही कहा करूँगा। परन्तु निरुपमे मेरा चित्र कहाँ है ?" उत्तर मे उर्मिला ने कहा—"हे प्रियतम राम के राज्याभिषेक में तुम्हारा कौन सा स्थान है ?" "हे प्रिये मैं भला कौन सा उत्तरदायित्व वहन करूँ। मैं लक्ष्मण तो राम का एक सैनिक मात्र हूँ।" लक्ष्मण ने उर्मिला को उत्तर दिया। उर्मिला बोली "आप चाहे राम के सैनिक मात्र हों, परन्तु उर्मिला तो आर्या सीता की

बहिन है। यह उल्टा योग भी अच्छा ही रहा कि पति तो महाराज के सैनि
और पत्नी महारानी की बहिन। खैर, यदि तुम कुछ देने के लिए प्रस्तुत
तो मैं इसी समय तुम्हारा चित्र अङ्कित कर सकती हूँ।" लक्ष्मण ने कहा य
चित्र न बन सका? उर्मिला ने कहा तो बदले में वही वस्तु मैं आपको दूँगी।

छोडकर यों ... घट पर जारही। (पृ० ३६)

शब्दार्थ—अमल=निर्मल। सात्विक सुमन=हृदय के सात्विक भाव
पाटव=कुशलता, चिबुक=ठोड़ी। पीत तरग=पीली रेखा।

भावार्थ—इस प्रकार लक्ष्मण से शर्तवद्ध होकर उर्मिला शीघ्र ही चि
निर्माण के कार्य में रत होगई। लक्ष्मण के समक्ष एक ज्योति सी जगी ह
थी। उर्मिला की तूलिका चित्र पट पर चलने लगी। उसने सर्व प्रथ
लक्ष्मण के अ ग प्रत्यगों की गठन को चित्र में उतारा। रगों में चित्रि
शारीरिक अवयव ऐसे प्रतीत हुए मानो निर्मल जल में अनेक कमल खिले हों
इसके साथ ही उर्मिला के हृदय में सात्विक भावों के सुमन खिल उटे
सात्विक भावों के उद्रेक से हाथों में भी कम्प होने लगा। सुमन पराग
भाँति उर्मिला के मस्तक पर पसीना झलक आया। चित्रकला में उर्मिला
निपुणता पूर्ण होकर भी कुछ मन्द होगई। लक्ष्मण की ठोड़ी की रचना कर
समय तो हृदय उमगों के अतिरेक से भर गया। (लेखिका की तूलिका उस
वश में नहीं रही) रग फैल गया। लेखनी आगे की ओर झुक गई। एक पीत
रेखा जो बनानी थी वह बह गई। उसका रग अभिषेक घट पर जा गिरा।

हँस पड़े सौमित्रि ... अपना ले लिया। (पृ० ३६–४०)

शब्दार्थ—परिरम्भण=आलिंगन। अपाग=चितवन।

भावार्थ—भावों से भरे लक्ष्मण यह देखकर हँस पड़े। उर्मिला भी अ
मात्र ही कह सकी। लक्ष्मण ने कहा "तुम तो चिबुक की रचना करने चल
थी, परन्तु रग की रेखा अभिषेक घट मे जा गिरी।" उर्मिला लज्जित होक
मुस्करा पड़ी। मोतियों की लड़ी के समान उस हँसी की छवि थी। लक्ष्मर
को सम्बोधित कर उसने कहा "आज तो तुम्हारी बन पड़ी है। चाहे जो कु
कहो। मैं क्या करूँ, आज तो मेरा मन ही मेरे वश मे नहीं रहा। शर्त हा
कर तुम मुझे क्या प्रदान करते, बोलो, वही मैं देने को प्रस्तुत हूँ, परन्

हारी माँग विचित्र न हो।" लक्ष्मण ने उसी समय अपने दोनो हाथ आगे
ा दिए और कहा "हे प्रिये बस मुझे एक आलिगन चाहिए।" प्रियतम
क्ष्मण की प्रिया उर्मिला यह सुनकर लज्जा से सकुचित होगई। आलिगन
बदले उसने तिरछी चितवन से लक्ष्मण की ओर देखा। किन्तु लक्ष्मण ने
से नुकसान में ही रहने दिया और स्वय ही अपनी भुजाओ में जकड़ कर
पना अभिलषित आलिगन प्राप्त कर लिया।

बीत जाता एक छूटी उर्मिला। (पृ० ४८-४९)

शब्दार्थ—विरुदावली=यशगान। सूत=चारण। मागध=भाट। बदीजन=
ारण लोग। मुरज = मृदग। वैतालिक=वे स्तुति पाठक जो राजाओ को
तुति पाठ करके जगाते हैं। सुरावट=सुरीलापन। चचला=बिजली।

भावार्थ—आलिगन के उन क्षणो में एक युग भी पल के समान
ीत जाता है। परन्तु इसी अवसर पर आनन्द की मधुर ध्वनियाँ सुनाई देने
ागीं। द्वार पर यश गान होने लगा, जिसकी ध्वनि से गगन मडल गूजने
ागा। चारण और भाट कीर्त्ति गान करने लगे। उन्होने नए छदो और
ाबधों की रचना की। मृदग, वीणा वेणु आदि विविध वाद्य बजने लगे।
मधुर वैतालिक अपने स्तुति पाठो की सुरीली ध्वनियों से राजाओं को जगाने
लगे। प्रभात के ये सब लक्षण जानकर आलिंगन बद्ध दम्पत्ति चौंक उठे जैसे
भवन मडल हिल गया हो। उर्मिला बिजली की तरह अपने प्रिय की भुजाओ
से छिटक कर दूर हो गई।

तब कहा सौमित्रि प्रेम में मग्ना हुई। (पृ० ४९)

शब्दार्थ—कुलदेव=सूर्य।

भावार्थ—तब लक्ष्मण ने कहा कि अब मै चलता हूँ। परन्तु याद रखना
इसका बदला मैं अवश्य लूगा। अपने कुल की वृद्धि देखने के लिए कुल
देवता सूर्य पाताल से बडी शीघ्रता के साथ निकल आए हैं। प्रिये दिन निकल
आया है अब मुझे विदा दो। फिर तुमसे मिलने का अवकाश देखे कब
मिलता है? उर्मिला कुछ कहना चाहती थी, पर रुक गई। वह अपने अचल
का वस्त्र पकड़कर झुक गई। साक्षात भक्ति के समान पृथ्वी पर झुककर वह
अपने पति रूप परमात्मा के प्रेम मे निमग्न हो गई।

चूमता था भूमितल सनाथ। (पृ० ४१)

शब्दार्थ—अर्द्ध विधु=अर्द्ध चन्द्र। दृग जाल=नेत्र के समूह। बाल=सिर के केश।

भावार्थ—पृथ्वी पर झुका हुआ उर्मिला का मस्तक अर्द्ध चन्द्र के समा भूमि तल को स्पर्श कर रहा था। उसके सिर के केश प्रेम के अनेक ने बनकर भूमि पर बिछ रहे थे। प्रियतम लक्ष्मण का हाथ छत्र के समा मस्तक पर उठा हुआ था। उस समय प्रकृति के समान सीता स्वय अपने आ सनाथ हो रही थी।

इसके आगे विरह वियोग। (पृ० ४२)

शब्दार्थ—अनिमेष = एक टक देखना। मनो नियोग=मन का मिलन

भावार्थ—इसके उपरात विशेष प्रकार से विदा हुई। कुछ समय के लि पति पत्नी एक दूसरे की ओर एकटक भाव से देखते रहे। जहाँ हृदयों व अखड और चिर मिलन होता है वहाँ भला विरह और वियोग कैसा?

द्वितीय सर्ग

लेखनी अब   दिन की रात (पृ० ४३)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—हे लेखनी अब विलम्ब मत कर । माँ सरस्वती और दुर्गा का गान करती हुई उस दिवस की रात्रि का भी अब वर्णन कर जिसका ात इतना सुखद था ।

धरा पर   फूला सब ओर (पृ० ४३–४४)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—स्वर्ग के समान यह साकेत धन्य है जो कि इस पृथ्वी पर धर्म आदर्श का गृह है । कल राम का राज्याभिषेक होने वाला है फिर हर्ष और लास का चारो ओर उद्रेक क्यो न हो ! दशो दिग्पालो के गुण जिनमे द्रीभूत हो चुके हैं पृथ्वी पर इन्द्र के समान शोभित राजा दशरथ धन्य । सदैव सुख का प्रवाह बहाने वाली राजा की तीनों रानियाँ त्रिवेणी के य हैं । आज आनन्द का ठिकाना नहीं है । आम्रवन की भाति समस्त नगरी से उत्फुल्ल है ।

किन्तु हा   यह सुख सृष्टि ।" (पृ० ४४)

शब्दार्थ—अवदात=उज्ज्वल ।

भावार्थ—परन्तु अयोध्या मे आनन्द के सुमन क्षेत्र फल न सके । थरा के नेत्रो ने कीट बनकर पहले ही उन्हें नष्ट कर दिया । मथरा की दशा खकर कैकेयी ने स्वय अपनी ओर से ही उससे कहा अरे जब वत्स राम का ज राज्याभिषेक होने जा रहा है, तब ऐसे हर्ष के अवसर पर तू उदास क्यों ी हुई है । मथरा ने बिना किसी भय और सकोच के कहा "आप को भी । चिता हो रही है ।" मंथरा की यह बात सुनकर कैकेयी ने हँसकर कहा से एक उज्ज्वल आभा दीप्तिमान हो उठी हो" सचमुच मुझको एक दुख

है कि भरत ननिहाल में हैं। आज राम के राज्याभिषेक के सुख ससा
देखकर वह अपने नेत्रो को सफल मनोरथ न बना सके।

ठोककर अपना मेरा बेटा राम ?" (पृ० ४५)

शब्दार्थ—किंकरी=दासी। वाम=उल्टी।

भावार्थ—अपने बुद्धिहीन निष्ठुर माथे को ठोककर और यह प्रगट
कि हमारे भाग्य फूट गए दासी मथरा ने तुरन्त ही कहा "बस आपके
पन की हद हो गई।" कैकेयी मथरा के अभिप्राय को न समझ सकी।
से उसने पूछा तू यह विपरीत बात कैसे कह रही है ? राम के राज्याभि
प्रति यह सब क्या उपद्रव है ?" क्या राम मेरा पुत्र नहीं है।

और वे औरस लोक समाज ?" (पृ० ४५)

शब्दार्थ—औरस पुत्र = अपनी विवाहिता पत्नी से उत्पन्न पु
अर्क=सूर्य।

भावार्थ—कुदासी मथरा ने हाथ फटकार कर कैकेयी से कहा "
कौशल्या के पुत्र राम तुम्हारे पुत्र हैं तो) तुम्हारे स्वय के पुत्र भरत क्या
रानी ने उदासीन भाव से कहा "अरे दोनों में अन्तर भी क्या है ?" दोन
हैं। दासी ने बड़ी गभीरता और सावधानी के साथ कहा। "राम और
के इस अन्तर को कल प्रात काल उदय होने वाला सूर्य ही बतला देगा
एक ओर कौशल्या राजमाता बनेगी और दूसरी ओर आप राम का अ
देखेगीं।" कैकेयी ने बीच में ही क्रोध रोक कर मथरा से कहा "अरे तू
दोष दे रही है। आज या कल मुझे भी तो सारा समाज, सारा ससार रा
माता ही कहेगा।

कहा दासी ने धीरज क्या सब साज ?" (पृ० ४६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—मथरा ने धैर्य त्याग कर आवेश के साथ कहा "मेरे मु
आग लग जाय जो अब मैं कुछ कहूँ। कुछ भी हुआ करे। मुझे क्या पड़
मैं होती ही कौन हूँ ? लेकिन फिर भी मुझसे शात नहीं रहा जाता।
स्वामी का अहित देखकर कोई न कोई बात मुँह से निकल ही जाती है।
आप भोली और स्वच्छ हृदय वाली हैं, वैसी ही दूसरो को भी समझत

नहीं तो आपके विरुद्ध स्वतन्त्ररूप से यह स्पष्ट षड्यन्त्र कैसे रचा जासकता था? यदि आप इतनी भोली न होती तो महारानी कौशल्या अपने सब कार्य कैसे सिद्ध कर लेतीं?"

कहा रानी ने जो गेह।" (४६-४७)

शब्दार्थ—माथिक=मायावी, धोके से भरा। उद्भ्रान्त=भ्रमित होना। अर्थानर्थ=भला बुरा।

भावार्थ—रानी कैकेयी ने कहा "यह कैसी षडयन्त्र की बात तू कर रही है। मायावी मत्र के समान तेरे वचनों को सुनकर मै तो बडे भ्रम मे पड गई हूँ। सारी बाते स्पष्ट और खोलकर कह। मथरा ने पुनः अपना माथा पीटते हुए कहा "क्या अब भी कुछ बात कहनी शेष रह गई है? आपका ऐसा भोलापन भी व्यर्थ है जो अपना भला बुरा भी न समझ सके। आज राजा दशरथ भरत को घर से त्याज्य बनाकर राम को राजा बना रहे हैं। भरत जैसे पुत्र पर भी राजा दशरथ ने सन्देह किया तभी तो इस अवसर पर उन्हें घर नहीं बुलाया गया।

कहा कैकेयी लाली भरे कपोल। (पृ० ४७)

शब्दार्थ—द्विजिह्वे=सर्पिणी। भ्रूकुंचित=भौहों का तिरछी होना।

भावार्थ—कैकेयी ने क्रोधपूर्वक मथरा से कहा-"हे मूर्खे अधिक न बोल, मेरे सामने से शीघ्र ही दूर हट जा। सर्पिणी बनकर आज राज्याभिषेक के आनन्द रस में अमगल का विष मत घोल। तू हमारे परिवार में कलह और द्वेष की कीचड़ उछालना चाहती है। सचमुच नीच श्रेणी के लोग नीच हृदय वाले ही होते हैं। तेरा उदारता रहित हृदय भला हमारे आपस के पारवारिक प्रेम को कैसे अनुभव कर सकता है।" (कैकेयी क्रोध के आवेश में भरी हुई थी।) उसके विशाल मस्तक पर भौहें तिरछी होगई। सिर के बाल कपोलों पर आकर हिलने लगे। उसके अपलक और स्थिर नेत्रों मे तीक्ष्णता थी। लालिमा से आरक्त कपोल और भी लाल बन गए थे। कैकेयी के उस रूप मे शासकीय दण्डनीति जैसे मूर्त्तिमान बन रही थी। मथरा यह रूप देख कर सहम उठी। भय से उसका हृदय भर गया।

न दासी देख   गई अविराम। (पृ० ४७–४८)

शब्दार्थ—भर्तृ=स्वामी। भृत्य=सेवक।

भावार्थ—मथरा को केकयी की ओर देखने का साहस नहीं हुआ। कहीं वह उसके क्रोध की कठोर अग्नि में भस्म न हो जाय। किन्तु मन्थरा स्वय वहाँ से नहीं हटी। नम्र बनकर चुपचाप अपने स्थान पर ही खड़ी रही। अन्त में बड़ी सावधानी के साथ सधे हुए स्वर में वह बोली "मेरा यह अपराध क्षमा किया जाय। स्वामी के सम्मुख तो सेवक सदैव ही अपराधी रहा है। आप समर्थ हैं मुझे चाहे जो दड दें, परन्तु मैंने जो कुछ कहा वह अपने स्वार्थ के लिए नहीं कहा (आपके हित में ही कहा है।) मेरी बुद्धि जो कुछ रहस्य समझ सकी, उसे अपने स्वामी से कहना मेरा धर्म था। यह मेरा अपना कार्य नहीं था। इतना सत्य है कि स्वामी स्वामी और सेवक, सेवक ही रहेंगे।

अन्त मे पृथ्वी पर अपना मस्तक झुकाकर मथरा ने विवेक शून्य हृदय से प्रणाम किया और वह शीघ्र ही वहा से चली गई।

गई दासी, पर   उन्हें जो गेह।' (पृ० ४८–४६)

शब्दार्थ—सून्य=आकाश।

भावार्थ - दासी मन्थरा चली गई परन्तु उसकी कही हुई बात रानी के हृदय पर चोट कर गई। रह रह कर रानी के हृदय में यही भाव उठता कि भरत जैसे पुत्र पर भी राजा दशरथ ने सन्देह किया जो उसे इस अवसर पर घर नहीं बुलाया। आकाश को गुँजाता हुआ पवन भी मानों यही पुकार-पुकार कर कह रहा था कि भरत जैसे पुत्र पर भी सन्देह किया गया जो उन्हें इस अवसर पर नहीं बुलाया गया। रानी के कानों में बार-बार यही शब्द गूज रहे थे। तीर के समान उनके हृदय में यही बात चुभ रही थी कि भरत जैसे पुत्र पर भी सन्देह कर उन्हें घर नहीं बुलाया गया।

मूर्ति सी बनी   सशय के नाग ? (४६–५०)

शब्दार्थ—गभीरा=गम्भीर। उत्क्राति=मरण की शाति।

भावार्थ—उस स्थान पर मूर्त्ति के समान निश्चल और जड़ बनकर कैकेयी अधिक देर तक खड़ी न रह सकी। तत्काल ही वह शयनालय मे चली गई। उसकी चाल गम्भीर सरिता के समान थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो

अपने शरीर के भार वहन करने की भी शक्ति उसमें नहीं रही थी। इसीलिए कैकेयी खड़ी न रह सकी और लेटकर सम्पूर्ण स्थिति पर विचार करने लगी। उसने अपने हृदय मे ही कहा "हे भगवान, आज मेरे ये कान क्या सुन रहे हैं? मेरे मन की शाँति आज क्यों मरण की शान्ति का रूप ले रही है। मेरे हृदय मे यह किसने आग लगा दी? सशय का यह विषधर न जाने कहाँ छिपा था ?

नाथ, कैकेयी सुत के साथ। (पृ० ५०)

शब्दार्थ—वर वित्त = श्रेष्ठ धन।

भावार्थ—हे नाथ, हे कैकेयी के श्रेष्ठ धन, उसका हृदय चीरकर देखो, उसमें स्वार्थ का भाव नाममात्र को भी नहीं है। उसमे तो प्राणों के ईश्वर के समान तुम्हीं प्रतिष्ठित हो। तुम तो सदा से ही परम उदार थे। फिर आज तुम्हारी उदारता मे यह निष्ठुरता का विकार कैसा? भरत जैसे पुत्र पर सन्देह करके उसे घर तक नहीं बुलाया। हम माँ पुत्र यदि इस प्रकार त्याज्य थे तो क्या उन्हें मेरे लिए भी पुत्र की भाँति कोई मार्ग शेष नहीं रहा था। मुझे भी पुत्र के साथ भाई के घर क्यो नहीं भिजवा दिया?

राज्य का अधिकारी जानता अन्य? (पृ० ५०-५१)

शब्दार्थ—वीभत्सरस=शात का विरोधी रस, जिसमें जुगुप्सा भाव उत्पन्न हो। कुलधन्य=रामचन्द्रजी।

भावार्थ—राज्य के वास्तविक अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी हैं। वे सभी श्रेष्ठ गुणों के अधिकारी हैं। लेकिन फिर भी क्या मेरा पुत्र भरत इस राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर विघ्न रूप बनता? क्या वह शातरस के प्रवाह में वीभत्सरस के समान गतिरोध उत्पन्न करता। भरत तो हे राम तुम्हारा छोटा भाई है। क्या उसका हृदय निस्वार्थ और शुद्ध नहीं है? हे कुल श्रेष्ठ राम! जितना तुम भरत को जानते हो, उतना क्या अन्य कोई जानता है?

भरत रे भरत घातक दुर्दैव। (पृ० ५१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे शील-सम्पन्न भरत! यदि मेरी कोख से जन्म लेकर भी तू सशय का कारण बना तो यह मेरा शरीर ही भस्म हो जाय। हे पृथ्वी अवि-

के दोष ही दृष्टिगोचर होते हैं। उसके गुण भी आवेश और क्रोध के कारण अवगुण बन जाते हैं। कैकेयी को ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो कौशल्या साक्षात् राजमाता बन उसी की ओर बारबार देखकर खड़ी व्यग्यपूर्ण हँसी हँस रही है। तलवार की धार के समान कैकेयी को यह हँसी तीखी जान पड़ी। कौशल्या के प्रति हृदय मे यह भाव उदित होते ही कैकेयी काप उठी। उसने अपने होठ काट डाले। हाथ फटकारे और भूमि पर पैर पटके। इस प्रकार कौशल्या के प्रति वह अपने हृदय का वैरभाव प्रकट करने लगी। अन्त में अपने समस्त अङ्गो को समेटकर वह वही भूमि पर लेट गई। जब कभी वह हुँकार के समान गहरे निश्वास छोड़ती थी तब वे चोट खाई हुई नागिन की फुङ्कार के समान प्रतीत होते थे।

इधर यो हुआ ... भाव की पूर्ति।" (पृ० ५५-५६)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—इधर तो इस प्रकार शुभकार्य में विघ्न पड़ा, उधर उर्मिला प्राणपति लक्ष्मण के साथ भरत के सम्बन्ध में ही वार्तालाप छेड़कर शात भाव से उसे सुन रही थी। भरत इस अवसर पर क्यों नही बुलाए गए लक्ष्मण इसी का भेद बतलाते हुए कह रहे थे कि इसका हम सब को दुख है। परन्तु अवसर ही इतना अल्प था कि शुभ भावनाओ की मूर्त्ति भरत उपस्थित न हो सकते थे। अन्य कोई महूर्त्त भी न था। पिता राज्याभिषेक के लिए बहुत अधीर थे। खैर, आर्य रामचन्द्रजी और भरत तो अभिन्न हैं, एक प्राण दो शरीर हैं। वे ही भरत-भाव की पूर्त्ति करेंगे। राम के रूप में स्वय भरत ही उपस्थित रहेंगे।

इस समय क्या ... वे आप उदास। (पृ० ५६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—इस समय राम क्या कर रहे थे? उनके हृदय में भावनाओं का द्वन्द छिड़ा हुआ था। उच्च हिमालय के समान धीर, प्रशात और सागर के समान गम्भीर थे। अयोध्या के राज सिंहासन का वह अपार अधिकार उन्हें कठिन उत्तरदायित्व का भार ही प्रतीत हो रहा था। पिता राम को राज्य शासन प्रदान कर वनवासी बनेंगे, यह बात सोचकर रामचन्द्रजी और भी

उदास हो रहे थे।

हाय ! वह पितृ थाती रहे अखण्ड। (पृ० ५६-५७)

शब्दार्थ---बिगत=नष्ट। वैदेही=सीताजी। थाती=धरोहर।

भावार्थ—हाय पिता का वह वात्सल्य प्रेम और उसके साथ मिला अपना बचपन दोनों का एक साथ अन्त होता हुआ देखकर रामचन्द्रजी के शरीर के सभी अग शिथिल होरहे थे। सीताजी ने रामचन्द्रजी से कहा। हे नाथ अभी तक चारो भाई एक साथ समान रूप से राज्य सुख का भोग करते थे, परन्तु आज राज्याभिषेक की यह व्यवस्था इस सयोग को मिटा रही है। आज महाराजा दशरथ तुम्हें अन्य भाइयों से अलग करके राज्य प्रदान कर रहे हैं। क्या तुम्हें यह अधिकार रुचिकर प्रतीत होरहा है।" रामचन्द्र जी ने उत्तर में कहा "हे प्रिये, राज्य भोग करने के लिए नहीं है। वह तो एक उत्तरदायित्व है। इसीलिए तो उत्तरदायित्व के रूप में यह बड़ा दण्ड बड़े को ही प्रदान किया गया है। राज्य तो प्रजा की धरोहर है जो सदैव अक्षुण्ण बनी रहे।

तदपि निश्चिन्त होता है प्रतिपन्न। (पृ० ५७ ५८)

शब्दार्थ—राहित्य=रहित होना। साहित्य=सहित होना। प्रच्छन्न = छिपा हुआ। प्रतिपन्न=निश्चय।

भावार्थ—सीता जी से रामचन्द्र जी ने कहा "प्रिये फिर भी तुम निश्चिन्त रहो। राज्य का अधिकारी बन मै भाइयो से अलग नहीं रहूँगा, उन सहित ही राज्य करूँगा। मेरे साथ साधु भरत का परामर्श रहेगा, वीर लक्ष्मण की शक्ति और शौर्य रहेगा, और घर-धाम पर तुम्हारे छोटे देवर शत्रुघ्न का अधिकार रहेगा। मेरा कार्य तो केवल मात्र राज्य का उत्तरदायित्व ही सभा-लना होगा। सीताजी ने कहा "हे नाथ तब तो सचमुच ही राज्य नियुक्ति का यह कार्य अत्यन्त पवित्र है। इसमें भी छोटे देवर की ही जीत सबसे बडी है, जिन्हें मन्त्री और सेनापति के साथ-साथ नृप के निवास स्थान पर भी अधिकार होगा।

अभी तक किसी को कैकेयी के क्रोध की बात ज्ञात न थी। न जाने पृथ्वी पर गुप्त रूप से कहाँ क्या निश्चय होता रहता है

भूप क्या करते ... जावें चिंता मुक्त।" (पृ० ५८)

शब्दार्थ—कुलगुरु=वशिष्ठ।

भावार्थ—इस समय राजा दशरथ क्या कर रहे थे, हे लेखनी उनके विषय में भी कुछ व्यक्त कर। राजा दशरथ कुलगुरु वशिष्ठ के साथ विराजमान थे। भरत के विषय मे ही चर्चा हो रही थी। वशिष्ठ ने कहा "सचमुच यह दुख का विषय है कि भरत आज घर पर उपस्थित नहीं हैं। परन्तु अभिषेक का यह अवसर अत्यन्त उपयुक्त था, जिससे कि आप शीघ्र ही चिंता से मुक्त हो जावें।

भूप बोले--हाँ ... तो निष्क्रांति।" (पृ० ५८-५९)

शब्दार्थ--आत्म भविष्य=अपना भविष्य। अक्लिष्ट=सुगम। निष्क्राँति=छुटकारा मिलना।

भावार्थ—राजा दशरथ ने कहा "हाँ मेरा हृदय अपने भविष्य के लिए चिंतित था इसीलिए मैं राज्याभिषेक के लिए अधिक व्याकुल होरहा था। इस शरीर का क्या भरोसा, आज है तो कल नहीं। मेरे हाथों धोखे से मुनि बालक श्रवण कुमार की हत्या होगई थी। उस मुनि ने बड़ा कठोर शाप इसके बदले मे मुझे दिया था कि तुम्हारे प्राणों के विनाश का कारण भी पुत्र वियोग ही बनेगा। अतएव भरत का यह सुगम वियोग दुख प्रद होते हुए भी वांछित है। यदि भरत के वियोग के बहाने ही मुझे मृत्यु की स्थायी शांति मिल जाए तो मैं समझूँगा कि मुनि के शाप से सहज ही मुक्ति मिल गई। (महाराज दशरथ को इस अवसर पर अपने जीवन की एक पुरानी घटना का स्मरण हो आता है। एक बार पितृ भक्त श्रवणकुमार अपने अंधे माता पिताओं को तीर्थ यात्रा कराता हुआ अयोध्या पहुँचा। अपने प्यासे माता पिता के लिए जल लाने वह सरयू नदी के तट पर पहुँचा। वहीं राजा दशरथ शिकार खेलने आए हुए थे। नदी में श्रवणकुमार द्वारा जल भरते समय शब्द हुआ। राजा दशरथ ने समझा कि कोई हिरण जल पी रहा है। उन्होंने शब्द भेदी बाण चलाया। बाण श्रवणकुमार के लगा और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्हें अत्यन्त दुख हुआ। श्रवण के अंधे माता-पिता को राजा ने स्वयं जल लाकर दिया और सारी घटना सुनाई। अपने पुत्र

की मृत्यु से श्रवण के माता पिता अत्यन्त व्याकुल हुए और उन्होंने राजा को शाप दिया कि उन्हीं की भाँति दशरथ की मृत्यु भी पुत्र वियोग से होगी। यह कह कर प्राण त्याग दिए। इसी घटना को स्मरण कर राजा दशरथ भरत वियोग को, दुखमय होते हुए भी उचित ही समझ रहे हैं. क्योंकि उन्हें विश्वास है कि पुत्र के इस वियोग द्वारा उन्हें सहज ही मुनिशाप से छुटकारा मिल जायगा।)

दिया नृप को   भीतर इस ओर। (पृ० ५६)

शब्दार्थ—अस्थैर्य=अस्थिरता। श्रात=थकी हुई। आद्य=आदि। प्रणति=प्रणाम। सपाद्य = पूजा की सामिग्री।

भावार्थ—राजा दशरथ को वशिष्ठ ने धैर्य प्रदान करते हुए कहा कि आपके हृदय की यह अस्थिरता उचित नहीं है। ससार के सारे कार्य भाग्य के अनुसार ही हुआ करते हैं। आपका कहना उचित ही है, यह कह कर राजा दशरथ मौन होगए। उस समय उनका रूप बड़ा सौम्य और मङ्गलमय था। उस समय दिन का अन्त होकर सध्या हो रही थी। वायु की गति भी धीमी थी, जैसे वह कुछ थक गई थी। कुलगुरु वशिष्ठ और आदि देव सूर्य भी महाराजा दशरथ से प्रणाम के रूप में समस्त पूजा सामिग्री प्राप्त करके जिधर उन्हें जाना था उस ओर चले गए। तब महाराज दशरथ भी भीतर महल की ओर चले गए।

अरुण सध्या को   विस्मय का बाहुल्य। (पृ० ६०)

शब्दार्थ—अरुण=लाल। विधु की वेंदी = चन्द्रमा रूपी वेंदी। यामिनी=रात्रि।

भावार्थ—तत्काल ही रात्रि अपने मस्तक पर चन्द्रमा रूपी बेंदी का शृङ्गार कर के लालिमा युक्त सध्या को आगे धकेल कर कोई नया खेल देखने के लिए आ पहुँची। सामने ही कैकेयी का महल था। नृप ने शात भाव से प्रेम पूर्वक उसे देखा। परन्तु मथरा ताड़ गई थी कि यह शात महल आज ज्वालामुखी पर्वत बना हुआ था। महल के अन्दर जब राजा दशरथ पधारे तब उन्होंने वहाँ जाकर जो दृश्य देखा उससे वह निर्जीव से बन गए। उनके

हृदय में भय और विस्मय की बहुलता का सञ्चार हुआ।

न पाकर मानो   अचानक काँप। (पृ० ६०-६१)

शब्दार्थ—घन=मेघ।

भावार्थ—कैकेयी को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई शेरनी शिकार न पाने पर भूखी ही क्रोध से भरी हुई सो रही हो। राजा ने मन में विचारा कि इसका यह बढ़ा हुआ क्रोध क्या मेरे प्राणों का शिकार पाकर शांत हो जायगा। यदि ऐसा होजाय तब भी कुशल है। इस अवस्था में राजा के मुख से केवल एक 'हाय' शब्द निकला।

इस रात्रि में कैकयी का क्रोध तारे की भाँति टूट कर न जाने कौनसा उपद्रव खड़ा करने वाला है? कैकयी का मुख-मण्डल भयंकर बिजली के समान बना हुआ था। मेघ के समान काले बालों से वह घिरी हुई थी। काले साँप के समान भयंकर इन बालों को छेड़ने की शक्ति किसमें थी? राजा दशरथ यह सोचकर काँप उठे।

किन्तु क्या करते   यों ही वश्या (पृ० ६१)

शब्दार्थ—व्याल=सर्प के समान काले बाल। वश्य=अधीन।

भावार्थ—परन्तु राजा दशरथ और करते ही क्या? धैर्य धारण कर के वह पहली बार पृथ्वी पर बैठे (दशरथ के लिए पृथ्वी पर बैठने का यह प्रथम अवसर था।) सर्प के समान रानी के विशाल केशों से खेलते हुए अत्यन्त विनय भरे शब्दों में वे बोले "प्रिये आज तुम किस कारण वश क्रुद्ध हो। इसका कारण मेरे लिए अनजान बना हुआ है। यह सत्य है कि नारी की शक्ति उसके मान में है, परन्तु मैं तो वैसे ही तुम्हारे अधीन हूँ। फिर तुम्हारा मान किस लिए?

जान पड़ता यह   पितर पुनीता (पृ० ६१)

शब्दार्थ—अम्ल=खट्टा। रसाल=आम। रागातीत=राग द्वेष से परे। पितर=मृत पूर्वपुरुष।

भावार्थ—तुम्हारा यह रूप विनोद मात्र भी तो नहीं जान पड़ता। आज सभी प्रसन्न हैं। चारों ओर सुख के साज सजे हुए हैं। फिर तुम्हें कौन से दुख ने व्याकुल किया है। जिस प्रकार आम का थोड़ा सा खट्टापन उसके स्वाद

को और अधिक मधुर बना देता था उसी प्रकार हमारे प्रेम में कलह का थोड़ा सा खट्टापन भी उसे अधिक मधुर बना देता था। परन्तु प्रेम के वे दिन तो बीत गए। आज तो हम रागद्वेष से परे होकर प्रेमियों की अपेक्षा पवित्र पितर बन गए हैं।

भरत की अनुपस्थिति ... का सभ्य। (पृ० ६२)

शब्दार्थ—क्षेम=कुशलता। प्रत्यय = विश्वास। अमरसभा=देव मडल। सभ्य=सदस्य।

भावार्थ—तुम्हें संभवतः आज भरत के अनुपस्थित रहने का दुख हो। परन्तु यह भी एक रहस्य की भाति है, जिसमें कि मेरी कुशलता ही निहित है। हे प्रिये मेरे प्रेम पर विश्वास करो, क्योंकि प्रेम में विश्वास का ही वास होता है।

यदि तुम किसी रोग से पीड़ित हो तो किसी वैद्य को चिकित्सा के लिए बुलाऊं। अमृत को प्राप्त करना भी मेरे लिए कठिन नहीं है क्योंकि मैं देवताओं की सभा का सदस्य हूं।

किया हो कहीं ... अत्र प्राण!" (पृ० ६२-६३)

शब्दार्थ—वाम=प्रतिकूल। सुमिष्ट=सुमधुर। दिनकर-कर = सूर्य की किरणें। सवर-रण-रंग = देवासुर संग्राम। व्रणों=घावों।

भावार्थ—यदि कहीं किसी ने तुम्हारे प्रति अपराध किया हो जिसके कारण तुम आज क्रोधित हो तो शीघ्र ही उसका नाम बतलाओ। निश्चय ही देव उसके प्रतिकूल है। हे प्रिय तुम्हें किस वस्तु की अभिलाषा है। मैं तो उसका सुमधुर नाम सुनूं। जहाँ तक सूर्य की किरणों का प्रसार है, वहाँ तक अपना ही अधिकार समझो। यदि किसी को कुछ दान करने की चाह हुई है तो हृदय खोलकर दान करो। समुद्र की भाति अगाध भडार कभी रिक्त नहीं होगा। (हे प्रिये) क्रोध को त्यागो और बिना किसी संकोच के साथ जो कुछ तुम्हें मागना हो वह मागलो। मेरी ओर से पहले ही तुम्हें दो वरदान प्राप्त है, फिर क्यों यह मान किए हुए तुम बैठी हो? क्या तुम्हें देवासुर सग्राम की स्मृति नहीं है, जब घायल होकर भी मुझे विजय प्राप्त हुई थी।

तुमने ही मेरे प्राणों की रक्षा की थी, अब उन्हीं प्राणों को क्यों विकल कर रही हो ?

हुआ सचमुच न दो वरदान ?" (पृ० ६३)

शब्दार्थ—वेत्र=बेंत ।

भावार्थ—कैकेयी को यह सवाद अत्यन्त प्रिय लगा और उसे अपने वरदानो की याद आ गई । फिर भी आँखों को खोले बिना ही वह अपने व्यग वचनों के बेंत राजा दशरथ पर चलाने लगी । कैकेयी ने राजा से कहा कि अपनी यह झूठी प्रीति रहने दो । मैं राजाओं की नीति से भली भाति परिचित हूँ (जो कहते कुछ हैं करते कुछ हैं ।) अपने प्राणों की रक्षा पाने पर तुमने मुझे क्या गौरव प्रदान किया, केवल मात्र दो वरदानों का वचन ही तो दिया है । उनकी पूर्ति तो न की ।

भूप ने कहा नहीं, उपहार ?" (पृ० ६३-६४)

शब्दार्थ—अभिशाप=मिथ्या दोषारोपण ।

भावार्थ—राजा दशरथ ने कैकेयी से कहा (हे प्रिये) ऐसे कटु वचन मत कहो । मेरी बात पर विश्वास न होतो हृदय खोलकर दिखलाऊ ? तुमने स्वय मुझसे कभी कुछ मागा ही न था । फिर मेरे ऊपर यह मिथ्या दोषारोपण क्यों कर रही हो ? इस बार कुछ माँगो तो सही । तुम्हारी अभिलषित वस्तु तुम्हें दान के रूप में नहीं भेंट के रूप में ही प्रदान करूगा ।

मानिनी बोली सब बार ।" (पृ० ६४)

शब्दार्थ— कमलाक्षि=कमल नेत्र वाली कैकेयी ।

भावार्थ—अभिमानिनी कैकेयी ने अपनी प्रकृति के अनुरूप ही मान भरे शब्दों में कहा "हे राजा वे दो वर भी तुमसे नहीं प्रदान किए जायगें । राजा ने तब आह भर कर कहा" मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ ? "हे कमल नयनी तुम स्वय परीक्षा करके देखलो । हे देवतागण तुम भी सुनलो, तुम सब मेरे साक्षी हो । यह ससार सत्य पर ही टिका हुआ है । सत्य ही सब धर्मों का सार तत्व है । इस सत्य पर मैं अपने राज्य को ही नहीं अपितु अपने प्राण और परिवार को भी न्यौछावर कर सकता हूँ ।"

सरल नृप को   राम-वन-वास !" (पृ० ६४--६५)

शब्दार्थ—गरल=विष । उरगी=सर्पिणी । मुदमान=हर्षित । उभय=दोनों ।

भावार्थ—राजा दशरथ के सरल हृदय को इस प्रकार छल कर भरत जैसे मणिरत्न की माँ हर्षित हृदय से अपने दोनों वरदान उसी प्रकार माँगने को हुई जैसे सर्पिणी बिष उगलती है। रानी ने कहा "नाथ पहला वर तो मुझे यह प्रदान करो कि भरत का राज्याभिषेक हो और दूसरा भी सुनलो। सुनकर चिंतित मत बनो। तुम्हारे राम चौदह वर्ष तक बन के बासी बनें।

वचन सुन ऐसे   उसकी ओर ! (पृ० ६५)

शब्दार्थ—मेख़ = कील ।

भावार्थ—रानी के ऐसे क्रूर और भयकर वचनों को सुनकर महाराजा दशरथ हत बुद्धि से हो गए। रानी के वचन वज्र के समान सहसा उन पर छूट पड़े। राजा को प्रतीत हुआ जैसे उनके प्राण ही शरीर से निकल गए। राजा को इस प्रकार हतज्ञान देखकर रानी उनकी छाती पर कील ठोकती हुई अपनी भवें तानकर बोली आप मौन क्यो होगए। कुछ मु ह से हाँ या ना तो कहो। राजा फिर भी कुछ न कह सके। मूर्त्ति के समान अविचल बैठे रहे। अ त में उन्होने अपनी करुण कठोर दृष्टि रानी की ओर डाली।

कहा फिर उसने   तुम्हें तीन वरदान !" (पृ० ६५--६६)

शब्दार्थ—घात=आत्म घात । अगति=दुर्गति ।

भावार्थ—रानी कैकेयी ने अपने वचनों से पुन. राजा को पीड़ा पहुँचाते हुए कहा "राजन क्या यही तुम्हारा सत्य पालन है ? यदि तुम प्रतिज्ञा पालन नहीं कर सकते तो अपने वरदान वापिस ले लो। मैं आतमघात करके मर जाऊँगी। यह सुनकर नृप ने बडी कठिनाई से बोलते हुए कहा" तुम क्यों मरती हो, तुम राज्य का भोग करो। दुर्गति से भरी मृत्यु तो मेरी होगी। इस प्रकार तुम दो के स्थान पर तीन वरदान प्राप्त करो।

देख ऊपर को   करता था अनुनाद। (पृ० ६६–६७)

शब्दार्थ—परिताप=संताप । प्रतीति=वास्तविकता । हत=खेद सूचक शब्द। निस्पृह=जिसे किसी प्रकार का लोभ न हो।

भावार्थ—फिर अपने आप उपर की ओर दृष्टि करके नृप इस प्रकार

न्ताप करने लगे—यह सब स्वप्न हैं अथवा वास्तविकता है ? क्या स्त्री और पुरुष का प्रेम ऐसा ही होता है ? अब देवता किसी को भी वरदान नहीं दें, और नरेश भी वचन देना छोड़ दें। क्यों कि दान का अब दुरुपयोग ही होता है। अब किस पर विश्वास किया जाय। जिसे मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली चिंतामणि माला के समान हृदय में प्रधान स्थान प्रदान किया था, जिसे सबसे अधिक प्रिय समझा था हाय वही विष से भरे दाँतों वाली सर्पिणी निकली।

हे कैकेयी यदि तुझे राज्य का ही लोभ था, तो राम को क्यों अपने क्रोध का पात्र बनाया। वह निर्लोभी निष्काम हृदयी राम क्या तेरा पुत्र न था। क्या वह तुझे अपनी माता न मानता था ? भरत को क्या मैं अपना पुत्र न समझता था ? राम जैसे पुत्र को भी तूने बनवास प्रदान किया। यह सत्य है अथवा विनोद मात्र हैं। यदि यह सत्य है तो महाविनाश का प्रतीक है, और यदि विनोद मात्र है तो प्राण नाशक है।

राजा के ये शब्द राज महलों में गूंज उठे। प्रतिध्वनि के रूप में जैसे राजमहल उन शब्दों को बार बार दुहरा रहा हो।

पुनः बोले मुँह .... मानो नरराज ! (पृ० ६७)

शब्दार्थ—गृहागत=घर आए हुए। शव परिधान=मुर्दे पर डाले जाने वाला कफन।

भावार्थ—फिर मुंह फेर कर राजा दशरथ कहने लगे—राम, हाय राम, हे पुत्र, हे कुल के दीपक। इतना कहकर राजा आत्म विभोर से हो गए। उन्हें सारा संसार अंधकारमय प्रतीत हुआ। भवन में प्रवेश करती हुई चन्द्रमा की चाँदनी उन्हें अपने शव के कफन समान प्रतीत हुई। वह ऊंचा राज महल उनकी दृष्टि में श्मशान बन गया। कैकेयी उनके लिए साक्षात कालस्वरूप बनगई। पास ही जलते हुए दीप अंगारों के समान चिता की अग्नि को जलाते हुए से प्रतीत रहे थे।

हाय कल क्या होगा, यह सोचकर राजा दशरथ का हृदय कांप उठा। घुटनों में मुंह छिपाकर वे बैठ गए। मानो वे स्वयं अपने आपको अपने से छिपा रहे थे।

वचन पलट कि मृत-से वे। (पृ०६८)

शब्दार्थ—उभय विध=दोनो प्रकार से। धृत्त=स्थिर।

भावार्थ—अपने वचनों से फिरें अथवा राम को बन में भेजे, दोनो ही रूपों में राजा ने अपनी मृत्यु को निश्चित समझ लिया। जीवन और मरण के बीच वे स्थिर हो गए। वे अब न जीवित थे और न मृत। अर्द्ध जीवित और अर्द्ध मृत की भांति उनकी दशा हो गई।

इसी दशा में ज्ञात हुआ! (पृ० ६८)

शब्दार्थ—प्रतिभात=उदित होना। विरूपाक्ष=प्रलयङ्कर शिव।

भावार्थ—राजा दशरथ ने इसी अवस्था मे रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल की पौ क्या फटी, राजा की छाती सी फटने लगी। लाल सूर्य का उदय होना उन्हें प्रलयङ्कर शिव के समान प्रतीत हुआ।

तृतीय सर्ग

जहाँ अभिषेक .... यह गीत गाकर। (पृ० ६६)

शब्दार्थ—अम्बुद=बादल ।

भावार्थ—जहाँ अभिषेक रूपी मनोहर बादलों को देखकर मयूरों के समान सबके हृदय प्रसन्न हो रहे थे वहाँ उसके अमगलकारी परिणाम को देखकर सब जड़ तुल्य हो गए। वर्षा की सुखद बूंदों के स्थान पर जैसे लोगों की सुखकामनाओं को नष्ट करने वाले पत्थरों की बर्षा हुई हो। भगवान राम अपनी माया को स्वय ही जान सकते हैं वे किस समय क्या करना चाहते हैं, उनके इस रहस्य को अन्य कोई नहीं जान सकता।

हे कल्पना तू कहाँ है ? राम की इस अलौकिकता को आकर देख और स्वय सत्य बनकर इसके गीत गा।

विदा होकर प्रिया .... हृदय से। (पृ० ७०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—प्रिया उर्मिला से विदा लेकर वीर लक्ष्मण भाई राम के सम्मुख उपस्थित हुए और उन्हें प्रणाम किया। राम ने उन्हें हृदय से लगाते हुए कहा—तुमको पाकर मैंने साक्षात साम्राज्य ही पा लिया। यह सुनकर लक्ष्मण विनय और सकोच के भार से भर गए। नेत्र नीचे की ओर झुक गए। विरोध के भय से राम के शब्दो का कुछ उत्तर भी न दे सके। हृदय से उन्होंने इसे अपना अहोभाग्य ही समझा।

कहा आनन्द पूर्वक .... के महल में। (पृ० ७०)

शब्दार्थ—अजिर=आँगन। सुर वैद्य=देवताओ के वैद्य अश्विनी कुमार।

भावार्थ—हर्षित हृदय से रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा—

आओ पितृ वदना के लिए चले। यह कह रामचन्द्र जी आगे-आगे और पीछे लक्ष्मण जी चले। उनके चलने से भूमि के भी भाग्य जग गए। अयोध्या

के राजमहल के आगन देवताओं की भूमि बन गए और उसमें राम तथा लक्ष्मण अश्विनी कुमार के समान प्रतीत हुए। कमल की पखुड़ियों के समान अपने चरणों को रखते हुए दोनो राजकुमार विमाता कैकेयी के महलों में गए।

विशेष—यहाँ राम तथा लक्ष्मण को अश्विनी कुमारों का रूप देना बहुत उपयुक्त है। कैकेयी के महलो में राजा दशरथ मृत तुल्य पड़े हैं। ऐसी स्थिति में राम और लक्ष्मण का उनके पास पहुँचना किसी कुशल वैद्य के समान ही है।

'पिता ने उस   पा रही थी। (पृ० ७०-७१)

शब्दार्थ—नियति=दुर्भाग्य। अनैसर्गिक घटा=अस्वाभाविक वातावरण। प्रलय-घटिका=प्रलय की घडी।

भावार्थ—राम और लक्ष्मण के आने पर राजा दशरथ चैतन्य हुए और उन्होंने 'हाय राम, हे पुत्र, हे गुणी' कहा। पिता के मु ह से अपना नाम ऐसे आर्त्तपूर्ण वचनों मे सुनकर राम आश्चर्य चकित रह गए। तत्काल ही लक्ष्मण सहित व्याकुल होकर आगे बढे और पिता के सम्मुख जाकर खड़े हो गए। उस समय राजा दशरथ की अवस्था बड़ी भयकर चिन्ता जनक थी। दुर्भाग्य के समान कैकेयी उनके पास बैठी हुई थी। एक अस्वाभाविक वातावरण घटा की तरह चारो ओर छा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे प्रलय की घड़ी सामने आ गई हो।

नृपति कुछ स्वप्नगत   निज नेत्र खोलो।" (पृ० ७१)

शब्दार्थ—स्वप्नगत=स्वप्न की सी स्थिति में।

भावार्थ—कुछ समय तक राजा दशरथ स्वप्न में डूबे हुए व्यक्ति के समान शान्त रहे, फिर सहसा 'हा राम' कह कर चिल्ला उठे। तब राम ने कहा—हे तात क्या बात है? यह राम आपके सम्मुख खड़ा है आप चुप क्यों हो गए। कुछ तो कहो। अपने नेत्र तो खोलो। मेरे लिए क्या आदेश है यह तो बतलाओ।

वचन सुनकर   कटक चुनूँ मैं।" (पृ० ७१-७२)

शब्दार्थ—हृद्रोध=हृदय का रुंधना।

भावार्थ—राम के बचन सुनकर दशरथ पुनः चैतन्य हुए परन्तु साथ ही उनका हृदय रु ध गया। उन्होंने अपने नेत्र, जिसके पलक रुदन में सूजे हुए थे खोले। राम और लक्ष्मण को वे देखते ही रहे पर मु ह से कुछ कह न सके। भवर मे पड़े हुए पोत की भाति पिता की करुण अवस्था को देखकर राम और लक्ष्मण पृथ्वी की ओर ताकने लगे। अपने कष्ट के वेग को वे बड़ी कठिनाई से रोक सके। तब राम ने अपनी दृष्टि ऊपर करते हुए कैकयी की ओर देखा और कहा—हे माता! यह क्या हो रहा है? मैं जानना चाहता हूँ जिससे कि फूल के समान पिता के कटक रूपी दुखों को मैं दूर कर सकूँ।

"सुनो, हे राम तुल्य जानो।" (पृ० ७२)

शब्दार्थ—पितृ भक्त भार्गव=परशुराम जिन्होंने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी माता का बध किया था।

भावार्थ—हे राम सुनो तुम्हारे फूल समान पिता के लिए मैं ही कटक हूँ। इससे अधिक और क्या कहूँ। इससे अधिक कहने की अपेक्षा मौन रहना ही मेरे लिए उचित है। यह कहकर कैकेयी शान्त हो गई। कैकेयी की चोट करती हुई बात सुनकर राम भी मौन हो गए। तब लक्ष्मण ने कहा—हे माँ चुप क्यों हो गई? अपनी बातों से सुई की तरह हमारे हृदय में क्यों छेद कर रही हो। यदि पिता के लिए तुम ही काटा बन रही हो तो हमें भी पितृ-भक्त परशुराम बनना पड़ेगा।

हसी क्षण भूप दो दो कमानें! (पृ० ७२-७३)

शब्दार्थ—रोदन रत्न माला=आँसुओं के रूप में रत्न माला।

भावार्थ—इसी अवसर पर पुत्र की दृढ भक्ति देखकर पिता दशरथ को कुछ शक्ति मिली। भुजाएँ बढाकर पुत्र को हृदय से लगाने के लिए वे अत्यत आतुर हो उठे। उन्होंने खड़े होने का उपक्रम किया परन्तु उनके पैर लड़खड़ाने लगे। आँसू रूपी रत्नों की माला शात भाव से पिता के चरणों मे चढाते हुए राम लक्ष्मण ने पिता को सभाला। अपने नेत्रों के आँसुओं से राजा दशरथ ने राम का अभिषेक किया। ऐसा करने में उन्होंने सत्य की मर्यादा रखने की आवश्यकता नहीं समझी। बचन बद्ध होकर वे राम का राज्याभिषेक कर उन्हें अयोध्या के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त नहीं कर सकते थे, परन्तु आँसुओं

के अभिषेक से उन्होने राम को अपने हृदयासन पर विठाया।

दशरथ ने राम और लक्ष्मण को हृदय से लगाते हुए बस इतना ही कहा कि विश्वास ने ही मुझे धोखा दिया। कैकेयी ने इस दृश्य को टेढ़ी भवो से देखा मानो वह भवों के रूप मे दो कमानें ताने हुई हो।

पकड़कर राम पायगी तू !" (पृ० ७३)

शब्दार्थ—गत धैर्य=अधीर। विभव=सासारिक ऐश्वर्य। भव=शुभ, मंगल जुग=जोड़ा। आज्य=घृत।

भावार्थ—राम की ठोड़ी पकड़कर तथा कुछ क्षण रुकते हुए राम का मुँह कैकेयी की ओर कर, राजा दशरथ ने धैर्य खोकर कहा—देख, आज तू क्या अनर्थ करने चली है ? तेरे इस कार्य के लिए ससार तुझे क्या कहेगा ? क्या इसी राम को तू चौदह वर्ष के लिए बनवास दे रही है। सासारिक ऐश्वर्य के ही कारण तू अपने वास्तविक मगल को त्यागने चली है। भरत और राम की युगल जोड़ी को खडित करना चाहती है। राज्य के अधिकारी होकर भी भरत राज्य न कर सकेंगे। प्रजा की क्रोधाग्नि में वे घी के समान भस्म हो जाएँगे। मैं भी जीवित नहीं बचूँगा और तू पश्चात्ताप करने के लिए रह जायगी। अपने किए का अन्त में तुझे यही फल प्राप्त होगा।

हुए आवेग से में धर्म पालन, (पृ० ७४)

शब्दार्थ—तापित=जलता हुआ, तप्त। विपिन=जगल।

भावार्थ—भावावेश के कारण राजा दशरथ गद्गद् हो उठे। फिर उनके हृदय में नदी की तरगित लहरों की तरह दुःख उमड़ उठा। पुनः वे राम-राम की रटना करने लगे। राम समस्त घटना के रहस्य को समझ गए। विमाता कैकेयी भयङ्कर आँधी के समान बन गई थी। लेकिन श्याम मेघ के समान रामचन्द्रजी स्थिर और शात रहे। विमाता के प्रति वे क्रोधित नहीं हुए। आँधी रूप कैकेयी उन्हें चचल न बना सकी। जिस प्रकार सूर्य के ताप से दग्ध पृथ्वीतल को आकाश के श्याम मेघ अपनी वर्षा की बूँदो से शीतलता प्रदान करते हैं उसी प्रकार अपने पिता के तप्त हृदय को श्याम मेघ के सदृश्य रामचन्द्रजी अपने सुन्दर वचनो द्वारा जल की बूँदो के समान शीतल करते हुए बोले—यदि यही बात है तो इसमें दुखी होने की क्या आवश्यकता ?

मुझ मे और भरत में अन्तर ही क्या है ? भरत अयोध्या के राजा बनकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें तथा मै पितृ आज्ञा का पालन करते हुए बन जाकर अपने धर्म को निभाऊँगा ।

पिता ! इसके लिए मैं आदेश-रक्षा ? (पृ० ७४--७५)

शब्दार्थ—अभिशाप=मिथ्या दोषारोपण । उभयविध=दोनों प्रकार से । लोकरंजन = जन-कल्याण । विघ्न-भजन = विघ्नों का नाश । वेश = घर ।

भावार्थ—हे पिता ! इसके लिए इतने सतप्त होने की क्या आवश्यकता है । माँ पर भी मिथ्या दोषारोपण करना व्यर्थ है । भरत के राज्याधिकारी बनने पर राज्यशासन हमारा ही तो रहेगा । किसी अन्य का तो उस पर अधिकार न होगा ? इससे तो हमारी महानता ही प्रगट होगी । इस प्रकार दोनों रूपो मे जन-कल्याण हो सकेगा । यहाँ राजा बनकर भरत जनता की रक्षा करेंगे, वहाँ जगल में मैं मुनियों के सकट को दूर कर सकूँगा । मैं तो स्वय ही पृथ्वी से अधर्म का भार उतारने के लिए बाहर विचरण करना चाहता था । हे पिता ! यदि तुम सकट के समय घरवार की रक्षा करते हो तो क्या मैं बन जाकर आपके आदेश की भी रक्षा न कर सकूँगा ?

मुझे यह इष्ट पाषाणी जरा भी ! (पृ० ७५)

शब्दार्थ—परमाराध्य = पूज्य । सुखसाध्य = सहज । पाषाणी = पत्थर हृदया कैकेयी ।

भावार्थ—हे पिता ! मेरी तो यही कामना है । आप इसके लिए तनिक भी चिन्तित न बनें । आपकी आज्ञा के पालन के लिए तो मैं आग में भी भी कूद सकता हूँ । हे पिता तुम्हीं मेरे लिए परम पूज्य हो । सभी धर्म-कर्म अब मेरे लिए सहज हैं । अभी सबसे विदा लेता हुआ मैं बन की ओर प्रस्थान करता हूँ । भला शुभ कार्य मे विलम्ब कैसा ?

इतना कहकर प्रभु रामचन्द्रजी पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा में चुप होगए । राजा दशरथ विवश होकर अस्थिर हो उठे । (करुणा भरे शब्दों में) उन्होंने कहा "हे राम तुम मुझ जैसे पिता के पुत्र क्यों बने ? अपने पुत्र के प्रति क्या पिता के यही कर्त्तव्य है ? हा विधाता," बस इससे आगे दशरथ कुछ बोल न सके और दुख का आवेग न सह सकने के कारण मूर्च्छित हो गए । उस

समय पृथ्वी भी नीचे धसकती हुई प्रतीत हुई परन्तु कैकेयी का पत्थर हृदय न पिघल सका।

निरखते स्वप्न तो मैं बताती।" (पृ० ७५--७६)

शब्दार्थ—निस्पन्द = निश्चेष्ट, गतिहीन। लीक = रीति। रेणुका = परशुराम की माँ और जमदग्नि ऋषि की पत्नी।

भावार्थ—लक्ष्मण मानो स्वप्न देख रहे थे। वे जैसे अपने चित्र की भाँति निश्चेष्ट थे। इसको वे मिथ्या ही समझ रहे थे। उन्होंने इतना ही कहा "माता कैकेयी क्या यह सब सत्य है?" प्रत्युत्तर में कैकेयी ने कहा "मैं क्या कहूँ? यदि कुछ कहती हूँ तो रेणुका के समान मुझे भी बनना पड़ेगा। लो मैं तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। मेरा वध करके मातृघाती बनो। यदि यहाँ आज भरत उपस्थित होता तो मैं भी तुम्हें बता देती।

गई लग आग फल आज देखें। (पृ० ७६)

शब्दार्थ—ठसक=घमण्ड। युधाजित=कैकेयी का भाई। आततायी=अत्याचारी। चक्र=षड्यन्त्र।

भावार्थ—कैकेयी की बात सुनकर लक्ष्मण के तन बदन में आग लग गई। उनके अधर फड़क उठे। प्रलयघन के समान कड़कती हुई आवाज में वे बोले "क्या अब भी तू अपने मातृत्व की दुहाई देना चाहती है? भरत का डर किसको दिखलाना चाहती है? भरत और तुझे दोनों को मार डालूँगा। तेरे लिए तो नरक में भी स्थान नहीं रखूँगा। तेरा भाई क्रूर युधाजित भी मेरे हाथों से न बच सकेगा। बहन के साथ आज भाई को भी नहीं छोड़ूँगा। जितने भी तेरे सहायक हों, जिनकी सहायता की व्यर्थ आशा तू करती है उन सब को शीघ्र बुलाले वे भी आज आकर लक्ष्मण के बल की परीक्षा कर लें। वे तेरे द्वारा रचे गए कुचक्र का परिणाम भी देख लें।

भरत को सानती दिन समझते! (पृ० ७६--७७)

शब्दार्थ—साधु=सज्जन। कज=कमल। सुत भक्षिणी साँपिन=सर्पिणी के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि वह अपने पुत्रों को खा जाती है।

भावार्थ—भरत को तू अपना क्यों समझती है? वे तो सूर्यवंशी हैं और सूर्यवंशी कभी ऐसे पापकर्म में सहयोगी नहीं बन सकते। जिस प्रकार कीच में

से कमल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार भरत जैसे पुण्यशाली पुत्र तेरी कोख से पैदा हुए हैं। भरत यदि आज यहाँ उपस्थित होते तो भला वे क्या करते? वे तो स्वय ही अपनी लज्जा से अत्यन्त व्यथित होकर मरण तुल्य बन जाते। हे कैकेयी तुझे तो अपने पुत्रों का भक्षण करने वाली साँपिन ही समझते। रात्रि को भी दिन समझ कर अहर्निश लज्जा से मुँह छिपाए रहते।

भला वे कौन पाता हमारा।" (पृ० ७७)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—भला भरत कौन होते हैं जो राज्य के अधिकारी बनें। पिता को क्या अधिकार है जो इस प्रकार वे राज्य सौंप रहे हैं। राज्य तो प्रजा के लिए है। नियम के अनुसार राज्य का अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता है।

वचन सुन वह रहे हो।" (पृ० ७७)

शब्दार्थ—गरल=विष।

भावार्थ—लक्ष्मण के वचन सुनकर कैकेयी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपने विष भरे वचन वह मुँह पर नहीं लाई। विवश थी इसलिए लक्ष्मण के कटु वाक्य उसे सहन करने पड़े। क्रोध में भर वह अपने होंठ काटकर ही रह गई।

छोटे भाई लक्ष्मण की ओर उन्मुख होकर रामचन्द्रजी ने उन्हें रोकते हुए कहा "हे लक्ष्मण यह सब तुम क्या कह रहे हो? अपने इस वेग को रोको। देखो तुम स्वय अपनी बातों के वेग में बहते हुए मर्यादा का अतिक्रमण कर रहे हो।

"रहूँ?" सौमित्रि आगे अड़ेगा। (पृ० ७७-७८)

शब्दार्थ—पार्श्व=बगल।

भावार्थ—लक्ष्मण ने प्रत्युत्तर में कहा "क्या मेरे लिए चुप रहना उचित है? क्या इस अन्याय को शान्त रहकर मै सहन कर लूँ। यह असम्भव है। कभी ऐसा नहीं हो सकता। जो हमारा कुलधर्म है उसके अनुसार ही कार्य होगा। आप अभी चलकर राज्य सभा में सिंहासन पर विराजमान हों। वहाँ चलकर वही कार्य किए जायँगे जो कि सभा के लिए उचित होंगे। जो इस कार्य में बाधक बनना चाहते हैं वे भी साथ चलें। तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं

इस सारी पृथ्वी को उलट दूँ। तुम्हारे समीप लक्ष्मण खड़ा हुआ है। उसके हाथों आज तुम्हारे सभी शत्रु नष्ट होंगे। देवताओं की सहायता की मुझे आवश्यकता नहीं। मुझे ज्ञात तो हो, ऐसा कौन-सा कार्य है जो मैं नहीं कर सकता। तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। स्वयं लक्ष्मण ही सामने आकर ये सब कार्य करेगा।

मुझे आदेश ... मान्य होते। (पृ० ७८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—"हे प्रभु मुझे आदेश देकर तो देखिए। अपने हृदय में आप किसी प्रकार का सकोच मत रखिए। चाहे आपके विरुद्ध सारा ससार होजाय पर मैं तुम्हारा सेवक लक्ष्मण उन सबके लिए अकेला ही बहुत हूँ। इस प्रकार अनुचित रीति से वीर पुरुष कभी अपने अधिकारों का हनन नहीं होने देते। वे न्यायपूर्ण आदेशों का ही पालन करते हैं।

खड़ी है माँ ... चुप रहूँ क्या ?" (पृ० ७८-७९)

शब्दार्थ—दस्युजा=अनार्य कुल में जन्मी।

भावार्थ—(कैकेयी की ओर उन्मुख होकर क्रोध भरे स्वर में लक्ष्मण कहते हैं) यह अनार्य कुल मे जन्मी भाग्यहीना माँ के रूप में साक्षात् नागिन बनी हुई है। इसके जहरीले दाँतो को मैं अभी तोड़ दूँगा। तुम मुझे इस कार्य से मत रोको। इसे समाप्त करने पर ही मुझे शांति मिल सकेगी। पिता भी इस अनार्या के सेवक बनकर आज आपको बनवास दे रहे हैं। वे हमारे पिता हैं या पिता के रूप में क्या हैं मै इस विषय मे क्या कहूँ ? हे आर्य यह सब कुछ होने पर भी मैं शाँत बना रहूँ ?"

कहा प्रभु ने ... वह धर्म खोकर ? (पृ० ७९)

शब्दार्थ—अरुन्तुद = अत्यन्त दुखदायी। कुलकेतु = रघुवश के गौरव।

भावार्थ—रामचन्द्रजी बोले—हे लक्ष्मण तुम्हें शाँत ही रहना चाहिए। ये दुखपूर्ण वचन तुम व्यर्थ ही कह रहे हो। अपना यह क्रोध तुम किस पर प्रगट कर रहे हो ? हे लक्ष्मण जो कुछ मैं कह रहा हूँ उस पर ध्यान दो। इस प्रकार अधीर मत बनो। मुझे इस प्रकार बन जाता देख, प्रेम में अंधे होकर अपने मन में बुरे भाव मत लाओ। यदि पिता मेरे स्थान पर तुम्हें बन

वास देते तो क्या इसी प्रकार अपनी बातों से तुम उन्हें पीड़ा पहुँचाते। जिस धर्म का पालन करते हुए पिता इस प्रकार अपने प्राण दे रहे हैं, वे जो नहीं चाहते उसे कर रहे हैं, ऐसे रघुवंश के गौरव के पुत्र होकर हमारे लिए क्या यह उचित होगा कि हम उस धर्म का त्याग करते हुए राज्य शासन को स्वीकार करें ?

प्रकृति मेरी .... राज्य तृण से। (पृ० ७९-८०)

शब्दार्थ—अविचारणीया=जिस पर सोच विचार नहीं किया जाय। शिरसा धारणीय = मस्तक पर धारण करने योग्य। पान=नशा।

भावार्थ—हे लक्ष्मण तुम मेरे स्वभाव को जानते ही हो। फिर क्यों व्यर्थ ही ये हठ भरी बातें कह रहे हो। गुरुजनों की बातों पर तर्क करना उचित नहीं होता। वे तो मुकुट की मणि के समान शिरोधार्य होती हैं। हे लक्ष्मण पिताजी अपने वचनों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते तथापि पुत्र प्रेम के वश में होकर वे मुँह से कुछ कह भी नहीं सकते, ऐसे देवता तुल्य पिता का अपमान तुम कर रहे हो, हे लक्ष्मण कहीं तुमने कुछ नशा तो नहीं कर लिया। पिता के ऋण से तो उऋण होना अत्यन्त कठिन है। मेरे लिए तो यह राज्य तृण के समान तुच्छ है।

मन. शासक बनो .... जुडाओ।" (पृ० ८०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे लक्ष्मण अपने मन को वश में करो। व्यर्थ का हठ मत ठानो। सारे संसार को अपना राज्य समझो। यही समझकर सन्तोष करो कि यह जो कुछ होरहा है विधाता की इच्छा के अनुकूल ही हो रहा है। मुझे तो बनवास के रूप में गौरव ही प्राप्त हुआ है। इसलिए आओ, प्रेम और धैर्य पूर्वक मुझे विदा करो।

वहाँ तापिच्छ .... समझा उन्होंने। (पृ० ८०-८१)

शब्दार्थ—तापिच्छ=श्याम तमाल। क्रोड़गत=गोदी में। नत=झुका हुआ। निरत=मग्न। पदाब्जों = चरण कमलों। अमा=अमावस्या की रात्रि। विगत=व्यतीत हुआ।

भावार्थ—श्याम तमाल की शाखाओ के समान रामचन्द्र जी ने अपनी दोनों भुजाएँ अनुज लक्ष्मण की ओर बढाई । उस समय लक्ष्मण के रूप में मानो सारा ससार ही उनके अक से भेट रहा था । उनकी क्षमा की छाया के तले झुका हुआ निमग्न था ।

लक्ष्मण का सारा क्रोध शान्त होगया । सहसा उनके नेत्रो से अश्रु धारा उमड़ आई । इससे पूर्व कि लक्ष्मण राम के चरण कमलों पर पड़े, राम ने उन्हें अपनी भुजाओं मे भर लिया । दोनो भाई सूर्य और चन्द्र के समान मिलते हुए प्रतीत हुए । उसी समय अमावस्या का अधकार चारों ओर देख कर बालक के समान वृद्ध नृप रोने लगे । उन्होंने अपना सर्वस्व नष्ट हुआ समझा ।

कहा इस ओर प्रेत साधन !" (पृ॰ ८१-८२)

शब्दार्थ—दीर्घभुज=विशाल भुजा वाले लक्ष्मण । दैव=भाग्य । अपेक्षा=आवश्यकता । निष्कासन=देश निकाला । चिता-वन=श्मशान ।

भावार्थ—इधर विशाल भुजा वाले लक्ष्मण ने आज राम के चरणों को पकड़ कर कहा "जो तुम्हारी इच्छा हो वही पूर्ण हो । हे नाथ अब बन मे ही नई अयोध्या का निर्माण हो। भाग्य की सामर्थ्य तो भाग्य ही समझे, मैं तो इतना समझता हूँ कि पुरुष के लिए उसका पुरुषार्थ ही है । फिर पुरुष पुरुषार्थ के महत्व को कम क्यों मानें ? जो कुछ हुआ है उस सबध में मैं कुछ नहीं जानता, लेकिन जो कुछ तुम चाहते हो वह मुझे भी स्वीकार है । आप यह किसकी बिदा की बात किससे कर रहे हैं ? हे नाथ इसकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है, मुझे आप मारना चाहो तो मार डालो परन्तु इस प्रकार जीते-जी अपने से अलग मत करो । हे प्रभो मुझे तो आप अपना सेवक बना कर ही रखो । ऐसा न हो कि यह गृहवास मेरे लिए देश निकाले के समान बन जाए । आपकी अनुपस्थिति में यह अयोध्या मेरे लिए श्मशान भूमि बन जायगी । यहाँ रहकर तब क्या मैं प्रेत सिद्धि करूँगा ?"

"अरे, यह क्या" था कि छल था ?" (पृ॰ ८२-८३)

शब्दार्थ—उद्वेग=आवेश । त्रिदिव=तीनों लोक । आयास=परिश्रम ।

वास देते तो क्या इसी प्रकार अपनी बातों से तुम उन्हें पीड़ा पहुँचाते। जिस धर्म का पालन करते हुए पिता इस प्रकार अपने प्राण दे रहे हैं, वे जो नहीं चाहते उसे कर रहे हैं, ऐसे रघुवश के गौरव के पुत्र होकर हमारे लिए क्या यह उचित होगा कि हम उस धर्म का त्याग करते हुए राज्य शासन को स्वीकार करें ?

प्रकृति मेरी राज्य तृण से। (पृ० ७६-८०)

शब्दार्थ—अविचारणीया=जिस पर सोच विचार नहीं किया जाय। शिरसा धारणीय = मस्तक पर धारण करने योग्य। पान=नशा।

भावार्थ—हे लक्ष्मण तुम मेरे स्वभाव को जानते ही हो। फिर क्यों व्यर्थ ही ये हठ भरी बातें कह रहे हो। गुरुजनों की बातों पर तर्क करना उचित नहीं होता। वे तो मुकुट की मणि के समान शिरोधार्य होती हैं। हे लक्ष्मण पिताजी अपने वचनों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते तथापि पुत्र प्रेम के वश में होकर वे मुँह से कुछ कह भी नहीं सकते, ऐसे देवता तुल्य पिता का अपमान तुम कर रहे हो, हे लक्ष्मण कहीं तुमने कुछ नशा तो नहीं कर लिया ! पिता के ऋण से तो उऋण होना अत्यन्त कठिन है। मेरे लिए तो यह राज्य तृण के समान तुच्छ है।

मन. शासक बनो जुडाओ।" (पृ० ८०)

शब्दार्थ— सरल है।

भावार्थ—हे लक्ष्मण अपने मन को वश में करो। व्यर्थ का हठ मत ठानो। सारे ससार को अपना राज्य समझो। यही समझकर सन्तोष करो कि यह जो कुछ होरहा है विधाता की इच्छा के अनुकूल ही हो रहा है। मुझे तो वनवास के रूप में गौरव ही प्राप्त हुआ है। इसलिए आओ, प्रेम और धैर्य पूर्वक मुझे विदा करो।

वहीं तापिच्छ समझा उन्होंने ! (पृ० ८०-८१)

शब्दार्थ—तापिच्छ=श्याम तमाल। क्रोड़गत=गोदी में। नत=झुका हुआ। निरत=मग्न। पदाब्जों = चरण कमलों। अमा=अमावस्या की रात्रि। विगत=व्यतीत हुआ।

भावार्थ—श्याम तमाल की शाखाओ के समान रामचन्द्र जी ने अपनी दोनों भुजाएँ अनुज लक्ष्मण की ओर बढ़ाई । उस समय लक्ष्मण के रूप में मानो सारा ससार ही उनके अक से भेट रहा था । उनकी क्षमा की छाया के तले झुका हुआ निमग्न था ।

लक्ष्मण का सारा क्रोध शान्त होगया । सहसा उनके नेत्रो से अश्रु धारा उमड़ आई । इससे पूर्व कि लक्ष्मण राम के चरण कमलों पर पड़े, राम ने उन्हें अपनी भुजाओ में भर लिया । दोनों भाई सूर्य और चन्द्र के समान मिलते हुए प्रतीत हुए । उसी समय अमावस्या का अधकार चारो ओर देख कर बालक के समान वृद्ध नृप रोने लगे । उन्होंने अपना सर्वस्व नष्ट हुआ समझा ।

कहा इस ओर प्रेत साधन !" (पृ. ८१-८२)

शब्दार्थ—दीर्घभुज=विशाल भुजा वाले लक्ष्मण । दैव=भाग्य । अपेक्षा=आवश्यकता । निष्कासन=देश निकाला । चिता-वन=श्मशान ।

भावार्थ—इधर विशाल भुजा वाले लक्ष्मण ने आज राम के चरणों को पकड़ कर कहा "जो तुम्हारी इच्छा हो वही पूर्ण हो । हे नाथ अब वन मे ही नई अयोध्या का निर्माण हो । भाग्य की सामर्थ्य तो भाग्य ही समझे, मैं तो इतना समझता हूँ कि पुरुष के लिए उसका पुरुषार्थ ही है । फिर पुरुष पुरुषार्थ के महत्व को कम क्यों मानें ? जो कुछ हुआ है उस सबध मे मै कुछ नहीं जानता, लेकिन जो कुछ तुम चाहते हो वह मुझे भी स्वीकार है । आप यह किसकी बिदा की बात किससे कर रहे हैं ? हे नाथ इसकी तनिक भी आवश्यकता नही है, मुझे आप मारना चाहो तो मार डालो परन्तु इस प्रकार जीते-जी अपने से अलग मत करो । हे प्रभो मुझे तो आप अपना सेवक बना कर ही रखो । ऐसा न हो कि यह गृहवास मेरे लिए देश निकाले के समान बन जाए । आपकी अनुपस्थिति में यह अयोध्या मेरे लिए श्मशान भूमि बन जायगी । यहाँ रहकर तब क्या मैं प्रेत सिद्धि करूँगा ?"

"अरे, यह क्या" था कि छल था ?" (पृ० ८२-८३)

शब्दार्थ—उद्वेग=आवेश । त्रिदिव=तीनों लोक । आयास=परिश्रम ।

चैतन्य=जीवित अवस्था । चल = चचल ।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने तब लक्ष्मण जी से कहा—अरे यह तुम क्या कह रहे हो ? मेरी विदा को विरह क्यों समझ रहे हो ? तुम्हारे लिए ऐसा आवेश उचित नहीं । सुनो, जिसे तुमने अपने हृदय में स्थान दिया है वह फिर तुमसे दूर कैसे हो सकता है ? यहाँ पिता है, माता है, भरत और शत्रुघ्न से भाई हैं । हे लक्ष्मण तुम्हारा यहाँ रहना ही उचित है । यहाँ जो कुछ है वह तो तीन लोकों में भी प्राप्य नहीं है । मुझे बन में कुछ भी कष्ट नहीं होगा । निरन्तर मुनिजनों के सहवास में रहूँगा । पिता की अवस्था पर विचार करो और धर्म का पालन करो । अरे पिता पुनः मूर्च्छित होगए उन्हें सभालो । तब दोनो ने पिता का उपचार किया । दशरथ चैतन्य हुए, परन्तु उनकी यह चैतन्यावस्था चिता पर चढ़ने के समान थी । कैकेयी खड़ी हुई थी, परन्तु उसका हृदय चचल हो रहा था । वह सोच रही कि राम के ये वचन सत्य हैं अथवा छल से भरे हुए हैं ।

सँभल कर कुछ क्या क्लेश मेरा ?' (पृ० ८३-८४)

शब्दार्थ—भारी=महत्वशाली । वाम=विरोधी । वामा=पत्नी ।

भावार्थ—भोले दशरथ ने किसी प्रकार अपने को सभालकर विकल होते हुए लक्ष्मण से कहा—हे पुत्र जो कुछ तुम पहिले कह रहे थे, उसे पुनः कहो । तुम्हारी वही गर्जना मेरे लिए अत्यन्त सुखदायी थी । मैं सचमुच तुम्हारा पिता नहीं हूँ । यदि पिता होता तो क्या सचमुच ऐसा ही प्रेम तुम्हारे प्रति मेरा होता ? तथापि तुम सुपुत्र और शूरवीर हो । हे लक्ष्मण मेरे सभी दुःखों को दूर करो । निर्भय होकर वीरता के साथ तुम मुझे बदी बनाओ और फिर धैर्य पूर्वक राम के राज्याभिषेक की व्यवस्था करो । तुम जो कुछ करोगे निस्वार्थ भाव से करोगे इसलिए नीति और कुल परम्परा का पालन करो । तुम्हें कोई दोष नहीं देगा । भरत स्वय राज्य का अधिकारी था । परन्तु राम राज्य से भी अधिक महत्वशाली हैं । उस राम से भरत इस प्रकार वचित न हों । भले ही विरोधिनी रानी कैकेयी लोभ मे पड़कर ऐसा करना चाहे । हे राम सुनो तुम भी धर्म का पालन करो । अपने पिता को मृत्यु के मुँह से बचाओ । आज तुम मेरे आदेश का पालन मत करो । क्या मेरा दुःख मेरे आदेश पालन

के सुख से कहीं अधिक तीव्र नहीं है ?

भरत की माँ क्यों न माने ! (पृ० ८४)

शब्दार्थ—प्रमाणी=स्वीकार करना । उन्नतों=श्रेष्ठ पुरुषों !

भावार्थ—राजा दशरथ के ऐसे वचन सुनकर भरत की माता कैकेयी भय-भीत हो गई । उसे डर हुआ कि कहीं राम लक्ष्मण इसे स्वीकार न करलें । सचमुच नीच पुरुष श्रेष्ठ पुरुषों के श्रेष्ठ भावों को नहीं समझ सकते । दूसरों को भी वे अपना ही जैसा पतित समझते हैं ।

कहा प्रभु ने मुझे जब । (पृ० ८४-८५)

शब्दार्थ—द्रोह=विरोध । अगौरव-मार्गचारी=अनुचित मार्ग पर चलने वाले । कौशिक सग=विश्वामित्र के साथ ।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने दशरथ से कहा "हे पिता आपका हमारे प्रति इतना मोह प्रगट करना उचित नहीं । तनिक विचार तो कीजिए इससे कितना विरोध होगा । आपका पुत्र होकर भी मैं यदि आपकी आज्ञा का पालन नहीं करूं तो सारा ससार मुझे क्या कहेगा ? इससे तो हमारा कपट भाव ही प्रमाणित होगा । माँ कैकेयी के साथ भी उचित न्याय नहीं हो सकेगा । वचन पालन की जो हमारी वश मर्यादा रही है वह भी नष्ट हो जायगी । हम अपयश के मार्ग पर चलने वाले बन जायगें । हे पिता आज आप इतने व्याकुल क्यों बन रहे हैं ? अपका वह धैर्य कहाँ चला गया जब आपने विश्वामित्र के साथ हमें मुनियों के तपोवनों में भेजा था ।

लड़कपन भूल को वरण कर ! (पृ० ८५)

शब्दार्थ—सदय हो=दया युक्त । विरत=विमुख । सज्ञा=चैतन्यावस्था । प्रणति मिस=प्रणाम के बहाने । वरण कर=स्वीकार करते हुए ।

भावार्थ—आप दयावान बन लक्ष्मण के लड़कपन को भूल जाइए । हमारे वश को नया यश प्राप्त हो । हे माता कैकेयी तुम भी लक्ष्मण को क्षमा करो । उनके उस विद्रोही स्वरूप का हृदय में ध्यान मत लाओ । अरे भाई लक्ष्मण तुम भी विमुख मत बनो । हाय तात फिर मूर्च्छित हो गए । मेरा यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि जब तक मै यहाँ रहूँगा पिता का मोह मेरे प्रति बढ़ता ही रहेगा । इसलिए मुझे शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए ।

सम्बन्धी लोगों को मिलकर इन्हें धीरज बँधाना चाहिए। इतना कहकर रामचन्द्र जी ने प्रणाम के बहाने मुकुट के रूप में अपने समस्त अधिकारों को सौंप कर और पिता के चरणों की धूल को मस्तक से लगाकर चल दिए। अनुज लक्ष्मण ने भी सभी से नाता तोड़कर सेवापथ स्वीकार करते हुए रामचन्द्र जी का अनुसरण किया।

कहा प्रभु ने देह दहता ! (पृ ८५-८६)

शब्दार्थ— विनश्वर=नष्ट होने वाला। जीव=आत्मा। दहता=जलता हुआ।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी को अपने साथ बन में जाने से रोकते हुए कहा हे भाई मेरी बात मानो। पिता की अवस्था की ओर देखो। और व्यर्थ का हठ मत करो।

उत्तर मे लक्ष्मण जी ने हाथ जोड़कर कहा तुम्हें छोड़कर तुम्हारा यह सेवक तुमसे कभी अलग नहीं रहा। फिर आज तुम्हें बन जाता हुआ देखकर यह तुमसे कैसे अलग रह सकता है ? हे स्वामी इस सेवक को ऐसा अपराधी मत बनाइए। तुम्हीं मेरे माता, पिता, भाई और विधाता सभी कुछ हो। यदि आप मुझे यहीं रहने की आज्ञा देगें तो मैं यहीं रहूँगा। आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ यहाँ रहने की नारकीय यातना को भी सहन करूंगा। यदि आत्मा नाशवान होती तो वह यह दुख सहने से पूर्व ही नष्ट हो जाती। फलत. आत्मा को अनश्वर होने के कारण यह दुख सहना ही पड़ेगा। परन्तु यह शरीर तो नाशवान है क्या यह दुःख की ज्वाला में जलता हुआ अधिक समय तक जीवित रह सकेगा ?

कला क्रीडा विष भी पियूँगा।" (पृ० ८६-८७)

शब्दार्थ—क्रीडा=खेल कूद। कुतुक=आनन्द। मृगया=शिकार। सभा सलाप=सभा की बात चीत। नय=नीति। अन्तर्बाह्य=भीतर बाहर। ग्राह्य= स्वीकार।

भावार्थ—हे स्वामी जिसे तुमने कला, क्रीड़ा, शिकार अभिनय, सभा के वार्त्तालाप, न्याय और नीति में सर्वत्र साथ रखा। उसीसे आज आप इस प्रकार विमुख बन रहे हैं। यहाँ मेरी अनुपस्थिति में कौनसा कार्य रुका रहेगा ?

नहीं तो यह शरीर भी मेरे लिए बोझ बन जायगा। मेरे तो भीतर बाहर सर्वत्र तुम्हीं हो। क्या तुच्छ फूल फलो की भाँति मेरी सेवा भी तुम्हे स्वीकार नहीं। आज इस विपत्ति के अवसर पर ही आप मुझे अपने साथ नहीं रखना चाहते तो मुझे छोड़कर आप चले जाइए। मै आपको नहीं रोकूगाँ। यदि जीवित रह सका तो मैं यहाँ रहने का प्रयत्न करूँगा। आपके साथ रहकर जब अमृत के समान सुखी जीवन व्यतीत किया है तो आपसे अलग रहकर विष-के समान दुखदायी जीवन भी व्यतीत करूँगा।

हुए गद्‌गद्‌ इसी को (पृ० ८७)

शब्दार्थ—रघुनन्दनानुज = रामचन्द्र जी के अनुज लक्ष्मण। शिशिर कण=ओस की बूद। प्रातरम्बुज=प्रभातकालीन कमल। दीन रोते=व्याकुल भाव से रोते हुए। द्रवित=पिघलता। कातर=आर्त, दुखी। अर्द्धांश=आधा भाग। सुहृत=हितैषी। सहचर=साथी। त्राण=रक्षा का साधन।

भावार्थ—यह कहकर राम के अनुज लक्ष्मण गद्‌गद्‌ हो गए। उस समय आँसुओ से भीगा हुआ मुख मण्डल, ओस की बूदो से पूर्ण प्रभातकालीन कमल के समान शोभायमान हो रहा था। सूर्य कुल के सूर्य रामचन्द्रजी उनके सम्मुख ही खड़े हुए थे ? कहा नहीं जा सकता कि देवताओं के लिए यह सुख की बात थी अथवा दुख की। छोटे भाई लक्ष्मण को इस दीन भाव से रोता हुआ देखकर करुणानिधि रामचन्द्र जी भला क्या अब भी नहीं पिघलते ? उन्होंने कहा – हे लक्ष्मण आओ, दुखी मत बनो। सदैव ही राम के जीवन के अर्द्धांश को प्राप्त करो। आज का यह प्रभात अनुपम है। बन में भी मै अपने राजत्व को नहीं खो सका। हे अनुज मुझ से तुम कभी अलग नहीं हो। तुम्हीं मेरे हितैषी, साथी, मत्री, सेवक, सभी कुछ हो।

राम के इन वचनो को सुनकर लक्ष्मण अपने मृत शरीर के लिए जैसे नया जीवन पा गए हों। कैकेयी भी मानो अपनी रक्षा का साधन पाकर बच गई। उसकी मनोकामना पूर्ण हुई। रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी अयोध्या मे नहीं रहना चाहते थे। कैकेयी उन्हें रखना नहीं चाहती थी। फलतः राम लक्ष्मण के इस निश्चय के कारण दोनों ही पक्ष सन्तुष्ट थे। सहज सन्तोष इसी को कहते हैं।

निकलकर कष्ट उनका ।" (पृ० ८७ ८८)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—तब वहाँ से निकल कर दोनों लघु और ज्येष्ठ भ्राता चले। पर न जाने किधर से आता हुआ शब्द कैसा है ? "हे पुत्र मुझे इस प्रकार मृत्यु के मुह में छोड़कर और मुँह मोड़कर क्यो चल दिए ।" पिता के इन बचनो को सुनकर रामचन्द्र जी बोले—हे भाई अब मैं क्या करूँ ? पिता के इस दुख को किस प्रकार दूर करूँ ? उनका सारा धीरज आज नष्ट हो चुका है । आओ यहाँ से चले । कही उनका कष्ट हमें कातर न बनादे ।

बढाकर चाल नये थे । (पृ० ८८)

शब्दार्थ—फास=बाधा । विश्राति पूर्वक=विश्राम युक्त । अजिर सार= आगन रूपी सरोवर । युग हस=हसों की जोड़ी । अवतस=भूषण । पार्श्व= बगल । भृत्य=सेवक ।

भावार्थ—अपनी चाल में कुछ और शीघ्रता लाते हुए उन्होने दीर्घ निश्वास लिया । उनका यह निश्वास अपने दुख को व्यक्त करने के लिए नहीं था । इसके द्वारा उन्होने हृदय की उस बाधा को दूर किया जो उन्हें पिता दशरथ के निकट ममता के बन्धन में डाल रही थी । जिस प्रकार दोनों भाई स्वस्थ और विश्राति पूर्वक आए थे, उसी प्रकार अलौकिक शाति लिए दोनो भाई चले । ये महल के आँगनरूपी सरोवर के युगल हंस के समान थे । दोनों स्वय ही सूर्य वश के भूषण थे । निकट से सेवक जन आकर सिर झुकाते हुए उन्हें प्रणाम करते फिर स्थिर दृष्टि से उन्हें देखते थे । यद्यपि दोनो भाई अभी इसी ओर से गए थे, फिर भी वे सबको नए से जान पड़ते थे ।

लगे माँ के अस्पष्ट भय है । (पृ० ८६)

शब्दार्थ—सुमत्रागम = सचिव सुमत्र का आगमन ।

भावार्थ—राम और लक्ष्मण जब माता के महल में प्रवेश करने के लिए घूमे तभी उन्हें 'जियो कल्याण हो,' का स्वर सुनाई पड़ा । सचिव सुमत्र का आगमन जान दोनों भाई वहीं रुक गए और 'आहा काका' कहते हुए वे विनम्रता के साथ नतमस्तक हुए । मत्री सुमत्र ने कहा "भय्या अब तक कहाँ थे ।" राम ने बता दिया कि वे कहाँ थे ? उन्होंने फिर कहा कि पिताजी व्याकुल

हो रहे हैं। वे अपना धैर्य खो रहे हैं। आप शीघ्र ही उनसे जाकर मिलिए। यह सुनकर मन्त्रिवर अत्यन्त विकल हो गए। वे कारण पूछना चाहते थे परन्तु पूछ न सके। 'क्यों' शब्द उनके मुँह से निकलते निकलते ही रह गया। अशुभ बातें का पूछना भी कष्ट मय होता है, क्योंकि एक अज्ञात भय उसमें छिपा रहता है कि उसका उत्तर न जाने क्या हो ?

न थी गति लौटकर क्यों ?" (पृ० ८६)

शब्दार्थ—सभागत=सभा में आए हुए। गूढ़तर=रहस्य मय।

भावार्थ—किन्तु अन्य कोई उपाय नहीं था। इसलिए सुमन्त्र ने कहा (राजा दशरथ को) क्या हुआ ?" क्या हम लोगों के हृदय को भी विकारों की कलुषित छाया ने स्पर्श किया है ? मेरे मन में भी यह चिंता हो रही थी कि राजा अभी तक शयन कक्ष में क्यों है ? वैद्यराज को बुलाऊँ या मैं स्वयं ही उन्हें देख आऊँ ? सभा में आए हुए सभ्य जनों को जाकर क्या उत्तर दूँ ? भगवान कुशल करे, बाधाएँ वैसे ही रहस्यमय होती हैं। इधर तुम लौटकर कहाँ जा रहे हो ?"

कहा सौमित्रि ने श्रांत होकर ! (पृ० ६०)

शब्दार्थ—श्रांत=थककर।

भावार्थ—लक्ष्मण ने उत्तर में कहा "हे तात यह कारण मुझसे सुनिए और इस उचित अनुचित पर स्वयं विचार कीजिए। मझली माँ कैकेयी हमें वनवास दे रही है और भरत के लिए राज्याधिकार माँग रही है। लक्ष्मण की बात सुनकर सुमन्त्र इसी प्रकार सहम गए जैसे मार्ग में चलने वाला सामने सर्प को देखकर सहम जाता है। मन्त्रिवर अत्यन्त व्याकुल हो गए। वे साँस भी न ले सके। उनका निश्वास जैसे थककर भीतर ही रह गया हो।

सँभलकर अंत मर्म अथ से।" (पृ० ६०)

शब्दार्थ—इति=अंत। अथ = प्रारम्भ।

भावार्थ—अंत में अपने को सँभालकर सुमन्त्र इस प्रकार बोले "हाय विधाता ये तो खेत पर ही ओले पड़ गए। यह कुमति की वायु कहाँ से उड़कर आई जिसने किनारे पर लगती हुई नाव को भी डगमगा दिया। भरत राजा दशरथ के पुत्र होकर कभी राज्य स्वीकार नहीं करेंगे। राज्य पाकर वे

अत्यन्त दुखी होंगे और रो रो कर उसे लौटा देंगे। बिना भरत के मन व
बात जाने बनवास का प्रस्ताव व्यर्थ ही है। न जाने विधाता के हृदय में क्य
है ? तुम यहीं रहो मैं जाकर देखता हूं कि यह सब क्या व्यापार हो रहा है
मैं तुम्हें धर्म के मार्गों पर जाने से न रोकूंगा तथापि इस रहस्य
प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समझ तो लूं।"

उत्तर की अनपेक्षा ... लोक ललाम। (पृ० ६१)

शब्दार्थ—अनपेक्षा=बिना कोई आवश्यकता समझे। अन्तर्यन्त्र=हृदय व
गति। लोक ललाम=लोक में श्रेष्ठ।

भावार्थ—राम और लक्ष्मण से बिना किसी उत्तर की अपेक्षा किए नेत्र
में आँसू रोकते हुए सुमत्र राजा दशरथ की ओर शीघ्रता से चले। चलने
साथ ही उनके हृदय की गति स्पदन मय हो गई। 'अरे' सिर्फ इतन
ही कहकर राम उन्हें देखते रह गए और लोकललाम लक्ष्मण राम क
देखते रहे।

चले फिर रघुवर ... आश्विन जैसे। (पृ० ६१)

शब्दार्थ—घन सा = बादलों सा। प्राणानिल=प्राण रूपी हवा।

भावार्थ—इसके उपरान्त रामचन्द्र जी माँ कौशल्या से मिलने
लिए चले मानो प्राणरूपी वायु ने रामचन्द्र रूपी बादल को उस ओर बढ
दिया हो। राम के पीछे लक्ष्मण भी उसी प्रकार चले जिस प्रकार भाद्र मास
के पीछे आश्विन का महीना आता है।

चतुर्थ सर्ग

करुणा-कंजारण्य इस जन का (पृ० ६२)

शब्दार्थ—कंजारण्य=कमलों का बन । रवे=रवि, सूर्य । गुणा-रत्नाकर = गुणों के समुद्र । आदि कवे=आदि कवि बाल्मीकि । भावराशि=भावनाओं का समूह । मनोरथ=मन रूपी रथ ।

भावार्थ—करुणा रूपी कमल वन के सूर्य, गुणों के सागर, कविता के जनक आदि कवि वाल्मीकि मुझे अपनी कृपा का वरदान दीजिए । भावनाओं की राशि से मेरे हृदय को भर दीजिए । कविता के इस सुन्दर राज पथ से मैं अपने मन रूपी रथ पर चढकर तपोवन के दर्शन कर सकूँ इस सेवक के हृदय की यही अभिलाषा है । (राम और लक्ष्मण बन की ओर गमन करते हुए तपोवन के वासी बनना चाहते हैं, साकेत का कवि भी उनके साथ जाकर तपोवन के दर्शन की कामना करता है ।)

सुख से सद्यः जनक सुता । (पृ० ६३)

शब्दार्थ—सद्य=इसी समय, तुरत । पीताबर=पीला वस्त्र । परिधान=वस्त्र देवार्चन=देव पूजा । मूर्ति मयी = मूर्त्ति के समान । ममता=प्रेम । अतिशय= अत्यन्त । जनक सुता = सीता

भावार्थ—माता कौशल्या ने सुख पूर्वक तुरन्त ही स्नान कर पीले वस्त्र धारण कर रखे थे । वे पवित्रता से ओतप्रोत, ममता माया को मूर्त्ति बन देव पूजा में व्यस्त थीं । कोमल हृदय वाली कौशल्या अत्यन्त आनन्द से भरी हुई थीं । उनके निकट ही जनक पुत्री सीता जी खड़ी हुई थीं ।

गोट जड़ाऊँ वीणापाणी (पृ० ६३-६४)

शब्दार्थ—गोट = किसी वस्त्र के किनारे पर लगाई गई पट्टी । जलदोपम=बादल के समान । पट = वस्त्र । परिधि = घेरा । विधु मुख = चन्द्र मुख । सुषमा = सुन्दरता । भाव सुरभि = सद्भावों की सुगन्धि । सदन=घर । अमल=

निर्मल । वदन=मुख । छदन = आवरण । कुंद कली = एक सफेद फूल कली । रदन=दाँत । अलकें = बाल । मधुप=भौंरे । भाग सुहाग=भाग्य अ सुहाग । अचल वद्ध=वस्त्र से ढके हुए । कमला=लक्ष्मी । कल्याणी=मंग दायिनी । वीणापाणी=सरस्वती ।

भावार्थ—सीता के सौन्दर्य शृंगार का वर्णन करते हुए कविका कथन "सीता के मुंह पर पड़े हुए घूंघट की जड़ाऊ गोट इस प्रकार शोभायम थी मानो बादल के समान वस्त्र पर बिजली चमक रही हो । उनके चन्द्र पर प्रकाश के घेरे के समान छाई हुई आभा सुख और सुन्दरता की सीमा थ सीता का निर्मल कमल के समान मुख सद्भावों की सुगन्धि का निवास स्थ था । कुंदकली के समान उनके दाँत थे जिनको छबीले अधर ढके हुए सीता की लटों के रूप में मानो सर्प खेल रहे थे और पलकों में जैसे दो भ्र पल रहे थे । कपोलों के सौंदर्य का कहना ही क्या, वहाँ शोभा की कि फूट रही थीं । उनकी गोल गोल गोरी बाहें आँखों के लिए दो मार्ग ब हुई थीं । आँचल से बँधे हुए सीता जी के दोनों कुच जैसे उनके पक्ष के भ और सुहाग थे । वह लक्ष्मी के समान कल्याण कारिणी थी, तथा उ वाणी में सरस्वती का वास था ।

'माँ ! क्या लाऊँ ...... उसकी समता (पृ० ६४)

शब्दार्थ –समता=बराबरी ।

भावार्थ—देव पूजा में लगी हुई माता कौशल्या से बराबर सीत यही पूछ रही थीं माँ अब क्या लाऊँ ? सास जिस समय जो वस्तु माँ सीताजी तुरन्त ही उसे लाकर देती । कभी वे आरती सजाकर देती, कभी धू इस प्रकार वे पूजा की सभी सामिग्री सजा रही थीं । अपने प्रति कौश की अपार ममता देखकर सीता जी अपनी सेवा द्वारा उनकी समता करने प्रयत्न कर रही थीं ।

आज अतुल ...... प्रकट-सा था ! (पृ० ६४-६५)

शब्दार्थ—मैना=पार्वती की माता । उमा=पार्वती । प्राणप्रद = दायिनी । अन्तर्जगत=हृदय का संसार ।

और प्रसन्न थे। वे दोनो इस प्रकार शोभायमान हो रही थीं मानो साक्षात मैना और उमा ही हैं। दुख और शोक से रहित वह स्थान इस दुख भरे ससार से भिन्न जान पड़ता था। वहाँ तो जीवन दायिनी पवन चल रही थी। भला ऐसा पवित्र स्थान अन्यत्र कहाँ हो सकता था? वह स्थान अमृत के तीर्थ स्थान के तट के समान था। उत्साह, आनन्द, सेवा और ममता से भरा आन्तरिक भावो का ससार ही वहाँ प्रगट हो रहा था।

इसी समय प्रभु .... प्रसाद पाओ।" (पृ० ९५)

शब्दार्थ—अक्षत=चावल।

भावार्थ—इसी अवसर पर प्रभु रामचन्द्र जी भाई लक्ष्मण सहित वहाँ निर्लेप भाव से आए। जब तक वे प्रणाम करें माँ ने उन्हें पहिले ही आशीर्वाद प्रदान किया। सीता जी कुछ हँसकर लज्जित हो गई। नेत्र तिरछे हो गए। लज्जा वश उन्होंने घूघट निकाल लिया। मुख पर लालिमा छा गई। माँ कौशल्या ने कहा "बहू तनिक अक्षत रोली तो लाना। इनके तिलक लगा दूँ। हे वेटा युग युग जीओ। आओ, पूजा का प्रसाद तुम भी प्राप्त करो।"

लक्ष्मण ने सोचा — .... सु-वास लिया! (पृ० ९५-९६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लक्ष्मणजी ने हृदय मे विचारा "क्या कौशल्या राम को वन में जाने देगीं? क्या प्रभु इनको भी त्याग सकेंगे? इन्हें छोड़कर वे कोनसा धन वन मे सचित करेगे? हे मझली माँ कैकेयी तू मर क्यो नहीं गई। लोक लाज से भी तू नहीं डरी।" यह सोचकर लक्ष्मण ने निश्वास लिया। माता कौशल्या ने उसे हर्ष का प्रतीक समझा।

बोले तव .... भरत यहाँ।" (पृ० ९६)

शब्दार्थ—नव घन रव=नए बादलों के स्वर के समान। कृतार्थ=सफल मनोरथ। परमार्थ=दूसरो के लिए।

भावार्थ—तब धर्म मे दृढ श्री रामचन्द्र जी नए बादल के समान गम्भीर स्वर मे इस प्रकार बोले "हे मा मै आज सफल मनोरथ हो गया। मेरे लिए तो स्वार्थ भी परमार्थ बन गया। मुझे तो जगल का पवित्र जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मै अभी वहाँ प्रस्थान कर रहा हूँ।

यहाँ भरत राज्य करेंगे।"

माँ को प्रत्यय ... क्या होता है।" (पृ० ६६-६७)

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास। स्वत्व = अधिकार।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की बात पर माता कौशल्या विश्वास न कर सकीं। इसी लिए उन्हें कोई आशंका नहीं हुई। परन्तु सीता सभी कुछ समझ गईं। क्यों कि वे जानती थीं कि प्रभु कभी झूठ न कहेंगे। उनके हृदय पर भय की रेखा अंकित हो गई। परन्तु माता कौशल्या ने उधर ध्यान नहीं दिया। वे हँसकर बोलीं—चुप रह, ऐसी बात परिहास में भी मत कह। भरत क्या तेरा अधिकार लेना चाहेगा? वह भरत जो तेरा भाई है क्या तुझे बन में भेजेगा? क्या तू मुझे डराना चाहता है। हे लक्ष्मण देख तो सही तेरा बड़ा भाई मेरे धैर्य की परीक्षा लेना चाहता है। यह क्या, लक्ष्मण तो रो रहा है। हे ईश्वर यह क्या होने वाला है।

उनका हृदय सशंक ... टक लाकर। (पृ० ६७-६८)

शब्दार्थ—आतङ्क=भय। घातें=चाल। मृदु देही=कोमल शरीर। भुवन= संसार। मनचीता = मनोवाञ्छित।

भावार्थ—कौशल्या का हृदय सशंकित हो गया। वह एक अनिष्टकारी भय से भर उठा। उन्होंने सोचा—तब क्या ये बातें सत्य हैं? हे विधाता तेरी यह कैसी चाल है? यह सोचकर कोमल शरीर माता कौशल्या काँप उठीं। वे चक्कर खा कर गिरीं। उनके पैरों के नीचे सारा संसार घूम गया। वे गिरकर इस प्रकार बैठ गईं मानो किसी ने घेर कर एक स्थान पर उन्हें जकड़ दिया हो। उनकी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं, पर संसार उन्हें शून्य सा प्रतीत होता था। उनकी सभी मनोवाञ्छित अभिलाषाएँ नष्ट हो गईं। सीता ने उन्हें जाकर सहारा दिया। कौशल्या स्थिर दृष्टि से देखती ही रह गईं।

प्रभु बोले ... श्रुत ही है।" (पृ० ६८-६९)

शब्दार्थ—श्रुत=सुना हुआ।

भावार्थ—प्रभु बोले—"हे माँ किसी भी प्रकार का भय मत करो। एक निश्चित समय तक धैर्य धारण करो। अवधि समाप्त होने पर मैं घर आ जाऊँगा। बन में भी मुझे सुख ही मिलेगा।

राम के इस वचन को सुनकर कौशल्या ने कहा—हा, क्या सचमुच ही
हें अयोध्या से निकाला जायगा। यह तुम्हारे लिए बन का शासन कैसा ?
राम तुम तो सबको प्रिय हो। किसने यह निष्ठुरता का कार्य किया है।
ा तुझ से कुछ अपराध हुआ है ? यदि इसी कारण क्रोध पूर्वक तुझे दण्ड
या गया है तो अभी मैं तेरी ओर से प्रार्थिनी बन कर प्रभु (दशरथ) से
मा माग लूँगी। क्या तेरा यह प्रथम अपराध और मेरी विनीत विनय तुझे
मा न दिला सकेंगे। हे पुत्र बताओ तो सही क्या बात हुई है ? अथवा तू
त रह, बेटा लक्ष्मण तू ही कह। तेरी बात सुनने के लिए मेरा कठोर हृदय
तुत है। किसी प्रकार का भय मत कर। अपराध का दण्ड तो सुना ही
ने योग्य होता है।

"माँ ! यह कोई ... ये वन का।" (पृ० ६६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लक्ष्मण ने कहा—हे माँ ऐसी कोई बात नहीं है। तात राम-
न्द्र जी ने कोई अपराध नहीं किया। वे तो दूसरों के दोषों को भी दूर करने
ले हैं। सभी सद्गुणों के वे धारक हैं। पाप तो उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता।
ाय तो उन्हें स्वय ही प्राप्त है। प्राप्त किया हुआ राज्य भी उन्होंने त्याग
या। इतना बडा त्याग और किसने किया है। परन्तु पिता के प्रण को रखने
लिए हम सभी को बिलखता हुआ छोड़कर मझली माँ कैकेयी की अभि
ाषा पूरी करने के लिए ये बन का मार्ग ग्रहण कररहे हैं।

"समझ गई, मैं ... भीख मिले।" (पृ० १००)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—कौशल्या ने कहा—मैं कैकेयी की इस नई नीति के रहस्य को
न समझ गई। राम को राज्य न मिलने का मुझे तनिक भी दुख नहीं। चाहे
म राजा बने अथवा भरत दोनो मे कोई अंतर नहीं है। मॅझली बहन कैकेयी
ज्य प्राप्त कर भरत को उसका अधिकारी बनावें। उनका पुत्र प्रेम धन्य
। भरत को राज्य देने का हठ भी उनके हृदय के स्नेह से उत्पन्न हुआ है।
झे राज्य की तनिक इच्छा नहीं है, और न इसके लिए कैकेयी के प्रति
निक भी ईर्ष्या भाव है। मै तो इतना ही चाहती हूँ कि मेरा राम वनवासी

न बने। मेरे पास यहीं कहीं बना रहे। मैं कैकेयी के पैरों पड़ कर यह हठपूर्वक कहूँगी कि राम के यहाँ रहने से भरत के राज्याधिकार प्राप्त करने में कोई विघ्न उपस्थित नहीं होगा। इसलिए मुझे राम की भीख मिल जाए। वह मुझसे दूर न हो।

"नहीं, नहीं, यह गद्गद् थी।" (पृ० १००–१०१)

शब्दार्थ—दैन्य विषय = दीनता का विषय। गिरा=वाणी। व्याप्त हुई=फैल गई। अनुपद=चरणों का अनुसरण।

भावार्थ—राम की माता कौशल्या अपनी बात समाप्त करे इससे पूर्व ही एक नवीन वाणी गूंज उठी। नहीं, नहीं यह कभी नहीं हो सकता। दीनता की यह बात बस यहीं तक सीमित रहनी चाहिए।

यह सुन कर सभी चकित नेत्रों से इधर उधर देखने लगे कि यह स्वर किसका है? तब उन्होंने वहाँ सुमित्रा को पाया। वधू उर्मिला भी उनके चरणों का अनुसरण करती हुई आ रही थी। उसे देखकर सरस्वती भी आत्म-विभोर हो रही थी।

देख सुमित्रा इस क्षण तू?" (पृ० १०१-१०२)

शब्दार्थ—सानुज=अनुज लक्ष्मण सहित। स्वत्वों=अधिकारों। वंशोचित=वंश की मर्यादा के अनुकूल। याचना=मांगना। वर्जित=निषिद्ध। परभाग=दूसरों का हिस्सा। नीरव=शांत।

भावार्थ—सुमित्रा को आता देख रामचन्द्र जी ने अनुज लक्ष्मण सहित प्रणाम किया। सुमित्रा ने आशीर्वाद देते हुए कहा—दोनों दीर्घ जीवी और यशस्वी बनो। फिर सिंहनी के समान वह क्षत्राणी इन शब्दों के साथ गरजती हुई बोली—अधिकारों के लिए भिक्षा नहीं माँगी जाती। ऐसी इच्छा ही हृदय में नहीं आनी चाहिए। हृदय में आर्योचित रक्त बहता रहे और आर्य भाव की श्रेष्ठता बनी रहे। अपने वंश की मर्यादा के अनुकूल हमने शिक्षा प्राप्त की है, फिर क्यों हम अपने स्वत्व के लिए भिक्षा माँगेंगी? प्राप्त की जाने वाली वस्तु को भिक्षा रूप से लेना हमारे लिए निषिद्ध है। यह हमारे गौरव के अनुकूल नहीं। अपने अधिकार तो अपनी भुजाओं से प्राप्त करने चाहिए। हम दूसरों का भाग नहीं छीनना चाहती, परन्तु अपने अधिकारों का

याग भी नहीं कर सकतीं। वीर पुरुष न तो किसी के अधिकारों का अन्यायपूर्वक हनन करते हैं और न अपना भाग दूसरों को सौंपते हैं। हम ऐसी ही वीर पुत्रों की माता हैं। भिक्षा माँगना हमारे लिए मृत्यु के समान है। हे राघव क्या अब भी तुम शात रहोगे? क्या इस अन्याय को चुपचाप सहन कर लोगे? परन्तु मैं यह अन्याय सहन नहीं कर सकती। लक्ष्मण, तू क्या कहता है? इस अवसर पर चुप क्यों है?

"माँ क्या करूँ . कोई रेखा! (पृ० १०२)

शब्दार्थ—अङ्गीकार=स्वीकार।

भावार्थ—लक्ष्मण ने कहा-हे माँ मैं क्या करू, तुम्हीं मुझे बतलाओ। ऐसा कौन सा कार्य है जिसे मैं नहीं कर सकता। यदि मेरी बात आर्य (रामचन्द्र जी) पहले ही स्वीकार कर लेते तो सारे द्रोही कभी के नष्ट हो गए होते। अब भी यदि आर्य आदेश दें तो सभी बिगड़े कार्य बन सकते है। इतना कहकर लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी की ओर देखा। परन्तु उनके मुख पर किसी प्रकार का भाव परिवर्तन नहीं था।

बोले वे कि यह वर दो!" (पृ० १०२, १०३-१०४)

शब्दार्थ—स्पृहा=कामना। सव्रण=चापल। वाम=टेढा।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने कहा—हे भाई लक्ष्मण शात रहो। हे माता तुम भी सुनो। यदि आज मैं बन न जाऊँ तो राज्य पाने के लिए किस पर अपने बल का प्रयोग करूँ? पूज्य पिता पर? माता कैकेयी पर? अथवा भरत जैसे भाई पर? वह भी किस लिए, राज्य प्राप्ति के लिए? वह राज्य जो तृण के समान तुच्छ है। सबको आहत कर क्या मैं इस प्रकार माँ की कामना और पिता के प्रण को नष्ट कर दूँ। आज मुझे जो गौरव प्राप्त हुआ है उसे त्याग दूँ? क्या मेरे लिए भोग विलास के सुख साधनो के बदले धर्म को बेचना उचित होगा? हे माता तुम्हीं बतलाओ, मैं क्या करूँ? इस प्रकार सहसा अधीर होना उचित नहीं। मै अपना अधिकार कहाँ खो रहा हूँ। अपनी प्राप्त की हुई वस्तु का ही तो मैं त्याग कर रहा हूँ? तुम्हारा राम सामर्थ्य हीन नहीं है। विधाता भी उसके विरुद्ध नहीं है। धन और धाम से धर्म बड़ी वस्तु है। अन्याय किया ही किसने है, जिसके प्रतिकार में क्रोध किया

कौशल्या क्या   शान्ति न पाऊँगी।" (पृ० १०७ १०८)

शब्दार्थ—अटना=रुकावट बनना। दग्ध=जलना। विसर्जन=त्याग।

भावार्थ—कौशल्या क्या कर रही थीं ? वे किसी प्रकार धैर्य धारण करने का प्रयत्न कर रही थीं। रामचन्द्रजी के वचनों को कोई काट न सका। एक भी तर्क उनकी बातों का प्रतिकार न कर सका। पहिले तो सुमित्रा राम की बातें सुनकर भ्रमित हो गई, बाद में धीरे-धीरे शान्त बन गई। वे स्थिर भाव से खड़ी रहीं, तनिक भी हिल-डुल न सकीं। तब कौशल्या ने ही कहा "हे पुत्र तब तुम वन की ओर ही प्रस्थान करो। नित्य धर्म रूपी धन को संचित करो। जिस गौरव को प्राप्त कर तुम जा रहे हो, उसी गौरव के साथ लौट आओ। तुम्हारे हाथों पूज्य पिता के प्रण का पालन हो। माता कैकेयी के इष्ट की सिद्धि हो। परिवार में कलह न हो, शान्ति बनी रहे। इस प्रकार कुल में कुल की शोभा की वृद्धि हो। यदि मेरे कार्य पुण्यशाली होते तो यह आपत्ति क्यों आती ? फिर भी यदि मैंने पुण्य किए हो तो वे ही तुम्हारी रक्षा के साधन बनें। देवता सदैव तुम्हारा कल्याण करें। मैं तुमसे और क्या कहूँ ? वन के वृक्षों की भाँति फलो-फूलो। फिर भी इतना और कहना चाहती हूँ कि वन में मुनियों के सहवास में ही रहना।

हे बहन सुमित्रा, जिसे गोद में खिलाया है, जो इस हृदय का प्रकाश है वह आज हिंसक पशुओं से भरे जगल में जा रहा है। इस प्रकार हम गौरव का अर्जन कर रही हैं, अथवा यह अपने सर्वस्व का त्याग है। इस राम के लिए तो त्याग ही एकमात्र धन है पर मैं तो माँ का हृदय रखती हूँ। हाय, मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूँ। क्या चिन्ता के दाह मे जलती रहूँ ? यदि मैं मर भी गई तो भी मैं शान्ति न पा सकूँगी।

कहा सुमित्रा   हृदय हिला। (पृ० १०६-११०)

शब्दार्थ—अनस्थिर=जो स्थिर न हो। धरणीतल=पृथ्वी तल। बड़भागी =बड़े भाग्य वाला। कुलक=आनन्दित होना।

भावार्थ—सुमित्रा ने तब इस प्रकार कहा "हे जीजी, इस प्रकार व्याकुल होना उचित नहीं। आशा के सहारे हम जीवित रहेंगी। अवधि के समाप्त होने पर राम से हम फिर मिल सकेंगे। इसके उपरान्त वे रामचन्द्रजी से

अनस्थिर भाव से बोलीं "वत्स राम जैसी तुम्हारी इच्छा है वैसा ही हो। चाहे इसका कुछ भी परिणाम निकले। हिमालय से भी ऊँचा और महिमावान हृदय लेकर तुमने मनुष्य जन्म लिया है। तुम्हें पाकर पृथ्वी भी धन्य हो उठी है। मैं भी यही कहती हूँ कि तुम वन जाओ। अपने साथ लक्ष्मण को भी ले जाओ। वन के कष्टों को धैर्य सहित धारण करो। दोनों सिंह के समान रहना। हे लक्ष्मण तू सचमुच ही बड़े भाग्य वाला है। तू जो अपने बड़े भाई से इतना प्रेम रखता है। वन में रामचन्द्रजी मन हो तो तू तन के समान उनसे अभिन्न रहना। यदि वे धन के समान हों तो तू सेवक के समान उनके साथ रहना।

सुमित्रा के वचन सुनकर लक्ष्मण का शरीर हर्षित हो उठा। मन मानो आनन्द से भर गया। अब उन्हें माँ की आज्ञा भी प्राप्त हो गई थी। परन्तु यह किसका हृदय है जो यह बात सुनकर काँप उठा।

कहा उर्मिला वहीं छाया। (पृ० ११०-१११)

शब्दार्थ—विराग=वैराग्य। प्राणस्नेही=स्नेह भरे प्राण।

भावार्थ—उर्मिला ने मन ही मन कहा "हे मन तू प्रियतम के मार्ग में बाधा उपस्थित मत कर। आज स्वार्थ भाव के स्थान पर त्याग ही उचित है। अथवा इस त्याग में ही स्वार्थ निहित है। यह प्रेम भी वैराग्यमय बन जाय। इसलिए हे मन तू स्वार्थ वासना के विकारों से आच्छन्न मत हो। दुख के भार से अत्यन्त व्याकुल न हो। तू राम और लक्ष्मण के भ्रातृप्रेम का अमृत बरसने दे जिससे इस पृथ्वी पर स्वर्गीय आदर्श की सृष्टि हो।

सीताजी अब भी चुप थीं। उनके स्नेह से भरे प्राण राम के लिए प्रस्तुत हैं। वे प्रिय पत्नी भला कहती भीं क्या? प्रकाश और छाया की भाँति जहाँ राम रहेंगे वहाँ सीता भी रहेंगीं।

इसी समय ध्येय नहीं। (पृ० १११-११२)

शब्दार्थ—परिवार युक्त=परिवार के दुख में भागी। अविभिन्न=जो अलग न हो। पितृस्पृहा=पिता की इच्छा। ज्ञेय=जानी हुई।

भावार्थ—इसी अवसर पर दुख से भरे हुए मंत्री सुमन्त्र वहाँ आए। वे रघु-परिवार के दुख से उदासीन नहीं थे वरन् परिवार के समान ही दुख-

कोमल हाथ आगे बढ़े। वे मानों कमल नाल सहित दो कमल ही थे। सीत शात थी और सब रो रहीं थीं। आँसुओं से उनका मुख भीग रहा था। सीत को वल्कल वस्त्र लेते हुए देखकर माता कौशल्या चिल्ला उठीं। उनके ने आँसुओं से दूने भर उठे। वे बोलीं—बहू तू अपने हाथों को हटा ले। वल्कल वस्त्र हैं, और तेरी हथेलियाँ बड़ी कोमल हैं। यदि ये वस्त्र हथेलियं से छू भी जायगे तो उनमे छाले पड़ जायँगे। तुम कोसल राज्य की वधू औ मिथिला की पुत्री हो। मुझे छोड़कर इस प्रकार कहाँ जा रही हो? बन के मार्ग तो कटको से भरे हैं और तू मन के समान कोमल कुसुम कली है। हे विधाता तू किस पर कुपित हुआ है? हे राम सीता को बन जाने से रोको क्या यह वन में जीवन बिता सकेगी? उसके ताप, बर्षा और शीत को सहन कर लेगी। सीता को बन जाने से रोकने पर अनेक प्रकार के कष्टों की बाते सुनने को नहीं मिलेगीं। बन के सारे दुख उसे नहीं सहने पड़ेंगे। जब बन में आँधी चलेगी तब यह कोमल शरीर सहसा उड़ जायगी।"

आ पड़ता जब मुह धोना।" (पृ० ११५-११६)

शब्दार्थ—सोच=चिंता की बात। निदेश=निर्देश, आदेश। प्राणसखी= सीताजी।

भावार्थ—जहाँ दुख और चिंता का अवसर आ जाता है यहा फिर सकोच नहीं रहता। प्रभु ने माँ का आदेश पाकर प्राणप्रिया सीता को समझाया। बन के सारे कष्टों और भयो का वर्णन स्पष्टता के साथ किया। वे कष्ट और भय ऐसे थे जिन्हें सुनकर मुँह मुर्झा जाए और शरीर वेदना से पीड़ित हो। उन्होंने कहा "जगल में तुम्हें गर्मी, बर्षा और शीत सभी कुछ सहना पड़ेगा। बाघ और भालुओं के बीच में रहना होगा। वह कार्य अबलाओं का नहीं है। बन में मानव प्राणी तो रहते ही नहीं। खाना पीना सभी कुछ वहाँ त्यागना पड़ता है। रात्रि में सोना भी वहाँ कठिन है। बन के पशुओं की भाँति ही वहाँ जीवन व्यतीत करना पड़ता है। रोना भी वहाँ व्यर्थ ही है।

किन्तु वृथा तो पूरे ही। (पृ० ११६–११७)

शब्दार्थ—उच्छिन्न=नष्ट करना, खडित करना। मातृसिद्धि=माता कैकेयी

आज बन गमन के अवसर पर भी वह मुखमण्डल वैसी ही स्वाभाविक सौम्यता धारण किए हुए था। सत्य तो यह है कि समुद्र चाहे वर्षा हो अथवा गर्मी एक सा ही बना रहता है। वह कभी मर्यादा का त्याग नहीं करता। यह पृथ्वी सिंधु की मर्यादा की सदैव साक्षिणी है। सिंधु के समान ही रामचन्द्रजी ने सुख दुख में समान भाव रखा। सत्य और धर्म की श्रेष्ठ भावनाओं को भरते हुए, जन समूह के कोलाहल को स्वयं शांत करते हुए बन गमन के लिए व्याकुल रामचन्द्र जी किसी प्रकार आगे बढे। रथ के पहुँचने से पूर्व ही वे मन रूपी रथ पर चढ़कर बन पहुँच गए।

रख कर उनके वचन .... फिर लोक में।" (पृ० १२८)

शब्दार्थ—जलधि कल्लोल=सागर की तरगें। पौर जनों=नगर निवासी गण।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की बात को मानते हुए लोग लौट जाते थे, किन्तु शीघ्र ही रामचन्द्र जी के वियोग में अपने को अत्यन्त दुखित पाकर वे झुंड के झुंड बनाकर राम के रथ के पास आ जाते थे। उनका आना जाना समुद्र की तरगों की भांति था जो जल प्रवाह से तट की ओर, और तट से जल प्रवाह की ओर लौटती थीं। रामचन्द्र जी ने तब अत्यन्त प्रेम पूर्वक सम्बोधन कर नगर निवासियों से हसते हुए बड़े ही उचित ढंग से कहा "क्या हमें रोता हुआ ही विदा करोगे? क्या हम पुनः यहाँ लौटकर नहीं आयगें? अब तुम सब लौट जाओ। यथा समय हम भी लौटकर आएगें। तुम्हारे प्रेम पूर्ण भाव बन में हमारे साथ ही जायगें। शोक और दुख के साथ तो उसी को विदा किया जाता है जिससे कि फिर इस संसार में मिलना नहीं होता।

बोल उठे जन .... वे वैर थे। (पृ० १२८-१२६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—जन समुदाय बोल उठा "हे आर्य ऐसी बात मुख से मत निकालो। हम तुम्हें विदा ही कब कर रहे हैं। हमने तो अपना राजा हे राम तुम्हें ही चुना है। इसलिए राज्य छोड़कर हमारे लोक मत की उपेक्षा मत करो। यदि हमें रौंदकर वन की ओर जा सकते हो तो जाओ। यह कहकर बहुत सा जन समाज रथ के मार्ग में लेट गया। आगे बढ़ते हुए घोड़ों के

पैर उठे के उठे रह गए। जन समुदाय को रौंदते हुए वे न चल सके क्योंकि वे भी प्रेम और वैर के अन्तर को पहिचानते थे।

विशेष—साकेत की इन पंक्तियों पर गाधी जी के सत्याग्रह आदोलन की स्पष्ट छाप है।

ऊँचा कर   सन गए। (पृ० १२६)

शब्दार्थ—कधरा सङ्ग=गर्दन सहित। शङ्खालोड़न=शख मथन। उदग्र=विशाल। अम्बुनिधि=सागर। सविषाद=दुख भरे स्वर में। कातर=व्याकुल। आदि आदित्य=प्रथम सूर्य।

भावार्थ—गर्दन सहित अपने वक्ष को कुछ उन्नत करते हुए शंख मथन के समान गम्भीर घोष में जैसे सागर की विशाल तरगें गम्भीर नाद कर रहीं हों, श्रीमान रामचन्द्र जी सविषाद बोले "हे प्रजा जनो उठो मार्ग छोड़ो। इस मोह का त्याग करो। तुम्हारा यह विनत विद्रोह किस लिए हो रहा है? इस प्रकार व्याकुल मत बनो। तुमसे अधिक प्रिय मेरे लिए और कौन हो सकता है? तुम कहो तो मै तुम्हारे लिए अपना भी त्याग कर सकता हूँ। तनिक विचार तो करो, हमारा और तुम्हारा सम्बन्ध तो चिर शाश्वत है। सृष्टि मे प्रथम सूर्य के उदय होने के साथ ही यह सम्बन्ध चला आ रहा है। तुम हमारी प्रजा मात्र नहीं अपितु प्रकृति बन गए हो। क्योकि दोनों के दुख सुख अब एक बन गए हैं।

मैं स्वधर्म   सत्कर्म का। (पृ० १२६-१३०)

शब्दार्थ—ठौर=स्थान। आग्रही=आग्रह करने वाले प्रजाजन।

भावार्थ—तुम सब मेरे प्रति इसीलिए प्रेम भाव रखते हो कि मैंने कभी अपने धर्म पथ को नहीं छोड़ा है। अतएव आज मेरे विरह में दुखी होकर मुझे धर्म मार्ग से विमुख बनाने का यह अनुचित कार्य मत करो। हे प्रजाजनो, यदि तुम्ही मेरे स्थान पर होते तो क्या तुम भी वह कार्य नहीं करते जो मैं कर रहा हूँ। धर्म का पालन करना सहज है, परन्तु उसका सुअवसर पाना कठिन है। मुझे आज सत्कर्म पालन का यही सुअवसर अचानक प्राप्त हुआ है।

आज बन गमन के अवसर पर भी वह मुखमण्डल वैसी ही स्वाभाविक सौम्यता धारण किए हुए था। सत्य तो यह है कि समुद्र चाहे वर्षा हो अथवा गर्मी एक सा ही बना रहता है। वह कभी मर्यादा का त्याग नहीं करता। यह पृथ्वी सिंधु की मर्यादा की सदैव साक्षिणी है। सिंधु के समान ही रामचन्द्रजी ने सुख दुख में समान भाव रखा। सत्य और धर्म की श्रेष्ठ भावनाओं को भरते हुए, जन समूह के कोलाहल को स्वय शात करते हुए बन गमन के लिए व्याकुल रामचन्द्र जी किसी प्रकार आगे बढे। रथ के पहुँचने से पूर्व ही वे मन रूपी रथ पर चढ़कर बन पहुँच गए।

रख कर उनके वचन फिर लोक में।" (पृ० १२८)

शब्दार्थ—जलधि कल्लोल=सागर की तरगें। पौर जनों=नगर निवासी गण।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की बात को मानते हुए लोग लौट जाते थे, किन्तु शीघ्र ही रामचन्द्र जी के वियोग में अपने को अत्यन्त दुखित पाकर वे झु ड के झु ड बनाकर राम के रथ के पास आ जाते थे। उनका आना जाना समुद्र की तरगों की भांति था जो जल प्रवाह से तट की ओर, और तट से जल प्रवाह की ओर लौटती थीं। रामचन्द्र जी ने तब अत्यन्त प्रेम पूर्वक सम्बोधन कर नगर निवासियों से हसते हुए बड़े ही उचित ढग से कहा "क्या हमें रोते हुआ ही विदा करोगे? क्या हम पुनः यहाँ लौटकर नहीं आयगें? अब तुम सब लौट जाओ। यथा समय हम भी लौटकर आएगें। तुम्हारे प्रेम पूर्ण भाव बन में हमारे साथ ही जायगें। शोक और दुख के साथ तो उसी को विदा किया जाता है जिससे कि फिर इस ससार में मिलना नहीं होता।

बोल उठे जन वे वैर थे। (पृ० १२८-१२६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—जन समुदाय बोल उठा "हे आर्य ऐसी बात मुख से मत निकालो। हम तुम्हें विदा ही कब कर रहे हैं। हमने तो अपना राजा हे राम तुम्हें ही चुना है। इसलिए राज्य छोड़कर हमारे लोक मत की उपेक्षा मत करो। यदि हमें रौंदकर वन की ओर जा सकते हो तो जाओ। यह कहकर बहुत सा जन समाज रथ के मार्ग में लेट गया। आगे बढते हुए घोड़ो के

उठे के उठे रह गए। जन समुदाय को रौंदते हुए वे न चल सके क्योंकि भी प्रेम और वैर के अन्तर को पहिचानते थे।

विशेष—साकेत की इन पंक्तियों पर गाधी जी के सत्याग्रह आंदोलन की ट छाप है।

ऊँचा कर सन गए। (पृ० १२९)

शब्दार्थ—कधरा सङ्ग=गर्दन सहित। शङ्खालोड़न=शख मथन। म=विशाल। अम्बुनिधि=सागर। सविषाद=दुख भरे स्वर में। कातर= कुल। आदि आदित्य=प्रथम सूर्य।

भावार्थ—गर्दन सहित अपने वक्ष को कुछ उन्नत करते हुए शख मंथन समान गम्भीर घोष में जैसे सागर की विशाल तरगें गम्भीर नाद कर रहीं , श्रीमान रामचन्द्र जी सविषाद बोले "हे प्रजा जनो उठो मार्ग छोड़ो। ३ मोह का त्याग करो। तुम्हारा यह विनत विद्रोह किस लिए हो रहा है? प्रकार व्याकुल मत बनो। तुमसे अधिक प्रिय मेरे लिए और कौन हो कता है? तुम कहो तो मैं तुम्हारे लिए अपना भी त्याग कर सकता हूँ। नेक विचार तो करो, हमारा और तुम्हारा सम्बन्ध तो चिर शाश्वत है। ष्टि मे प्रथम सूर्य के उदय होने के साथ ही यह सम्बन्ध चला आ रहा है। न हमारी प्रजा मात्र नहीं अपितु प्रकृति बन गए हो। क्योकि दोनों के दुख व अब एक बन गए हैं।

मैं स्वधर्म सत्कर्म का। (पृ० १२९-१३०)

शब्दार्थ—ठौर=स्थान। आग्रही=आग्रह करने वाले प्रजाजन।

भावार्थ—तुम सब मेरे प्रति इसीलिए प्रेम भाव रखते हो कि मैंने भी अपने धर्म पथ को नहीं छोड़ा है। अतएव आज मेरे विरह में दुखी कर मुझे धर्म मार्ग से विमुख बनाने का यह अनुचित कार्य मत करो। हे जाजनो, यदि तुम्ही मेरे स्थान पर होते तो क्या तुम भी वह कार्य नहीं करते ो मैं कर रहा हूँ। धर्म का पालन करना सहज है, परन्तु उसका सुअवसर ाना कठिन है। मुझे आज सत्कर्म पालन का यही सुअवसर अचानक प्राप्त आ है।

मैं बन जाता ... वह कहो ? (पृ० १३०)

शब्दार्थ—निस्नेह=स्नेह हीनता । असद्वस्तु=नाशवान वस्तु ।

भावार्थ—मैं परिवार से रूठकर अथवा किसी भय, दुर्बलता, या स्नेह हीनता वश बन की ओर प्रस्थान नहीं कर रहा । मै तो पिता के वचनों का पालन करने के लिए ही बन की ओर जारहा हूँ । तुम्हीं कहो । क्या मैं बन न जाकर पिता के बचनो को झूठा बनाऊ । इस राज्य जैसी नश्वर वस्तु के लिए हमारा आपस में लड़ना क्या उचित है ? मानलो मैं काँटों में से फूल की भाँति इस राज्य को बल पूर्वक छीन लूँ, तो इस प्रकार अपने राजा भरत के प्रति विद्रोह कर तथा अपने पिता के आदेश की अवहेलना कर क्या मैं आप लोगों के प्रेम का पात्र बन सकता हूँ । जो अपने राजा और पिता का न हो सका, क्या वह प्रजा का हो सकता है ?

ऐसे जन को ... दे दो अभी । (पृ० १३० १३१)

शब्दार्थ—जड़ भरत=आंगिरस गोत्रीय ब्राह्मण जो जड़ की भांति रहते थे ।

भावार्थ- यदि पिताजी ऐसे व्यक्ति के हाथों में राज्य शासन सौंपते, जिसे मैं राज्याधिकार के योग्य नहीं मानता, तब मैं अपने अधिकार के नाते नहीं अपितु प्रजा की कल्याण काममा से प्रेरित होकर कभी उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता । परन्तु भरत के चरित्र से मैं भली भाँति परिचित हूँ । वे हम सब भाइयों में जड़ भरत के समान विख्यात हैं । उन्हें पाकर तुम मुझे भी भूल जाओगे । हे प्रजाजनो सुनो तुमने मुझे अपना राजा चुना है, इसलिए अब मैं अपनी ओर से जिसका समर्थन करूँ तुम उसे अपना राजा चुनो । मेरे हृदय में उनके प्रति जैसा विश्वास है, यदि उससे भी अधिक बढकर भरत दृढ व्रती न निकले तो तुम मुझे अपने से दूर न पाओगे, मैं शीघ्र ही आकर राज्य शासन सभाल लूगा । हे प्रजाजनो मैं यह वचन देता हूँ, अब मुझे बन जाने के लिए मार्ग दो ।

महाराज स्वर्गीय ... राम मे । (पृ० १३१)

शब्दार्थ—सगर=रामचन्द्र जी के पूर्वज । इनकी पत्नी विदर्भ राज की कन्या केशिनी तथा कश्यप कन्या सुमति थी । सुमति से इनके साठ सहस्त्र पुत्र

हुए जो अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा खोजते हुए कपिल मुनि के शाप से भस्म हो गए। केशिनी से असमंजस पुत्र हुआ जो बड़ा अत्याचारी था। राजा सगर ने उसे देश निकाला दे दिया। त्राता=रक्षक।

भावार्थ--स्वर्गीय महाराजा सगर ने प्रजा के हितार्थ अपने पुत्र असमंजस को त्याग दिया था। यदि भरत भी तुम्हारे योग्य न बन सके, राजा बनकर तुम्हारी रक्षा न कर सके तो राम उन्हें कभी अपना भाई स्वीकार नहीं करेगा। हे प्रजाजनो यह बात मत भूलो कि तुम उन राजाओं की प्रजा हो जिन्होंने देवताओं के कार्य में हाथ बँटाया है। जिन्होंने अपने सुखों को तिलांजलि देकर देवताओं के पक्ष में दैत्यों से संग्राम किया है। तुम धीरज धारण करो, राम में भी अपने पूर्वजों का वही रक्त है।

बन्धु, बिदा ... अङ्कित करूँ। (पृ० १३१-१३२)

शब्दार्थ—कीर्ण=फैला हुआ। भगीरथ रीति=अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा खोजते हुए राजा सगर के साठ सहस्त्र पुत्र कपिल मुनि के शाप से भस्म हो गए। केवल मात्र गंगा जल के स्पर्श से ही उनका उद्धार हो सकता था। गंगा तब स्वर्ग में थी। उसे पृथ्वी पर लाने के लिए महाराजा सगर के वंशजों अंशुमान और दिलीप ने प्रयत्न किया परन्तु वे सफल नहीं हो सके। अन्त में भगीरथ अपनी तपस्या से गंगा को पृथ्वी पर लाए और इस प्रकार उन्होंने अपने पूर्वजों का उद्धार किया। शुल्क=यहाँ वरदान से तात्पर्य है। व्रतोद्यापन =व्रत की समाप्ति पर किए जाने वाला कार्य।

भावार्थ—हे प्रजाजनो जिस प्रकार तुमने अपने राजाओं को देवताओं की कार्य सिद्धि के लिए प्रस्थान करने के अवसर पर उन्हें सहर्ष बिदा किया था उसी भाव से आज हमें बिदा दो ताकि बन के काँटे भी हमारे लिये कुसुम के समान बन जावें। बन में जाकर पापों का संहार और धर्म का विस्तार करूं। मानव समाज की विघ्न भय बाधाओं को दूर करता हुआ उनमें श्रेष्ठ भावों का प्रचार करूं। अथवा मुझे भी आर्य भगीरथ की भाँति अपना कर्त्तव्य पूरा करने दो। जिस प्रकार उन्होंने अपनी तपस्या द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाकर पूर्वजों का उद्धार किया था, उसी प्रकार मुझे भी बन जाकर पिता को वरदान

रूपी ऋण से मुक्त करने दो। अनेक विघ्न बाधाओं के बीच भी मैं अपने व्रत को पूरा कर सकू और इस प्रकार गगा के समान ही किसी नई निधि की स्थापना इस पृथ्वी पर कर सकू ।

हे प्रजाजनो उठो, धर्म के मार्ग में बाधक मत बनो। तुम स्वय भी कल्याण कारी मार्ग में प्रवृत्त हो। मुझे भी उत्साह प्रदान करो कि मैं धर्म मार्ग पर बढ़ता हुआ बन में विचरण करू और इस प्रकार कर्त्तव्य पथ को पार करता हुआ पग-पग पर आदर्श स्वरूप अपने चरण चिन्हों को अकित कर सकू ।

क्षिप्त खिलौने धावित हुए। (पृ० १३१)

शब्दार्थ—क्षिप्त=इधर उधर फेंके हुए। अचल = ठहरे हुए से। भावित= प्रतीत होना। युग पार्श्वों=दोनो ओर। धावित = दौड़ते हुए।

भावार्थ—जिस प्रकार हठीले बालक द्वारा इधर उधर बिखेरे गए खिलौने को माँ सँभाल सभाल कर रख देती है, उसी प्रकार प्रभु रामचन्द्रजी की वाणी सुनकर मार्ग में इधर उधर लेटे हुए अयोध्या वासी मत्र मुग्ध से होकर अलग उठ कर खड़े हो गए। परन्तु जब उन्होंने सिर उठाकर राम, लक्ष्मण, सीता को देखने का प्रयत्न किया तब वे भला उन्हें कहाँ पा सकते थे ? मार्ग को जन-रहित पाकर वायु के झोके के समान रथ उड़ चला। कुछ दूर जाकर तो वह शून्य पथ भी एक ओर मुड़ गया। (डा० नगेन्द्र के शब्दों में यह अव-तरण अतिशयोक्ति गर्भ उत्प्रेक्षा का सुन्दरतम उदाहरण है। राम के घोड़े इतने तेज जा रहे थे कि धूल आदि तो पीछे रह गई, स्वय शून्य (अनन्त) पथ साँथ न चल सका। सीधी सड़क पर भी, कुछ देर बाद ही मोटी दृष्टि ओझल हो जाती है। ऐसे प्रसग में यह कल्पना कि सड़क भी उनके साथ न चल कर पीछे मुड़ आयी, कितनी सटीक समयोचित और स्वाभाविक है)।

रथ के पहिए इतनी शीघ्रता से चले कि ठहरे हुए से प्रतीत होते थे जब कि दोनों ओर के अचल दृश्य भागते हुए से जान पड़ते थे।

सीमा पूरी हुई और भी पायेंगे। (पृ० १३२–१३३)

शब्दार्थ—पुर=नगर। प्रांतर=दो प्रदेशों के बीच का खाली स्थान। हय= घोड़े। आद्रभाव=सजल भाव। प्रणति=प्रणाम। सौध=महलों। शीर्ष=मस्तक।

भावार्थ—साकेत नगरी उसके प्राकार, उद्यान, सरिता, तालाब और

खेतों की सीमा जहाँ समाप्त हुई, वहीं सधे हुए घोड़े रुक गए और वे सीमा भूमि की रज को चूमकर हिनहिनाने लगे। प्रभु भी उतर कर नगर की ओर घूम पड़े। जन्म भूमि के प्रति श्रद्धा का भाव हृदय के भीतर न रुक सका। सिर झुकाकर सजल भाव से बोले—हे जन्म भूमि, हमारा प्रणाम स्वीकार कर और हमे विदा दे। हमको अपने समान गौरव, गर्व और प्रतिष्ठा प्रदान कर। तेरे कीर्त्ति स्तम्भों, महलों और मंदिरों की भाँति ही हमारे मस्तक उन्नत रहें। हम अभी जा रहे हैं, किन्तु अवधि पूरी होने पर हम वापिस आएंगे, तब हम तुझे और भी अधिक आकर्षक पायेंगे।

उड़े पक्षि कुल   तू है मही। (पृ० १३३)

शब्दार्थ—चंग=पतंग। पाश = डोरे। नय = नीति। अनल = अग्नि। अनासक्ति=निर्लिप्तता।

भावार्थ—पक्षीगण आकाश में दूर-दूर तक उड़ते हैं, परन्तु वे डोरे में बँधी पतंग की भाँति ही अपने घोंसलों से सम्बन्ध रखते हैं, उसी प्रकार हे जन्मभूमि हम चाहे तुझसे कितनी दूर चले जाये परन्तु फिर भी तुझसे अभिन्न ही रहेंगे। दया, प्रेम, नीति, विनय, शील आदि शुभ भावनाओं के रूप में तेरे ही निर्मल तत्व हममे व्याप्त हैं। उन सबका उपयोग हमारे ही हाथों में है। हे जन्म भूमि सूक्ष्म रूप में तू सदैव और सर्वत्र हमारे साथ है। हमारे श्वासों में तेरा ही स्वच्छ समीर है, जल, मानस में व्याप्त है, उच्छ्वासों मे अग्नि है, निर्लिप्ततता में नभ की स्थिति है, और हमारी स्थिरता में तो हे जन्मभूमि स्वयं तेरा ही वास है। इस प्रकार आकाश, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी इन पंच तत्वों से बना हमारा शरीर तेरा ही है।

गिर गिर   पाते रहे। (पृ० १३४)

शब्दार्थ—उत्संग=गोद। अजिर=आँगन। सौरी=सूर्य वंशियो। प्राची= पूर्व दिशा। पुराधिष्ठात्रि=पुर देवी। धात्रि=धारण करने वाली। जाये = उत्पन्न हुए।

भावार्थ—हम तेरी ही गोदी के आँगन में बार बार गिर गिर कर उठते हुए खेलते, कूदते और हसते हुए, इस कर्त्तव्य मार्ग पर सहज रीति मे चलने में समर्थ हुए हैं। लोभ और मोह के प्रलोभन भी हमें अपने कर्त्तव्य मार्ग

से च्युत न कर सकें।

हे जन्म भूमि तू हम सूर्यवंशियों के लिए पूर्व दिशा की भाँति है। तू ही पुरदेवी है तथा मनुष्यता और मानव धर्म को धारण करने वाली है। तेरे पुत्रों को उनके महान कार्यों के कारण सदैव स्मरण किया जाता है। वे सदैव ही नित नवीन पुण्य कार्य करते हुए गौरवान्वित बने हैं।

तू भावों की जिष्णु हैं। (पृ० १३४)

शब्दार्थ—चारित्र्यों = आदर्श चरित्रों। ओक=घर, निवास स्थान। नाभि कज=नाभि कमल। दुग्ध धाम=विष्णु का निवास स्थान क्षीर सागर। जिष्णु= विजयी।

भावार्थ—हे मातृ भूमि तू सद्भावों की चित्रशाला है। तेरी भूमि आदर्श चरित्रों का कीर्त्ति गान, और उनके कार्यकलापों का रंगमंच है। आर्य जाति के श्रेष्ठ कार्यों की तू जैसे पाठावली है, जिसके प्रत्येक पृष्ठ पर धर्म के सना-तन रूप की छाप अंकित है।

हम जहाँ चाहे घूमें, चलें, फिरें, विचरें परन्तु हमारा प्रेम-पालना तो सदैव यहीं रहेगा। मैं इस मानव लोक में चाहे जितना बड़ा हो जाऊं परन्तु मातृभूमि की गोद में तो सदैव बालक ही रहूँगा। ब्रह्मा के निवास स्थान की भाँति हमारा नाभि कमल यहीं है। हमारे लिए हे मातृभूमि तू क्षीर सागर के समान है, और हम उसके विष्णु हैं। हम अनेक होकर भी एक हैं इसी-लिए विजयी हैं।

तेरा पानी की सर्वदा।" (पृ० १३५)

शब्दार्थ—अरि=शत्रु। आकंठ मग्न=गले तक डूब कर। हरा=आनंदित। हाव=स्वाभाविक चेष्टाएँ। निकुञ्जागार=निकुंजगृह, लता भवन। भंडार=कोष। स्वर्गोपरि=स्वर्ग से भी बढकर। अयोध्या=जिसमें युद्ध न किया जा सके।

भावार्थ—हे अयोध्या हमारे शस्त्रों ने तेरे ही पानी को धारण किया है जिसमें शत्रु गले तक डूब कर तर जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं। फिर भी शांतिपूर्ण सद्भावों को लिए हुए ही जीवन के सभी क्षेत्रों में तेरी स्वाभाविक चेष्टाएँ आनन्दपूर्ण हैं। तू मुझे निकुंजगृह में पड़े हुए हिंडोले के समान प्रिय है। भाव रूपी रत्नों का अपार भंडार लिए तू मेरे जीवन सागर के समान है।

मैं चाहे जहाँ खिलू, चाहे जिस कर्त्तव्य की वेदी पर अपने को समर्पित करू तेरा ही सुमन रहूँगा। मैं तेरा ही बादल बनकर रहूँगा, चाहे जहाँ जाकर अपने को बरसाऊ।

हे जन्मभूमि तू पवित्र रुचि की शिल्पकला के समान आदर्श, शरद कालीन मेघ समूह के समान स्वच्छ, कला के समान सुन्दर और कल्पनाओ के पुञ्ज के समान ललित है। स्वर्ग से भी सुन्दर हे साकेत तू राम का धाम है। तू सदा अपने अयोध्या (जिसमें युद्ध न हो सके) नाम की रक्षा कर। चाहे राज्य न मिले, मैं स्वयं ही अन्यत्र कहीं चला जाऊ, एक बार यहाँ लौट कर आऊ अथवा आ भी न सकू, परन्तु राम सदैव अपनी अयोध्या का ही बना रहेगा, और अयोध्या रामचन्द्र की ही रहेगी।

आया झोंका गतिमन्द से। (पृ० १३५–१३६)

शब्दार्थ—खगकुल = पक्षियों का समूह। रव = शोर। निरानन्द = आनन्द रहित।

भावार्थ—इतने में वायु का एक झोंका सामने से आया और राम ने उसके साथ ही अपने मस्तक पर एक फूल पाया जैसे राम को वह समर्पित किया गया हो। उस पुष्प की सरस सुगन्धि के रूप में राम को जैसे पृथ्वी का गुण मन को भागया। (इस प्रकार राम द्वारा की गई वन्दना के उत्तर में फूल के रूप में अपने गुण को निहित कर पृथ्वी ने आशीर्वाद प्रदान किया हो।)

उसी समय पक्षियो के समूह का व्याकुल, करुण स्वर चारो तरफ गूँजने लगा। क्षणभर के लिए राम, लक्ष्मण, सीता तीनों ही मूर्ति के समान अविचल बन गए। फिर एक दीर्घ निश्वास लेकर वे रथ पर आरूढ हुए। रथ मे बैठकर वे निस्पन्द भाव से बन की ओर चले। अश्व भी बिना किसी आनन्द का भाव लिए धीमी चाल से चले।

पहुँचे तमसा सचेताचेत थे। (पृ० १३६)

शब्दार्थ-तमसा=आज की टोस नदी। तमी=रात्रि। स्वजन=सम्बन्धियों। शयन-साधक=सोने में सहायक। सचेताचेत=सोते जागते।

भावार्थ—सध्या काल होने पर तीनो संयमी तमसा के तीर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने मार्ग की प्रथम रात्रि व्यतीत की। निद्रा में अपने सम्बन्धियों की

चिन्ता का भाव कुछ बाधक हुआ, परन्तु भरत अयोध्या में उनकी रक्षा के लिए हैं ही, भरत के प्रति ऐसा विश्वास शयन में सहायक हुआ। सौमित्र प्रहरी बनकर जागते रहे। उनकी पत्नी उर्मिला के समान निद्रा भी अयोध्या में रह गई। मत्री सुमत्र सहित वे प्रभु रामचन्द्रजी की चर्चा में मग्न थे। इसी सोती जागती अवस्था में रात्रि न जाने कब व्यतीत हो गई।

पर दिन पथ कल जलमयी। (पृ० १३६–१३७)

शब्दार्थ—गोरसधारा=दूध की धारा। धृति=धैर्य। भवताप=ससार की जलन। हिम=बर्फ। द्रवित=पिघली हुई।

भावार्थ—दूसरे दिन वे मार्ग में स्वराज्य की समृद्धि, प्रजावर्ग के धन-धान्य और धर्म की वृद्धि को देखते हुए दूध की धारा के समान गोमती नदी को पार कर धैर्य धारण करते हुए गगा के किनारे पहुचे। यह गगा स्वर्ग के कण्ठ में पड़ी हुई मोतियों की विशाल लड़ी थी जो कण्ठ से छूटकर पृथ्वी पर आ गिरी। पृथ्वी का ताप न सह सकने के कारण अचानक गल गई। इस प्रकार बर्फ के समान ठोस होकर भी द्रवित बन मधुर जल से परिपूर्ण हो गई।

'प्रभु आए हैं' निज हीनता। (पृ० १३७)

शब्दार्थ—गुहराज=गुह नामक निषादराज, जो जाति का केवट था। सपरिकर=सपरिवार। मृगयावास=शिकार के लिए जगल में वास।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्रजी पधारे हैं, यह नया समाचार जानकर सपरिवार गुहराज भेंट लेकर आ पहुँचे। अपने मित्र को देखकर राम ने उसका उचित आदर किया और उठकर तथा कुछ आगे बढकर प्रेमपूर्वक हृदय से लगाया। यह देखकर गुहराज बोला "रहने दीजिए, आपका इस प्रकार उठना उचित नहीं। श्रीमान, किसे यह आदर सम्मान प्रदान कर रहे हैं। मैं तो आपका सेवक मात्र हूँ। आप इधर कहाँ भूल पड़े? यहाँ अपना मृगयावास समझकर रहिए। आपके इस मगलप्रद हास्य पर बलिहार होकर मै अपने नील विपिन के सारे फूलों को न्यौछावर कर सकता हूँ। अचानक ऐसे आदरणीय अतिथि से मिलने का सौभाग्य कब और किसे प्राप्त होगा? इसे भला मैं अपना अहोभाग्य क्यों न कहूँ? आज यह आनन्द से परिपूर्ण आपकी इस

मैं अभाव   मे भर लिया। (पृ० १३८)

शब्दार्थ—अभाव=अपूर्णता। भाव=पूर्णता। मिष्ट=मीठी।

भावार्थ—मेरी अपूर्णता आज आपको पाकर पूर्ण बन गई। यद्यपि मै अपने गृह को आपके वास करने के योग्य नहीं समझता फिर भी आप मेरे घर की तुच्छताओं पर अपनी चरण-धूलि डालते हुए, उनकी उपेक्षा करते हुए आगे बढिए। मेरे घर को नहीं, मुझे देखकर अपनाइये। मेरे घर मे आपके योग्य अतिथि सत्कार न हो सके, परन्तु मेरे हृदय मे आपके प्रति अटल अनुराग है। मुझमें आपके आतिथ्य की सामर्थ्य न हो परन्तु भक्ति अवश्य है। शिकार के लिए फिर कभी आपके पवित्र चरण यहाँ पड़ सकते हैं परन्तु माँ जानकी क्या बारबार यहाँ आ सकती हैं। जानकी के रूप में तो आज हमारी कुलदेवी यहाँ पधारी हैं। (सीता को सम्बोधित करते हुए गुहराज ने कहा) "देवी, (भगवान् रामचन्द्रजी की बरात के) वे आनन्द पूर्ण क्षण मुझे नहीं भूले। मिथिलापुर के वे राजभोग मुझे अभी तक याद हैं। पेट भर जाने पर भी मन तृप्त नहीं होता था। परन्तु मैं तो आपको एक ही ग्रास मे तृप्त कर दूँगा। वैसे भी सदैव मीठा ही मीठा भोजन किसी को रुचिकर नहीं होता, इसलिये कभी रूखा सूखा भोजन करना उचित है। हे देवी, तुम सदैव सौभाग्यवती बनकर जीती रहो तथा पति और पिता दोनों ही कुलो का प्रेमामृत पान करती रहो।" इस प्रकार गुहराज ने स्वय हँसकर और उन तीनों को हँसाकर अपना मस्तक झुकाया। प्रभु ने शीघ्र ही उसे अपने अङ्क में भर लिया।

चौंका वह इस   लावण्य यह।" (पृ० १३९)

शब्दार्थ—शैवल=पानी में फैलने वाली एक घास। परिवृत्त=ढके हुए। सरोरुह=कमल। आभरणाभरण=वस्त्राभूषण।

भावार्थ—इस बार सेवार से ढके कमल की भाँति वल्कलधारी रामचन्द्र जी के श्यामल शरीर को देखकर गुहराज चौंक उठा। विस्मित स्वर में उसने कहा "हे! आपके शरीर पर ये वल्कल वस्त्र ? मेरी दृष्टि अब तक कहाँ थी ? जो यह आश्चर्य की बात अभी तक नहीं देख पाई। कहिए, ये वल्कल वस्त्र आज किस लिए पहने गए हैं ? आपके राजोचित वस्त्राभूषण आज कहाँ चले

गये ? क्या इस प्रकार मुनियों के वेश बनाकर हरिणों को भुलावे में डाल
जायगा ? परन्तु वे चचल हरिण यों सरलता के साथ आपके साथ न आ
सकेंगे। आप जिस वेश में भी रहें आपका रूप तो वास्तव में धन्य है। वस्त्र
भूषणों से रहित आपके इस मुक्त और नैसर्गिक सौन्दर्य की जय हो।

"वचनों से बहुजन गृही।" (पृ० १३६)

शब्दार्थ—क्षेम से = कुशलता पूर्वक। पुण्यास्पृही = पुण्य की इच्छा
करने वाले।

भावार्थ--हे मित्र हम तो तुम्हारे वचनों से ही तृप्त हो गए। अतः अ
हमारे लिए तुम किसी प्रकार का कष्ट मत करो। यदि आज हम कहीं अप
बन के व्रत को तोड़ सकते तो भाभी की भेंट अवश्य स्वीकार करते। तपस्वि
की विघ्न-बाधाओं को दूर करते हुए कुछ दिनों के लिए आनन्दपूर्वक ह
बनवास करेंगे। नगर की देखभाल का उत्तरदायित्व पुण्यशाली भरत प
होगा। इस प्रकार अनेक सदस्यों वाला गृही अनेक कार्य पूर्ण करता हुआ
कृतकृत्य हो सकता है।

"ऐसा है तो फल नाव से।" (पृ० १३६-१४०)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—गुहराज ने उत्तर में कहा "यदि यही बात है तो आपका य
सेवक भी आपके साथ चलेगा। सचमुच बन का यह वास बड़ा आनन्दपूर
होगा। बन में सृष्टि के ऐसे-ऐसे चमत्कार भरे पड़े हैं उन्हें देखकर नेत्रों
पलक खुले के खुले ही रह जाते हैं।"

राम ने गुहराज से कहा "हमारे भ्रमण और विश्राम की समस्त सुवि
धाओं का प्रबन्ध करके राम की सारी कृतज्ञता स्वय ही मत लो। हे मित्र
उसमें औरों को भी अपना भाग लेने दो। तुमतो बस अपनी नाव से ह
नदी पार कर दो।"

ध्रुव तारक था वह चले। (पृ० १४०)

शब्दार्थ—ध्रुवतारक = ध्रुवतारे की भांति अचल। प्रकृत वृत्त=वास्त
विक बात।

भावार्थ--वहाँ एकत्रित जन समाज को देखकर आकाश ध्रुवतारे क

भाँति अचल था। प्रभु ने गुहराज को अत्यन्त आदर सम्मान दिया। परन्तु जब गुहराज को राम के बनवास की दुख भरी वास्तविक बात ज्ञात हुई तो उसका मन फूल के समान मुरझा गया। राजभवनों में पलनेवाले तथा ये देव मूर्ति के समान वन्दनीय श्रीराम तथा जानकी आज वृक्षों के नीचे कुश शय्या पर पड़े हैं। हाय फूलते हुए भाग्य का यह कैसा फल निकला। यह सोचकर उस भावुक निषादराज के नेत्रों से अश्रु धारा बह उठी।

"घुरक रही है आपको वार मैं।" (पृ० १४०–१४१)

शब्दार्थ—तरग।घात=लहरो का आघात। असित=काले रग का। वितान=चदोवा। अचिंत्य गति=जिस गति को जाना न जा सके। शृङ्गवेर-पुर=गुहराज की राजधानी।

भावार्थ—दुख भरे स्वर में निषादराज ने कहा—साँय साँय करती हुई रात्रि जैसे घुड़क रही है। नदी की तरगो के पारस्परिक आघात भी किसी ध्यान में डूबे हुए हैं। फिर भी लक्ष्मण सोए नहीं। वे अपनी निद्रा के तुच्छ भाग को त्यागकर जागते हुए पहरा दे रहे हैं। हे भगवान न जाने यहाँ किसका अभिशाप है। सचमुच अनीति का मूल, शासन सत्ता ही है। राम लक्ष्मण जैसे लालो को खोकर कैकेयी ने क्या प्राप्त कर लिया? हे कैकेयी तुझे क्या करना चाहिए था परन्तु तू ने यह क्या किया? इस ससार पर सदैव एक काला चदोवा तना रहता है। दुख, शोक, भय और आपदाएँ उस वितान के खम्भे हैं। उस रहस्यमयी गति वाले आकाश के नीचे इस पृथ्वी पर हम जब तक निवास कर रहे हैं तब तक हम सभी छोटे बड़े लोग भाग्य के अधीन सर्वथा विवश हैं। जो प्रभु रामचन्द्रजी अपने साकेत को त्यागकर वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं उनके लिए भला शृङ्गवेरपुर का क्या महत्व हो सकता है। इसे क्या वे स्वीकार करेगे? परन्तु मै उनको इस समय कौन सा उपहार भेंट करूँ। अतः मै कल स्वय अपने को ही उनके चरणो पर न्यौछावर कर दूँगा।

बद्धमुष्टि भुक्ति से।" (पृ० १४१–१४२)

शब्दार्थ—बद्धमुष्टि=बधी हुई मुट्ठी। सौख्य=सुख। कीट पूर्ण=कीड़ो से भरे। भोक्ता=भोगने वाला। बन्ध-मुक्ति=सासारिक दुख सुखों से मुक्ति।

दुरत्यया=जिसे पार करना कठिन हो। साधो=अपने अधीन करना। भुक्ति=सासारिक सुख।

भावार्थ—वीर गुहराज व्याकुल सा होकर मुट्ठी बाँधकर रह गया। तब लक्ष्मण ने कहा—हे बन्धु तुम शात हो। तुम जिन श्री रामचन्द्रजी के लिए यह दुख और रोष प्रगट कर रहे हो, वे अपने लिए सुख और सतोष का अनुभव कर रहे हैं। तुम नीति पूर्वक शृङ्गवेरपुर का राज्य शासन करो। आर्य रामचन्द्रजी तुम्हारे हृदय के प्रेम भाव से अत्यन्त सतुष्ट हैं। (उन्हें राजा बनाने के लिए तुम्हारे राज्य की आवश्यकता नही।) उन्हे तो धर्म पालन का नवीन धन प्राप्त हुआ है जिसके समक्ष कौशल का राज्य भी तुच्छ है।

समय व्यतीत हो रहा है और काल निकट आ रहा है। यह ससार सच-मुच उलटी गति से चल रहा है। फूल कीड़ों से भरे हैं और पृथ्वी काँटों से पूर्ण हैं। विजयी वही है जो इन सबसे बचकर अपना जीवन व्यतीत कर सके। यदि हम निष्काम भाव से कर्म के लिए ही कर्म न कर सके तो कर्म की अपेक्षा उनके फल को प्राप्त करने की इच्छा हमें पराभूत कर लेगी। जो कर्म करने वाला अर्थात् कर्त्ता होता है, वही फल भोगने वाला होता है। यदि हम अपने स्थान पर ईश्वर को कर्त्ता मान लें तो हमारे सासारिक सुख दुखों का भार भी ईश्वर पर होगा। संसार के सुख दुखों से मुक्ति पाने का यही सरल उपाय है। मेरे लिए दुखी होना व्यर्थ है। मैं तो धन्य हूँ। मैं सोया हुआ नहीं हूँ सदैव सजग चैतन्य हूँ। इस अपने ससार सागर को मैं तो तभी पार कर चुका जब कि राम के चरणों में मैंने अपने को आत्म-समर्पण कर दिया। प्रभु और जीव के मध्य में माया का भेद है। यह बड़ी शक्तिशाली है और इससे पार पाना कठिन है। युक्ति और प्रयत्न पूर्वक उसे अपने अधीन करो। हे मित्र इस प्रकार भक्ति और सासारिक सुखों का समन्वय करो।"

निकल गई भाग्य का" (पृ० १४२-१४३)

शब्दार्थ—अभिसारिका=गुप्त रूप से प्रियतम से मिलने के लिए जाने वाली नायिका। द्विजो=पक्षियो, ब्राह्मणों। कल कारिका=मधुर ध्वनि, सूत्रों की श्लोक बद्ध व्याख्याएँ। स्वर्णघटित=सोने के समान। रजत=रुपहली। जाह्नवी=गगा। वट=बरगद। [illegible]।

भावार्थ—रात्रि रूपी नायिका चुपचाप अभिसार के लिए निकल गई। प्रातःकाल होने पर पक्षियों ने मधुर ध्वनि की और ब्राह्मणों ने ज्ञानदायिनी सूत्रों की मधुर व्याख्या की। प्रातःकाल की शोभा को देखकर सबने स्नान किया। गंगा की रुपहली छटा सूर्य के प्रकाश से स्वर्णमयी होगई। बरगद का दूध लेकर प्रभु ने जटा की रचना की। अब सुमन्त्र के लिए प्रभु के लौटने की कोई आशा शेष नहीं रही थी। उन्होंने कहा—आज क्षत्रियत्व ने स्वयं वैराग्य ले लिया। हमारा भाग्य सब प्रकार से नष्ट होगया?

प्रभु ने उन्हें .... युग कल्प है।" (पृ० १४३)

शब्दार्थ—प्रबोध=ज्ञान। मूल=जड। विन्दु-तुल्य=बूंद के समान।

भावार्थ—सुमंत के इतना कहने पर रामचन्द्रजी ने प्रेम पूर्वक उन्हें समझाया। जो कोई भी व्रत लिया जाय उसे रीति पूर्वक निभाना चाहिए। अतः हमारे लिए भी बनवासियों की भाँति रहना उचित है। जटाजूट धारण करने वाले मुनियों पर राजछत्र की छाया भले ही रहे, वे राजा की छत्रछाया में निर्विघ्न तपस्या आदि कर सके, परन्तु वृक्ष के नीचे रहने वाले हम जैसे बनवासियों के लिए तो मुकुट पहनना मुकुट का ही उपहास करना है। हे आर्य, बन गमन हमारे लिए दुर्भाग्य की बात नहीं है, यह तो तुम्हारे राम के लिए सौभाग्य का अवसर है। तुम पिताजी से मेरा कुशल क्षेम कहो। जैसे भी हो सब को धीरज और सन्तोष प्रदान करो। अयोध्या में तुम जड़ बन कर रहो, और हम वन में फूल के समान विकसित हो। अवधि के व्यतीत होते ही हम सब तुम से आकर मिलेंगे। फिर भी अविधि के दिन अधिक नहीं हैं, थोड़े ही हैं। समय के अनन्त प्रवाह में तो युग और काल भी बूँद के समान हैं फिर चौदह वर्षों का तो कहना ही क्या?

समयोचित सन्देश .... वाचक बना। (पृ० १४४)

शब्दार्थ—निरोध=दमन करना। अनमने=उदास। त्वरित=शीघ्र ही। लक्षणा, व्यंजना=शब्दशक्तियाँ।

भावार्थ—समय के अनुकूल प्रभु ने उन्हें संदेश दिया। सभी के लिए उन सब ने अपने हृदय के भाव प्रगट किए। विनत सचिव सुमन्त्र विरोध में कुछ कह न सके। राम द्वारा समझाए जाने तथा अपने हृदयस्थित भावों को

वातावरण एक साथ छा गया।

"मिलन-स्मृति-सी तीनों जनें (पृ० १४६)

शब्दार्थ—क्षुद्रिका=साधारण वस्तु। मुद्रिका=अँगूठी।

भावार्थ—सीताजी गुहराज को स्वर्ण मणिमयी अँगूठी प्रदान करती हुई बोलीं—यह साधारण सी वस्तु हमारे मिलन की स्मृति को सदा बनाए रखे। तब गुहराज ने हाथ जोड़कर कहा—आपका मेरे प्रति यह अनुग्रह कैसा! हे देवी इस सेवक पर ऐसी कृपा मत कीजिए। मेरा अपराध क्षमा हो। मेरा हिसाब चुकताकर मुझे इस प्रकार अलग मत करो। हे राम मुझे स्वर्ण नहीं चाहिए! उसके स्थान पर अपने चरणों की धूल प्रदान करिए जिससे जड़ शिला भी चैतन्य होकर सजीव अहिल्या नारी बन गई। फिर भला उस धूल को छोड़कर यह पाषाण के समान स्वर्ण किसे रुचिकर हो सकता है।

गुहराज के इन शब्दों को सुनकर राम ने उसे हृदय से लगा लिया। बड़ी कठिनाई से राम ने उसे विदा किया। मार्ग में सबके लिये हर्ष, प्रेम और विस्मय का कारण बनते हुए तीनों जने तीर्थ राज प्रयाग की ओर चले।

कहीं खड़े थे लीक ज्यों। (पृ० १४६-१४७)

शब्दार्थ—शशादिक=खरगोश आदि। वाड़ियाँ=निवास स्थान।

भावार्थ—मार्ग में कहीं खेत खड़े थे, कहीं प्रातर थे। छोटे बड़े गाँव शून्य समुद्र में द्वीप के समान प्रतीत होते थे। प्रहरी की भाँति मार्ग के वृक्ष कहीं झूम रहे थे। कहीं पक्षी और हरिण चरते हुए घूम रहे थे। कहीं पर छोटी मोटी झाड़ियाँ खड़ी हुई थीं, वे मानो खरगोश आदि पशुओं के लिए प्रकृति द्वारा बनाए गए निवास स्थान थे। मार्ग में से पगडंडियाँ इस प्रकार निकल पड़ी थीं जैसे शास्त्र सम्मत मार्ग को छोड़ कर संसार रूढियों की लीक को अपना लेता है।

टीले दीखे इन्दु थे। (पृ० १४७)

शब्दार्थ—भरके=जंगलों में दूर तक फैले हुए गड्ढे। पथिक चत्वर = यात्रियों के ठहरने के स्थान। सत्वर=शीघ्र। रज पूर्ण=धूल से भरे। पग = चरण कमल। इन्दु = चन्द्रमा।

भावार्थ—कहीं उन्हें टीले दृष्टि गोचर हुए और कहीं भरके दिखलाई

दिए। बावड़ी तालाब और कुओं के दृश्य देखने को मिले। मार्ग के दोनों ओर यात्रियों के ठहरने के लिए विश्राम स्थल मिले। शीघ्र ही इन कौतूहल भरे मार्ग के दृश्यों से वह आनन्दित हो उठे। उनके चरणों पर धूल के कण, और मुख पर पसीने की बूंदें थीं जो पराग से युक्त कमल और अमृत बिंदुओं से भरे चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।

देख घटा-सी .... धीरज धरो।" (पृ० १४७-१४८)

शब्दार्थ—तप्त हेम=गर्म सोना। द्रवित=पिघलना।

भावार्थ—मार्ग में घटा के समान एक घनी छाया देखकर कुछ काल के लिए रामचन्द्रजी वहाँ रुक गए। यह देखकर सीताजी ने कहा "क्या मैं ही थकी हूँ, तुम दोनों नहीं थके? इससे आगे सीताजी और कुछ न कह सकीं। वे हँसते-हसते सहसा रो उठीं मानो तप्त स्वर्ण की प्रतिमा द्रवित हो गयी है। उन्होंने कहा "मुझे अपने लिए कोई चिन्ता नहीं है, परन्तु मेरे कारण तुम्हें कोई असुविधा न हो, हृदय में बस यही संकोच है।" रामचन्द्रजी ने प्रत्युत्तर में कहा "हे प्रिये हमारे लिए तुम तनिक भी चिंतित मत बनो। अभी तुम्हें वन मे चलने का नया अभ्यास है इसलिए तनिक धैर्य धारण करो।

जुड आई थीं .... हँस रह गईं। (पृ० १४८)

शब्दार्थ—साधक=सहायक। उभय=दोनो।

भावार्थ—राम, लक्ष्मण तथा सीता को वहाँ आया देखकर गाँव की कुछ नारियाँ वहाँ एकत्रित हुईं। वे विश्राम में सहायक ही सिद्ध हुई क्योंकि उनके कारण उन्हें वहाँ कुछ देर और रुकना पड़ा। सीता सभी से बड़े प्रेम-पूर्वक मिलीं। वे लताओं में कुसुमकली के समान उन नारियों के बीच शोभायमान हो रही थीं। ग्राम्य की नारियों ने सीता जी से पूछा "हे शुभे! ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे कौन हैं?" "गौरवर्ण वाले मेरे देवर हैं तथा श्याम उनके बड़े भाई हैं।' उत्तर में यह बात सीताजी ने बडे सरल ढङ्ग से कही फिर भी एक तरल हँसी उनके मुख-मण्डल पर छा ही गई।

यों स्वच्छन्द .... की सी घटा।" (पृ० १४८)

शब्दार्थ—विराम=विश्राम। भूरिभाव=अनेक भाव। पर दिन=दूसरे दिन। द्विगुण=दुगना।

भावार्थ—इस प्रकार स्वच्छन्द भाव से विश्राम करते हुए तथा मार्ग के जन-समाज के हृदय में अनेक भाव भरते हुए दूसरे दिवस तीनी ही तीर्थराज प्रयाग में आ पहुँचे। उनके आने पर भरद्वाज मुनि के आश्रम में द्विगुणित पर्व सा मनाया जाने लगा। स्वय त्रिवेणी उन तीनों को पाकर धन्य हो उठीं। अमृत में लीन होते हुए जैसे सौमित्र कह उठे 'हे भाभी, तीर्थराज की यह शोभा तो देखिए। ऐसा प्रतीत होता है मानो शरद् कालीन घटा और वर्षा का मिलन हो गया है। (गगा का जल शरद् के समान स्वच्छ और यमुना का जल वर्षा की घटा के समान है।)"

हँस कर बोली यह पढ़ा !" (पृ० १४६)

शब्दार्थ—रामानुज=लक्ष्मण।

भावार्थ—सीता ने भी प्रेमपूर्वक हँसकर कहा "गगा और यमुना की भाँति तुम भी तो गौर, श्याम वर्ण के एक प्राण दो शरीर हो।" इस पर राम के अनुज लक्ष्मण ने कहा "क्यों नहीं भाभी, तुम भी तो यहाँ सरस्वती के समान प्रगट हो रही हो।" सीता जी बोलीं "हे देवर, मेरी सरस्वती अब कहाँ है, वह तो सगम की शोभा देखकर उसमें ही लीन हो गई।" (त्रिवेणी के सगम में सरस्वती अप्रगट ही रहती है।) गगा और यमुना के रूप में धूपछाँह के समान उसका यह बड़ा वस्त्र ही यहा मन्द पवन से लहरा रहा है।

प्रभु बोले गृह सम यहीं।" (पृ० १४६–१५०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सीता और लक्ष्मण का यह वार्तालाप सुनकर प्रभु रामचन्द्रजी बोले "तुम्हारी यह बातें गीत काव्य के भाव चित्रों की भाति मर्मस्पर्शी है। आखिर तुम माई के लाल और ये जनक की लली हैं। वास्तव में हृदय के भावो की कुशल अभिव्यक्ति ही कला है। फिर यहा स्वय अनुभूतिही निश्छल बनगई है। तुम दोनों ही कलाकार जीते रहो। मेरे लिए तुम दोनों में से किसी एक की भी प्रशसा करना कठिन है। सुनो, इस ससार में प्रेम भाव ही सबसे बड़ा तीर्थ है। इसी मिलन भाव के रूप में तो सारी पृथ्वी एक बड़े परिवार के रूप में प्रतीत होती है। जब दो व्यक्ति मिलते हैं तो तीसरे का मिलन स्वतः हो जाता है। यहा गगा और यमुना ने मिलकर त्रिवेणी का रूप ले लिया है

वास्तव में इस मिलन भाव के लिए त्याग और अनुराग की आवश्यकता है।" प्रभु रामचन्द्रजी के इन वचनो के उत्तर मे भरद्वाज ने कहा "यही त्याग और अनुराग तुममे भरा हुआ है। अतः तुम जहा जाओगे वहीं तीर्थस्थान होगा। मेरी इच्छा है कि तुम मेरे ही आश्रम को अपना घर समझकर रहो।

प्रभु बोले देती नहीं।" (पृ० १५०)

शब्दार्थ—जनपद=नगर। उपालम्भ=उलाहना, शिकायत।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्रजी ने कहा "हे देव आपके इस अनुग्रह के लिए यह सेवक आभारी है। परतु बनवास की अवधिमे नगर के समीप रहना उचित नहीं है। हमें ऐसा बन बतलाइए जहाँ जनक सुता का मन प्रफुल्लित पुष्प के समान खिला रह सके। कुल स्त्रियाँ कभी अपने सुख का ख्याल नहीं रखतीं। यदि पुरुष भी उनकी सुधि न ले तो भी वे उन्हें किसी प्रकार का उलाहना नहीं देती।

"कर देती हैं आरोग्य है।" (पृ० १५०)

शब्दार्थ—स्वात्म-सताप=अपना दुख। विदेहनी=अपने सुख दुख से सर्वथा उदासीन। कुलगेहिनी=कुल नारी।

भावार्थ—भरद्वाज मुनि बोले—कुलीन स्थियाँ तो अपने आपको पति के चरणों में समर्पित कर देती हैं। फिर भला वे अपने दुख का अनुभव कैसे कर सकती हैं? वैदेही सीता की नारी जाति तो सदैव से ही अपने सुख दुख के प्रति उदासीन है। इसीलिए बन मे भी ये कुल नारियाँ अपने प्रिय के साथ पूर्ण सुख का अनुभव करती हैं।

हे तात तुम्हारे निवास के लिए चित्रकूट सर्वथा योग्य है। वहा सभी प्रकार से सुख, शान्ति और आरोग्य है।

"जो आज्ञा" युग वली। (पृ० १५० -१५१)

शब्दार्थ—सूर्य की सुता=यमुना नदी। विभु-वपु=प्रभु के शरीर जैसा। समशील=शील के समान। धारणाधार=दृढ निश्चय को धारण करने वाले। धुरन्धर=बुद्धिमान। ध्रुवधृती=धैर्य में ध्रुव के समान दृढ। दारु-लताएँ = लकड़ी और लताए। पुरैन=कमल का पत्ता। पद्मिनी=कमलिनी।

भावार्थ—'जो आज्ञा' कह कर राम बड़े हर्ष और प्रेम सहित चित्रकूट की ओर चले। मुनिवर भरद्वाज ने स्वय उन्हें मार्ग बतलाया। मार्ग में उन्हें ध्वनि करती हुई श्रेष्ठ यमुना नदी मिली। यमुना का जल आकाश के समान नीला और निर्मल था। वह प्रभु रामचन्द्र के श्याम शरीर के समान ही श्यामवर्ण और उनके शील के समान था। दोनों ही राजपुत्र अत्यन्त कला कुशल और दक्ष थे। वे धीर, दृढ निश्चय के धारक, बुद्धिमान और धैर्य में ध्रुव के समान दृढ थे। लक्ष्मण इतने में वृक्ष और लताएँ तोड़कर ले आए। उन्हीं को जोड़ कर नौका बनाई गई। सचमुच स्वावलम्बन के भाव पर सभी कुछ न्यौछावर है। अपनी इस नाव पर सीता प्रभु के हाथ का सहारा लेकर चढ़ीं। वे इस प्रकार शोभायमान हुईं जैसे कमल के पत्तों पर बैठकर कमलिनी तर जाती है। दो बलवान हसों के समान राम और लक्ष्मण सीता को सहारा देते हुए आगे चले।

करके यमुना ... ही रहीं।" (पृ० १५१)

शब्दार्थ—विलम=विश्राम करना। व्रणी=आहत, घायल।

भावार्थ—यमुना में स्नान करके तथा कुछ देर वट वृक्ष के नीचे विश्राम करके, लक्ष्मण, सीता और राम घने वन की ओर चले। वह अनेक प्रकार की विचित्रताओं से भरा हुआ था। उसकी अद्‌भुत शोभा थी। वहाँ असंख्य प्रकार की आकृतियाँ और दृश्य थे। वे सभी जैसे प्रकृति के विविध पाठ थे।

इसी अवसर पर सीता ने हँसते हुए कहा—जगल में बड़े भाई पीछे चलने वाले बन गए हैं और छोटे भाई आगे चलने वाले। देखो कोई आहत न हो जाय। उत्तर में लक्ष्मण ने कहा—भाभी तुम्हारी स्थिति में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। तुम पूर्ववत् बीच में ही रही हैं। आगे पीछे कहीं नहीं गईं।

मुसकाए प्रभु ... पक्षी नहीं। (पृ० १५१–५२)

शब्दार्थ—नागर भाव=नगर में रहने जैसा भाव। कक्ष=बगल से। वैमानिक=विमान से यात्रा करने वाला।

भावार्थ—सीता और लक्ष्मण के इस हास परिहास पूर्ण वार्त्तालाप को सुन रामचन्द्र जी मुस्कराने लगे। तब वहाँ आनन्द की मधुर धारा प्रवाहित

हो उठी। रामचन्द्र जी ने कहा—हे प्रिये, बन मे भी हम नागर भाव लिए हुए हैं। अवधि के दिवस इसी प्रकार यदि हँसते-खेलते व्यतीत हो जाय तो हम उसके कष्टो को झेल कर भी अपने को कृतकृत्य ही समझेंगे।

इसी अवसर पर समीप से किसी पक्षी के उडने पर सीता जी ने चौंकते हुए कहा—ओह मै तो चौंक ही पड़ी। यह बगल से फड़ फड़ करता हुआ कौन अपने दृढ़ पखों की सहायता से उड़ा। देखो क्षणभर मे ही वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया। यह विमान में यात्रा करने वाला भले ही हो, परन्तु मनुष्य या पक्षी नहीं हो सकता।

ऊपर विस्तृत .... ठूंठ ही!" (पृ० १५२)

शब्दार्थ—वनवीथि = बन का मार्ग। पक्षों=पखों। कीश=बदर।

भावार्थ—ऊपर विशाल आकाश था, नीचे विशाल धरती। फिर भी ये तीतर बड़े जोर से चिल्ला कर एक दूसरे पर अपने नख और चोंच का का प्रहार करते हुए लड़ रहे हैं। न मालूम किस तुच्छ बात पर वे अड़े हुए हैं। बन में बनी हुई घनी, सरल और पतली पगडडी बनस्थली की माँग के समान प्रतीत होती है। इस प्रकार वन लक्ष्मी सदैव सौभाग्यवती बन कर फूले फले। शिशु के समान यहाँ शान्ति छाई रहे तथा पवन शाति रूप शिशु पर पखा झलता रहे।

यह मोर आगे आगे ही भागा जा रहा है। यह चित्त को मुग्ध करने वाला पक्षी अपने पखों से ही मार्ग को साफ कर रहा है। बन्दरो की मण्डली वृक्ष की डालों पर मचक रही है जिनके भार से वे लचक लचक जाती हैं। हे नाथ ये वृक्षों के ठूंठ तो फूल, पत्र आदि अपना सर्वस्व त्याग कर और ससार को असत्य समझ कर तपस्वी के समान खडे हैं।

"इन पर भी तो .... सुख्य सर्वत्र है।" (पृ० १५२)

शब्दार्थ—दल पुंज=कलियो के समूह। तरुवर पद-मूल=वृक्षो की जड़। पक्ष=पख। ग्रीवा भग=गर्दन मोडकर। अत्र तत्र=यहाँ वहाँ। सुख सत्र = सुख का कारण।

भावार्थ—सीता जी की बात को सुनकर रामचन्द्र जी बोले—प्रिये इन ठूंठों पर भी तो लताएँ चढ़ी हुई हैं। वे इन्हे हरा भरा कर आगे बढ़ रही

है। (इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि लताएँ तो वृक्षों को पराजित कर आगे बढ गई हैं। यहाँ गुप्त जी ने रामचन्द्र जी के मुँह से पुरुष के लिए नारी के महत्व पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार पुरुष का शुष्क जीवन नारी के ससर्ग से मधुर और सरस बन जाता है।)

वृक्षों के नीचे फूलों की राशि देखकर सीता जी कहने लगीं—कहीं वृक्षों तले फूलों की शय्या बनी हुई है। इन फूलो पर पड़ती हुई वृक्ष की छाया ऐसी प्रतीत होती है जैसी वह इस शय्या पर ऊ घ रही हो। प्रकाश की किरणें कोमल कलियों के समूह में प्रवेश कर कु ज में सोई छाया को धीरे से हिला-कर जगा रही हैं। (प्रभात कालीन किरणें निकलने पर जागरण उचित ही है। प्रकाश के आने पर छाया धीरे धीरे मिटती जाती है। अतः यहाँ किरणों द्वारा छाया को जगाने का भाव अत्यन्त उपयुक्त है।) किरणों द्वारा जगाए जाने पर भी छाया उठना नहीं चाहती। कुछ करवट सी पलट कर वहीं लेट जाती है। छाया को सम्बोधित कर सीता जी कहती हैं कि हे सखी तुम इस वृक्ष की जड़ को कभी मत छोड़ना। यहाँ फूल और काँटे सब एक समान हैं। उनमें यहाँ कोई भेद नहीं है।

एक पक्षी की ओर देखकर सीता जी ने राम से कहा—देखो यह पक्षी अपने पङ्ख फैलाकर खेल करता हुआ, अपना सारा बोझ छाती पर डाल कर, शरीर को ढीला किए और न मालूम किस रीति से गर्दन मोड़ कर बड़े उमग के साथ हमें देख रहा है। जिस पौधे को जहाँ स्थान मिल जाता है वह वहीं उग जाता है। जिस पक्षी को जहाँ दाना मिल जाता है वह उसे वहीं चुग लेता है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर उद्योग ही समस्त सुखों का कारण है, परन्तु सुअवसर का सयोग ही सर्वत्र मुख्य है। (इस प्रकार भाग्य ही प्रबल है।)

"माना आर्ये न घर रहना पड़ा। (पृ० १५३–१५४)

शब्दार्थ—पूर्व कर्म=पहले किए गए कार्य।

भावार्थ—लक्ष्मण ने सीता से कहा—आर्ये यह तो ठीक है कि सभी कुछ भाग्य का ही फल है, परन्तु यह भाग्य भी तो पहले किए गए कर्मों का ही परिणाम है।

राम ने बात को बढ़ाते हुए कहा—हे प्रिये यही है। भाग्य और कर्म में नाम मात्र का ही भेद है। यहाँ भी लक्ष्मण का उद्योग और राम का भाग्य है। सीता जी ने कहा—हे स्वामी भाग्य तो मेरा बड़ा है जो बन के ये सब सुख छोड़कर मुझे अयोध्या मे न रहना पड़ा।

वह किंशुक सुन्दर लेखनी !" (पृ० १५४)

शब्दार्थ—किंशुक=पलाश का फूल। पवन पान=हवा का पीना।

भावार्थ—पलाश का फूल पूर्ण विकास को प्राप्त हो गया है। वह जो हृदय खोल कर खिल पड़ा है। और यह पलाश भी फूल बन गया। देखो यह कितनी बड़ी केंचुली यहाँ पड़ी हुई है। पवन का पान कर फूल कर यह कहीं जीवित न हो उठे। लक्ष्मण ने कहा—आर्ये इसके पुनः जीवित होने पर भी हमें भला क्या भय है ? जो दूसरो को मारने का प्रयत्न करेगा उसे स्वय पहिले मरने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। सीता जी से पूछते हुए लक्ष्मण बोले—अच्छा बतलाओ ये क्या वस्तुएँ पड़ी हैं ? सीता जी ने उत्तर में कहा—हे देवर सभी व्यक्ति सब वस्तुओं को नहीं जानते। हमे तो यहाँ विविध प्रकार की अनेक वस्तुएँ देखनी हैं। परन्तु तुम्हारे द्वारा पूछी गई इस वस्तु से क्या सुन्दर लेखनी नहीं बनाई जा सकती ?

"ठीक, यहाँ पर जाता नहीं !" (पृ० १५४-१५५)

शब्दार्थ—शल्य=एक जन्तु विशेष जिसके शरीर पर काटे होते हैं। शल = काटे। मुस्तक गंधा = नगर मोथे की गंध से युक्त। मृत्तिका=मिट्टी। आर्द्र पद चिन्ह=गीले पद चिन्ह। शुक शिशु=तोतो के बालक। भीत सा= डर कर।

भावार्थ—लक्ष्मण जी ने कहा—आपका कहना ठीक है। यहाँ शल्य जो अपने काटे छोडकर चला गया है उनसे लेखनी का कार्य लिया जा सकता है। तुम नाम तो न बता सकी परन्तु तुमने उसका प्रयोग अवश्य बता दिया। उधर नागरमोथे की गंध से युक्त मिट्टी खुदी हुई है। इस गीली मिट्टी पर होकर जिस ओर से सूअर गए हैं, वहाँ उनके पैरो के चिन्ह बन गए हैं। उधर देखो तोते का बच्चा घोसले से निकल कर बाहर आता है और फिर बन की भीड़ से डर कर घोंसले में ही घुस जाता है। इस शुष्क वृक्ष का प्राण

यह तोता व्याकुल हो रहा है। उसे तनिक भी शाति नहीं है। बिना उपयुक्त अवसर बाहर जाकर भी वह बाहर नहीं जाने पाता।

'पास पास ये ये बो गया? (पृ० १५५)

शब्दार्थ—उभय = दोनों। विषम=भयङ्कर। बाटे=बाट में, हिस्से में।

भावार्थ—सीता जी ने कहा—अहा देखो ये दोनों वृक्ष पास पास ही खड़े हुए हैं, परन्तु इनमें से एक फल फूल रहा है दूसरा मुरझा रहा है। इसके उत्तर में रामचन्द्र जी ने कहा—हे प्रिये इस मनुज ससार की भी यही अवस्था है। कहीं पर हर्ष है तो कहीं पर शोक। इस जगल में भयङ्कर झाड़ और झाड़ियाँ खड़ी हुई हैं। उसके हिस्से में फूलों के साथ काटे भी आ पड़े हैं।

सीता बोली "यह पृथ्वी माता फूलों के साथ कॉटो का भार इसीलिए सहती है जिससे पशुता कॉटों से डरती रहे। कॉटों के कारण फूल सहज ही न तोड़े जा सकें। यह बन तो सचमुच मेरे लिए आश्चर्य का विषय हो गया है। न मालूम इन आश्चर्य जनक पदार्थों के बीज इतनी अधिक मात्रा में यहाँ कौन बो गया है।

अरे, भयङ्कर नाद अगण्य अरण्य में!" (पृ० १५५–१५६)

शब्दार्थ—शब्दवेध=शब्द को लक्ष्य कर छोड़ा जाने वाला तीर। क्षुद्र= साधारण-सी मधुमक्खी। मधुचक्र=शहद का छत्ता। गजदन्त=हाथी के दाँत। पण्य=बाजार। अरण्य=जगल।

भावार्थ—"अरे यह भयङ्कर ध्वनि कौन कर रहा है?" उत्तर में लक्ष्मण ने कहा "भाभी इस ध्वनि के साथ सिंह हमारा स्वागत कर रहा है। यदि शब्द भेदी बाण चलाना देखना चाहो तो बताओ, मै अभी बाण चलाकर इस सिंह को काल का ग्रास बनाऊँ।" सीताजी ने कहा "अभी रहने दो, फिर कभी देखूँगी।" बन मे वृक्षों से लटकते हुए शहद के छत्तों को देखकर सीताजी पुलकित भाव से बोल उठीं "देखो बन में रस के कितने घड़े भरे हुए पड़े हैं। वे बड़े-बड़े मटकों के समान लटके हुए हैं। सचमुच शहद की मक्खी जैसे साधारण जीव का प्रयत्न भी क्या नहीं कर सकता?

नगर के उपवनों में जिन वृक्षों को माली सींच सींचकर हार जाते हैं वे

आहा ! देखो बन मे ये हाथी के दॉत और मोती पड़े हुए हैं। ये भी मानो वृक्षों से पके फलो के समान झड़ पड़े हैं। जिन रत्नो पर प्राण भी नगर की हट्टो में बिक जाते हैं वे ही रत्न ककड़ो की भॉति तुच्छ बने हुए जगल में बिखरे पड़े हैं।

चल यों सब सहज सम्भाव्य है।" (पृ० १५६)

शब्दार्थ—कविकुल-देव=कविकुल के देव अर्थात् आदि कवि। दाशरथि=दशरथ का। सपरिकर=सपरिवार। भृत्य=सेवक। वृत्त=चरित।

भावार्थ—इस प्रकार चलते हुए तीनो जनों ने महर्षि बाल्मीकिजी से भेंट की। जिनका वे ध्यान कर रहे थे, उन्हें साक्षात अपने सम्मुख प्रगट देखकर बाल्मीकिजी के हर्ष की सीमा नहीं रही। वे कविकुल के देव आदि कवि इस पृथ्वी पर धन्य थे। इधर रामचन्द्र भी एकमात्र अनुपम लोकनायक थे। राम चन्द्रजी ने महर्षि को प्रणाम करते हुए कहा "हे कवि दशरथ का यह पुत्र राम आपके दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया। यह सेवक सपरिवार आपको प्रणाम करता है।"

महर्षि ने कहा—हे राम तुम्हारा चरित तो स्वय ही काव्य है। तुम्हारे चरित गायन से तो कोई भी बड़ी सरलता से कवि बन सकता है।

आए फिर सब हर्ष-विस्मय बड़ा।" (पृ० १५६–१५७)

शब्दार्थ—मोदित मना=प्रसन्न मन से। वन श्री=बन के ऐश्वर्य। गर्भ-गृह=गुफाएँ, गृह के भीतरी भाग। शृङ्गावली=पर्वत की चोटियों की पक्ति, बैल का सींग। गिरि=चित्रकूट पर्वत। हरि=विष्णु, राम। हरवेष=शिव का वेष, तापस का वेष। वृष=बैल, धर्म। वृषारूढ=बैल पर आरूढ होने वाले शिव, धर्म पर आरूढ़ रामचन्द्रजी। शिला कलश=पर्वत रूपी कलश। उत्स=निर्भर। नगनाग=पर्वत रूपी हाथी। क्षिप्त=फैले हुए। सलिलकण=जल की बूँदें। किरण योग=किरणो का स्पर्श। वार रहे=न्यौछावर कर रहे। मुद्रा=अँगूठी। नग=रत्न।

भावार्थ—फिर वे सब प्रसन्न मन से चित्रकूट आये। चित्रकूट पर्वत अपार बन श्री का अटूट गढ़ दिखलाई पडता था। यहॉ अनेक गुफाये तथा सुरगें थीं और इसके समस्त अग अनेक प्रकार की धातुओं तथा पत्थरो से पूर्ण

थे। यह चित्रकूट पर्वत शिव के वाहन वृषभ के समान सुशोभित होरहा है चित्रकूट पर्वत पर जो विचित्र लताएँ और फूल-पत्तियाँ हैं वही वृषभ की हरी भरी झूल है। जो उस पर्वत की चोटियाँ हैं वही उस वृषभ के बढ़े हुए सींग हैं। वृषभ के रूप में यही चित्रकूट पर्वत, विष्णु के अवतार राम को शिव समान तापस वेश में देखकर बन मे उनसे मिला, परन्तु उससे पहिले ही अपने वाहन को पाकर प्रसन्न होने वाले शिव की भाँति धर्मारूढ राम का मन उसकी अपूर्व शोभा से प्रसन्न हो उठा।

राज्याभिषेक के स्थान पर राम को बनवास प्राप्त हुआ। परन्तु बनवास में भी प्रकृति के द्वारा राम का अभिषेक किया गया। उसने पर्वतरूपी हाथी के द्वारा चट्टान रूपी कलश से निर्झर के रूप मे जल प्रवाहित किया। फैले हुए जलकण सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर रत्नों की भाँति चमकने लगे। मानो प्रकृति ने सुन्दर रत्नो और मणियों की सम्पदा न्यौछावर की है। बन रूपी मुद्रिका में यह चित्रकूट पर्वत नग की भाँति सुशोभित है। भला इस सुन्दर स्थान को देखकर किसे हर्ष और विस्मय न होगा ?

(यहाँ सागरूपक द्वारा बैल तथा चित्रकूट पर्वत की समानता उपस्थित की गई है तथा शृंग, हरि, हर, वृष शब्दों में श्लेष है)

लक्ष्मण ने झट बजाकर तालियाँ। (पृ० १५७)

शब्दार्थ—मन्दिराकृति=मन्दिर की आकृति के समान। सरोरुह= कमल। सम्पुटी=कटोरी। वास्तु शान्ति=गृहप्रवेश कार्य।

भावार्थ—लक्ष्मण ने ही झट मन्दिर के आकार की कुटिया बनाई। वह जैसे मधु की सुगन्धि के लिए कमल की सम्पुटी के समान थी। सीताजी स्वयं ही वहाँ गृह-प्रवेश कर्म के समान उपस्थित थीं, फिर भी मुनियों ने रीति पूर्वक गृह-प्रवेश कर्म का विधान किया। वनवासी लोग डालियों के रूप में भेंट आदि साथ लेकर वहाँ एकत्रित हुए और तालियाँ बजाकर नृत्य और गायन आदि में रत हुए।

टिप्पणी—लक्ष्मण ने कुटिया की रचना राम और सीता के लिए की अत यहा मधु (पुल्लिङ्ग) और सुगन्धि (स्त्रीलिङ्ग) का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक है।

"लेकर पवित्र   बनाओ तुम।" (पृ० १५८)

शब्दार्थ—वितान=चँदोवा। अर्घ्य पाद्य=पूजा की सामिग्री। मधुपर्क=घी, जल, शहद की सामिग्री जो देवताओं पर चढाई जाती है। भूरि=बहुत।

भावार्थ—हे धैर्यवान रामचन्द्रजी आओ हम बन में अपने पवित्र आँसुओं से तुम्हारा अभिषेक करें। व्योम के चँदोवे के तले चन्द्रमा का छत्र तानकर वास्तविक सिह आसन (सिह की खाल) ही राज्यसिहासन बनाएँगे। आप इस पर बैठ जाइये। अर्घ्य पाद्य और मधुपर्क की तो यहा बहुलता है। अतिथि के समान नित्य नया आदर आप प्राप्त करेंगे। आप जगल में मगल मनाइए। हमें अपनाकर सभ्य बनाइए। हमे अपनी प्रजा बनाइए।

पृथ्वी की मन्दाकिनी   अम्बर बोर। (पृ० १५८)

शब्दार्थ—मन्दाकिनी=गगा की वह धारा जो स्वर्ग मे है। महाभारत के अनुसार मन्दाकिनी चित्रकूट के पास बहने वाली नदी है। 'साकेत' के कवि ने 'मन्दाकिनी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया है।

भावार्थ—पृथ्वी की यह मन्दाकिनी हिलोरें लेने लगी। स्वर्ग गा भी मानो उसमें समस्त आकाश को बोरकर डूब गई है।

तुलसी, यह दास कथा कहे। (पृ० १५६)

शब्दार्थ—तुलसी=तुलसी का पौधा, कवि तुलसी दास। पत्र=पत्ता, पन्ना। मानस=मन, रामचरितमानस।

भावार्थ—हे तुलसी, इस दास के मुह में सोना चाहे न हो परन्तु तुम्हारा एक पत्र अवश्य हो जिससे कवि अपने मन की कथा कह कर कृतार्थ हो सके।

यहाँ 'तुलसी' 'पत्र' और 'मानस' में श्लेष है। श्लेष से अर्थ होगा—हे कवि तुलसीदास जी इस दास के मुह में सोना चाहे न हो परन्तु तुम्हारे राम चरित मानस का एक पत्र अवश्य हो, जिसकी कथा कह कर यह कृतार्थ हो सके।

विशेष—अन्त्येष्टि क्रिया के अवसर पर मृत व्यक्ति के मुह में तुलसी दल अथवा सोना देने की प्रथा है। इस प्रकार इन पंक्तियों द्वारा कवि ने परोक्ष रूप से दशरथ मरण की ओर संकेत कर भावी घटनाओं का आभास दे दिया है।

उपमे, यह पुरजन छले गए। (पृ०१५६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे उपमे, यहाँ यह साकेत नगरी है। परन्तु इसके सुख, शांति और सौभाग्य तीनों ही नहीं रहे। सुख, शांति और सौभाग्य के रूप में राम, सीता और लक्ष्मण इसके तीनों ही यहाँ से चले गए। यहाँ के प्रजाजन सचमुच छले गए।

पुरदेवी सी यह समय इसे। (पृ० १६०)

शब्दार्थ—उर्वी=पृथ्वी। गुर्वी=गौरवशाली। विश्लेष=वियोग, अलग होना। यतिवेश=सन्यासी का रूप। हतविधि=दुर्भाग्य।

भावार्थ—पुरदेवी के समान यह कौन पड़ी हुई है। यह तो शांत पड़ी

हुई मूर्च्छित उर्मिला है। न जाने किन कुटिल करो ने इस कुमुदिनी को जल मे अलग कर छिन्न भिन्न कर दिया है ? पति का साथ देकर सीता ने अपने नारीत्व का अधिकार पा लिया, परन्तु उर्मिला ने उस अधिकार का भी त्याग किया। यही तो गौरव का भार है, जिसके कारण यह पृथ्वी गौरव शाली हुई है।

यौवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही उर्मिला को पति से अलग होना पड़ा। यौवन के दिनों मे ही उसे सन्यासिनी का वेश धारण करना पड़ा। न मालूम किस दुर्भाग्य का यह परिणाम है कि सुख और भोग भयकर रोग के समान दुखदायी बन गए हैं। (वियोगिनी उर्मिला को सुख के सभी प्रसाधन दुखदायी प्रतीत होते हैं।) हरि जो कुछ करते हैं भला ही करते हैं। वे क्या कभी किसी का अहित करते हैं ? परन्तु अयोध्या में होने वाली इन घटनाओ मे क्या हित है, इसे तो समय ही बतलावेगा।

भर भर कर सूक्ष्म छाया ? (पृ० १६०-१६१)

शब्दार्थ—भीत भरी=भय से भरी। खरतर=बहुत तीव्र। चैतन्य=होश में आना। मोह=सज्ञा हीनता। सुराग=सुन्दर प्रेम। कैरवाली = कुमुदनी।

भावार्थ—आसुओ से और भय से भरी आँखे लेकर सखिया उर्मिला को होश मे लाने का प्रयत्न करने लगीं। परन्तु उर्मिला का दुख अत्यन्त तीक्ष्ण था। इसीलिए होश में आना उसके लिए मूर्च्छित अवस्था से भी अधिक कष्ट दायी था। वह भोली भाली नव वधू जिसमें अनुराग की लालिमा थी, अब कुम्हलाई हुई कुमुदिनी के समान प्रतीत होती थी अथवा राहु ग्रस्त चन्द्रमा की चादनी के समान जान पड़ती थी। मुख की काति पीली पड़ गई है। नीली आँखे अशांत हो गई हैं। क्या ऐसी कृश काया उर्मिला की ही है अथवा यह उसके शरीर की छाया मात्र है।

सखियाँ अवश्य धैर्य धरो।" (पृ० १६१-१६२)

शब्दार्थ—वाम=कुटिल। मृगयोचित साज=शिकार के लिए उचित अस्त्र शस्त्र।

भावार्थ—सखियाँ उर्मिला को अवश्य समझा रही थीं परन्तु फिर भी उनके नेत्र दुख से भर भर आते थे। तब सुलक्षणा नाम की सखी बोली "हे

सखी धैर्य धारण करना ही उचित है। विधाता सदैव ही विरुद्ध नहीं रहेगा। श्री रामचन्द्रजी पुन. लौटकर आवेंगे। राजा ने शिकार के लिए उचित अस्त्र शस्त्रों सहित सुमत्र को रामचन्द्र जी के साथ भेजा है। यह भी कहा है कि रामचन्द्र जी के बिना एक एक पल एक-एक वर्ष के समान गिना जावेगा। अत: चौदह वर्षों के समान चौदह पल ही यथेष्ठ रहेंगे। उन्हें आज या कल में ही लौटा लाना। इसलिए चिंता मत करो। अब भी आशा है धैर्य धारण करो'।

बोली उर्मिला कर भी। (पृ० १६२)

शब्दार्थ—निष्फल=फल रहित।

भावार्थ—उर्मिला दुख भरे स्वर में बोली "हाय सब कुछ चला गया, परन्तु एक आशा नहीं गई हे आशे तुम चाहे कभी सत्य सिद्ध न हो फिर भी तुम हीरे की कनी की भाति आकर्षक हो। हीरे की कनी के समान मार कर भी अर्थात अत में निराशा का रूप लेकर भी तुम महत्वपूर्ण हो। अधकार करके भी तुम उज्ज्वल हो।

अब भी सुलक्षणे अल वे ? (पृ० १६२)

शब्दार्थ—दुख दहन=दुख को जलाने वाले, यहाँ लक्ष्मण से तात्पर्य है।

भावार्थ—हे सुलक्षणे क्या अब मी उनके लौटने की आशा की जा सकती है ? यदि है तो वह उनके लौट आने के मेरे विश्वास को नष्ट करने वाली है। परन्तु क्या प्रभु रामचन्द्र जी तथा बहिन जानकी और उनके पीछे दुख नाशक (लक्ष्मण जी) भी लौटकर आ सकेंगे ? जो जानने वाले हैं वे सब कुछ जान गए हैं। उन्होने उनके व्रत के महत्व को भी जान लिया है। जिस व्रत के कारण वे सब कुछ त्याग कर बन की ओर गए उसे छोड़कर क्या वे वन से लौट सकेगें ?

निकली अभागिनी पा चुकी सभी।' (पृ० १६२-१६३-१६४)

शब्दार्थ—त्राण=रक्षा। इष्ट=अभिलषित। ऊना=कम, तुच्छ। आराध्य युग्म=राम और सीता।

भावार्थ—त्रिलोक में भी मेरे समान कोई अभागिनी नहीं होगी। अपने स्वामी का साथ तो मैं दे ही नहीं सकी परन्तु जो कुछ मेरे हाथ में था उसे

भी मैंने खो दिया। यदि मैं अपने स्वामी की सहचरी न बन सकी तो इतना तो कह ही सकती थी कि "हे स्वामी तुम अपने भाई का साथ दो। मुझे भी वियोग की इस अवधि को पार करने की सामर्थ्य उस ईश्वर द्वारा प्राप्त हो। अपने प्राणों की रक्षा आज भी मुझे अभिलषित है जिससे वियोग में व्याकुल रह कर भी मैं तुम्हें यहाँ देख सकूं। प्रेम स्वयं ही महान कर्त्तव्य है। वही तुम्हें खींच रहा है। यह भ्रातृ प्रेम कभी कम न हो। संसार के लिए वह आदर्श बन जाए। जीजी की (बन गमन के अवसर पर रामचन्द्र जी से) मर्म भरी हृदयाभिव्यक्ति सुनकर में मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उस व्यथा को मैं सहन न कर सकी। परन्तु वह मेरी दुर्बलता नारी सुलभ थी। उस समय की व्याकुलता के आकस्मिक वेग से मैं अपने को सभाल न सकी। मेरी इस दुर्बलता के कारण कुछ भी सोच न करना जिससे तुम्हारे व्रत में किसी प्रकार की बाधा आए। आपके लौटकर आने की अवधि अभी दूर है, फिर भी तुम लौटकर आओगे यही विश्वास मेरे जीवन का सहारा है। पूज्य राम और सीता के सोने पर निस्तब्ध रात्रि में जब कभी तुम मुझे याद करोगे तभी मानो मैं सब कुछ प्राप्त कर लूगी।

प्रिय-उत्तर .... उनके लेंगे ? (पृ० १६४)

शब्दार्थ—वदन=मुख। अनुग=अनुगामी, यहाँ भरत से तात्पर्य है।

भावार्थ—मैं अपनी बात कह कर प्रिय का उत्तर भी नहीं सुन सकी। अपने वियोग की दीर्घ अवधि के लिए कर्त्तव्य मार्ग भी निर्धारित न कर सकी। मेरा यह दीर्घ काल किस प्रकार कटे यह मैं किससे पूछूँ। हे सखी सुलक्षणे तुम्हारे कहने के अनुसार यदि मैं धैर्य धारण करूँ तो कहो मैं क्या करूं और क्यों नहीं करूँ जिससे कि गौरव के महत्व से मंडित वह प्रफुल्लित सुन्दर मुख मैं पुनः देख सकूं।

हे सखी मैं अपने लिए व्याकुल नहीं हूँ। मेरे ये नेत्रों के आँसू स्वार्थी नहीं हैं। मुझे यही दुख है कि क्या से क्या हो गया। रस मे ये विष के बीज कौन बो गया ? जिन रामचन्द्रजी ने प्राप्त किया हुआ राज्य इस प्रकार छोड़ दिया क्या उनके भाई भरत उस राज्य को ले लेंगे।

मॉं ने न तनिक   भभक उठा । (पृ० १६५--१६६)

शब्दार्थ--दृष्ट = दिखलाई देना । सृष्ट=बनना । दुरदृष्ट = दुर्भाग्य । प्रतिकार=बचाव । अकधक = सोच विचार । शमन यत्न=रक्षा का प्रयत्न । यम = मृत्यु । सध्यारुणिमा=सन्ध्या की लालिमा ।

भावार्थ—माता कैकेयी ने तनिक भी सोच विचार नहीं किया । अचानक ही उन्हें यह क्या सूझ पड़ा ? कहॉं तो अभिषेक होने जा रहा था और कहॉं बनवास मिला ? सत्य तो यह है कि यहॉं किसी पर भी तनिक विश्वास नहीं किया जा सकता । निकट भविष्य भी अदृश्य बना रहता है । ऐसी कौनसी बात है जो सहसा हो नहीं सकती । हे दुर्भाग्य मुझे यह स्पष्ट बतलादे कि दूसरों का अनिष्ट करना ही तुझे क्यों इष्ट है ? तू सदैव बने हुए काम को बिगाड़ता है ? प्रायः कुटिल ही बना रहता है । दूसरों को रक्षा करने का अवसर दिए बिना ही तू छिपकर बिना आगा पीछा किए प्रहार करता है । जहॉं कहीं भी अवसर मिलने पर धोका देता है । हे दुर्भाग्य तू ने यह जो कुछ किया है उसकी कल्पना तो स्वप्न में भी नहीं की जा सकती थी । जिससे कि हम अपनी रक्षा का प्रयत्न भी करते । प्रयत्न द्वारा दुर्दमनीय मृत्यु भी वश में की जा सकती है ।

यह कह कर उर्मिला ने नभ की ओर देखा । उसकी दृष्टि में विधाता के प्रति ईर्ष्या की भावना भरी हुई थी । उस ईर्ष्याग्नि से मानो आकाश जल उठा । सध्या की लालिमा उसी अग्नि की चमक थी ।

रीता दिन बीता   गुनती थी । (पृ० १६६)

शब्दार्थ—वेला = समय । बॉंझ = बध्या, निष्फल । अतर्क्य=तर्क वितर्क से परे ?

भावार्थ—दिन सूना ही बीत गया । इसके बाद रात हुई । रात भी जैसे तैसे प्रभात में बदल गई । फिर शून्यता लेकर सॉंझ आई । इस प्रकार सभी वेलाए निष्फल गई । उर्मिला कभी रोती थी कभी चुप हो जाती थी । जो कोई उसे समझाता था, उसे ध्यानपूर्वक सुनती थी । परन्तु मन में ऐसी बातों पर विचार किया करती थी जिस पर तर्क वितर्क नहीं किया जा सकता था ।

उन माताओं   दाँए बाँए। (पृ० १६६-१६७)

शब्दार्थ—दारुण=कठिन। हृत प्रसूना = जिनके फूल हर लिए गए हो।

भावार्थ—उन माताओं की करुण पूर्ण स्थिति दुगनी और कठिन पीड़ा पहुँचा रही थी। पुत्र बन चले गए तथा पति रुग्ण पड़े थे। उन्हें रोने तक का अवकाश न था। आंधी से उखड़ गए वृक्ष के समान नृप दशरथ दुख से आहत अत्यन्त जर्जर और कृश होकर पड़े थे। कौशल्या और सुमित्रा फूल रहित लताओ के समान उनके दाएँ बाएँ थीं।

विशेप—यहाँ राजा दशरथ की उपमा आँधी से गिरे वृक्ष के साथ तथा सुमित्रा और कौशल्या की उपमा प्रसून रहित लताओं के लिए बड़ी समीचीन है।

ज्यों त्यों कर   ओर ओह।" (पृ० १६७)

शब्दार्थ—प्रभूवर प्रसू=रामचन्द्र जी की माता कौशल्या। स्वापत्य= अपना पुत्र धर्म।

भावार्थ—जैसे तैसे व्यथा को सहन कर, अपने अचल से वायु करती हुई कौशल्याजी ने महाराज दशरथ से इस प्रकार कहा—हे नाथ, अब इस प्रकार व्याकुल मत बनो। तुमने अपने सत्य धर्म का पालन किया है। पुत्र ने अपने पुत्र धर्म को निभाया है। पत्नी ने देवी बनकर पति का साथ दिया। छोटा भाई बड़े भ्राता की सेवा के लिए तत्पर हुआ। जो कुछ भी हुआ वह स्वाभाविक ही है। परन्तु इससे मनुष्यचरित्र धन्य होगया। हे नाथ, आप जो इतने गौरवशाली हैं, उसी की महिमा को धारण कर इस दुख को सहन करो। हम सब की ओर देखो।

भूपति ने आँखें   आँखों का पानी।" (पृ० १६७-१६८)

शब्दार्थ—धिक् धातः=हे विधाता धिक्कार है।

भावार्थ—भूपति दशरथ ने तब आँखे खोलकर कहा—"यह कौन बोल रहा है? क्या कौशल्या है, राम की माता तू सचमुच धन्य है। हाय मैं क्या करूँ? हे विधाता तुझे धिकार है। इस दुख के वेग को मैं कहाँ तक रोकूँ? कौन सा मुँह लेकर तुम्हें देखूँ? हा! आज मेरी दृष्टि कहाँ चली गई? वह तो वधू सीता के साथ चली गई। सीता ने भी नाता तोड़ लिया। इस वृद्ध

ससुर को छोड़कर चली गई। उर्मिला बहू की बड़ी बहिन हाय मैं इस शोक को कैसे सहन करूँ ? उर्मिला कहाँ है, हाय बहू तू ही इस रघुकुल की सबसे असहाय बहू है। मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ। मैं इस सूर्यवश के लिए केतु के समान हूँ। यदि राम सुमन्त्र के साथ बन से नहीं लौटे तो वे मुझे फिर नहीं देख पायेंगे। मेरी बलि का भोग पाकर हे कैकेयी तेरी राज्यश्री तृप्त रहे। हे भोग की लालसा रखने वाली तू राजा दशरथ जैसा दानी पाकर अपनी मनमानी कर चुकी। हे पटरानी कौशल्या तुम भी कुछ माँग लो। मैं सकल्प के लिए (अजलि में जल भरने के स्थान पर) नेत्रों में पानी भर कर तुम्हें भी कुछ प्रदान करूँगा।

"माँगूँगी क्यों हैं घेरे !" (पृ० १६८--१६६)

शब्दार्थ—कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष। कृतकर्म=किये हुए कार्य।

भावार्थ—कौशल्या ने उत्तर में कहा—हे नाथ मैं भी आपसे अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त करूँगी। सब के मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्पतरु की भाँति तुम मुझे यही वरदान दो कि कैकेयी चाहे जैसी हो परन्तु उसे मेरी भाति पुत्र से वचित न होना पड़े। भरत कहीं कैकेयी को छोड़ कर न चले जाए।" दशरथ ने उत्तर दिया—क्या तुम यही माँगना चाहती हो अथवा मृत्यु के समय मुझे शाँति प्रदान करना चाहती हो। परन्तु मेरे भाग्य में शाँति कहाँ है ? पहले किए हुए बुरे कर्म जो मुझे घेरे हुए हैं।

दोनों सुरानियाँ उसको छोड़े ! (पृ० १६६)

शब्दार्थ—पद पद्म=चरण कमल। अवलम्बदायिका = सहारा देने वाली।

भावार्थ—सुमित्रा और कौशल्या दोनों श्रेष्ठ रानियाँ रो रहीं थीं। अपने आसुओं से पति के चरण कमलों को धो रहीं थी। राजा दशरथ राम राम की रटना लगाए हुए थे। एक एक पल युग के समान कट रहा था।

सुमन्त्र राम के साथ गए हैं। राम भी गृह की चिंताजनक अवस्था को देखकर गए हैं। सभवत. सुमन्त्र उन्हें लौटा लावें, यही एक आशा बची हुई थी जो राजा दशरथ के प्राणों को जीवित बनाए हुए थी। आशा सचमुच ही टूटते हुए हृदय को सहारा प्रदान करने वाली है। वह भुलावे में डालने वाली मधुर गीतगायिका है। वह स्वय अपनी ओर से भले ही सम्बन्ध तोड़ले

परन्तु मनुष्य उसे नहीं छोड़ता।

ऊँचे अट्टों   सब हारे। (पृ० १५०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—ऊँची अट्टालिकाओं पर चढ़-चढ़ कर तथा सभी मार्गों पर आगे जाकर अयोध्या निवासी रथ लौटने की प्रतीक्षा करने लगे कि सभवतः रामचन्द्रजी लौट आयें। परन्तु यदि रामचन्द्रजी को लौटना ही था तो वे पहले वन ही क्यों जाते? बेचारे सुमन्त्र अकेले ही लौटे। उनके सभी अनुरोध और तर्क असफल रहे।

कर में घोड़ों   उपाय नहीं। (पृ० १७०)

शब्दार्थ—विधि-विधि=भाग्य का विधान।

भावार्थ—हाथों में घोड़ों की रास थामे, असफलता के उपहास से भरे जीवन को लिए मानों पूर्णतः परतन्त्रता की विवशतामयी अवस्था लिए सुमन्त्र सूना रथ लिए लौट आए। रथ रिक्त बादलों के समान था, जिसमें न जल था न गर्जन ही। हाय! उसमें अब बिजली की चमक भी न थी। इसीलिए, जल रहित बादलों की भाँति, आनन्द और उल्लास से रहित मथरगति से रथ चला आ रहा था। सचमुच भाग्य के विधान पर किसी का वश नहीं है।

जो थे समीर   अरण्य पथ था। (पृ० १७०--१७१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—जो घोड़े वायु के समान तीव्र थे इस समय उनके पैर भी नहीं उठ रहे थे। राम के बिना वे भी रो रहे थे। पशु भी प्रेम में अनुरक्त होना जानते हैं। जो घोड़े भीषण रणक्षेत्र के बीच भी विमुख नहीं हुए थे, आज राम के बिना सूने रथ को खींचते हुए उनके पैर टूट रहे थे। सूना रथ उन्हें अत्यन्त भारी जान पड़ रहा था। अयोध्या का मार्ग उनके लिए वन का मार्ग बन गया था, जिस ओर वे जाना ही नहीं चाहते थे।

अवसन्न सचिव   देह यहीं। (पृ० १७१- १७२)

शब्दार्थ—अवसन्न = विषादग्रस्त। अनन्त=आकाश। दिग्दैत्य=दिशाओं रूपी दैत्य। मुख-सरसिज==मुख कमल। श्यामलता=कालिमा।

भावार्थ—सचिव सुमन्त्र का शरीर और मन असीम दुख से भरा हुआ था। वायु सनसनाती हुई चल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सुमंत्र के सिर पर आकाश ही टूट कर गिर पड़ा हो। जिससे मानों सुमन्त्र की कमर ही टूट गई हो और उनका भाग्य फूट गया हो। वे सब प्रकार से असहाय विवश और निर्जीव से बन गये। धरती भी मानों प्राणहीन होगई। प्रकृति भय से भर गई जैसे उसे खाने के लिए सामने ही दिशाओं रूपी दैत्य मुँह खोले हुए खड़ा था। सुमन्त्र का मुख कमल इसी चिंता में डूबा हुआ था कि वह अपने आपको राजा दशरथ और अयोध्यावासियों के सामसे कैसे प्रगट करे? इसीलिए वह मुख कमल अपने चारों ओर दुख की कालिमा लाकर उसमें अपने को छिपाना चाहता था। (सध्या की कालिमा में कमल की पखुड़ियाँ बन्द हो जाती हैं।)

सुमन्त्र का व्याकुल हृदय क्या कर रहा था? वह मानो शरीर में गहरी साँसें भर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो दशरथ को राम का सन्देश दिए बिना ही कहीं उनकी देह निर्जीव होकर न गिर पड़े।

जब रजनी .... वेश पुरी (पृ० १७२)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सुमंत्र ने नगर से बाहर ही संध्या का समय बिताया और रात होने पर उन्होंने दुख भरे हृदय और शाति गति से नगर में प्रवेश किया। जो नगरी सदैव दिवाली की भाति जगमगाती थी वही अब अंधेरे की कालिमा से आछन्न थी। मानो नगरी ने अधकार के रूप में अपने काले केश बिखेर कर विधवा वेश धारण कर लिया हो।

क्या घुसे सुमत्र .... हैं प्रहरी!" (पृ० १७२-१७३)

शब्दार्थ—रसातल=पाताल। तमी=अधकार। पौ फटना=प्रभात होना। पूनें=पूर्णिमा। गृह-राजि=मकानों की पक्तियां। स्तम्भित=निश्चल, निशब्द।

भावार्थ—अयोध्या नगरी के स्थान पर सुमत्र ने कहीं पाताल में तो प्रवेश नहीं किया। पल पल पर उनकी साँस अवरुद्ध होने लगी। यह अंधकार यहाँ से कभी दूर होगा अथवा नहीं? क्या यहाँ अब प्रभात का उजियाला न होगा? नगर के सभी चौक बन्द थे, मार्ग सूने थे। पूर्णिमा

अमावस्या की रात्रि बन गई थी। नगर के भवनों की जो पंक्तियाँ गीतो के मधुर स्वर से गूंजा करती थी वे भी निश्चल और निस्तब्ध बनी हुई थीं। नगर के प्रहरी गण चुपचाप फिरते थे। यह सब देखकर सचिव सुमत्र के नेत्रों से आसू गिर रहे थे। जब घर सभी प्रकार से लुट चुका है, उसमें कुछ शेप हो नहीं रहा तब ये प्रहरी गण अब किसकी रखवाली करते हैं।

उत्तर में 'नहीं' अश्रु पड़ते (पृ० १७३--१७४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—अयोध्या निवासी सचिव सुमत्र से राम लौटे अथवा नहीं, यह बात इस भय से न पूछ सके कि कहीं उन्हें उत्तर में 'नहीं' न सुनना पड़े। इसी भय से वे शात ही रहे। अमात्य का चुप रहना ही उस उत्तर की विषाद-मयी सूचना दे रहा था। वास्तव में किसी अनिष्टकारी बात को पूछते और कहते हुए मनुष्य चुप ही रहते हैं। रीता रथ देखकर सभी सिर धुनने लगे। क्या आर्य रामचन्द्र जी नहीं लौटे? अयोध्या वासियो की यह बात ऊपर देव-ताओं ने स्पष्ट सुनी। देवताओं ने इसके उत्तर में कहा—रामचन्द्र जी बन मे ही रहकर देव कार्य सम्पन्न करेंगे। अमृत से सिचे हुए ये वाक्य उस समय नीचे अयोध्या में नहीं सुनाई पड़े, वे कोलाहल में विलीन हो गए। किसी प्रकार की सान्त्वना न पाकर नगर निवासी गण अत्यन्त दीन हो गए।

नगर निवासियों का यह दुख सुमत्र से नहीं देखा गया। उन्होने सिर नीचाकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। जिस रथ पर फूल झड़ते थे उस पर आज उनके नेत्रों से आसू गिरने लगे।

जब नृप समीप बिल्लाती थीं। (पृ० १७४)

शब्दार्थ— उपनीत=समीप उपस्थित होना। पक=कीचड़।

भावार्थ—जब मन्त्री सुमत्र राजा दशरथ के समीप उपस्थित हुए तब उनका दुखी हृदय भय से भर उठा। महाराजा दशरथ की दशा को देख वे विचारने लगे "यह नौका (राजा दशरथ) डूब ही जायगी अथवा इसे कहीं किनारा भी प्राप्त होगा। महाराजा दशरथ के रूप में जैसे गजराज, कीचड़ में फँसा हुआ बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा था, पास ही विकल हथिनियां विवश होकर रुदन कर रही थीं।"

बोले नृप—"राम   मुख दिखलाओ।" (पृ० १७४–१७५)

शब्दार्थ—छूछा=निस्सार।

भावार्थ—राजा दशरथ ने पूछा "क्या राम नहीं लौटे ? इसके उत्तर में मानो सारा भवन ही गूँज उठा कि राम नहीं लौटे। नृप ने शोकाकुल हृदय से जो कुछ पूछा था उसका यही शुष्क और निस्सार उत्तर था। यद्यपि सुमन्त्र ने प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं कहा था तथापि गूँज के रूप में यही उत्तर राजा दशरथ को बारबार मिलता था। परन्तु उन्हें सचिव का चुप रहना अधिक दुखदायी प्रतीत हुआ। उनका सूखा हुआ गला भर आया। वे पुनः बोले "रामचन्द्रजी को कहा छोड़ आये ? मुझे भी वहीं ले चलो जहा उन्हें छोड़ा है। मुझको भी रामचन्द्रजी के पास ही छोड़ कर उनका मुख दिखलाओ।"

टूटी महीप की   हमें जिलावेगा। (पृ० १७५)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—राजा दशरथ की हृदय तन्त्री छूट गई। मन्त्री ने दुख भरे स्वर में कहा "हे आर्य रामचन्द्र जी का मुख आप पुन. देखेगें ? अभी आपको ये दुख के दिन देखने को मिले हैं, तो क्या सुख के दिन देखने को नहीं मिलेगें ? वे यशस्वी बनकर लौटेंगें, और वही यश आपको प्रदान कर सुख प्राप्त करेगें। उनका नाम अमर लोक में भी गूजेगा। परन्तु आपके द्वारा इस प्रकार चिन्ता करने से काम नहीं चलेगा। उचित अवसर आने पर ही उनसे मिलन हो सकेगा। इस प्रकार तो यह दुख जीवित भी न रहने देगा। अतः इस दुख का परित्याग ही उचित है।

राघव ने हाथ   शान्ति वही।" (पृ० १७५–१७६)

शब्दार्थ—पिछेल=धकेल। व्यवधान=रुकावट। मही=पृथ्वी।

भावार्थ—रामचन्द्र जी का सन्देश दशरथ को सुनाते हुए सुमन्त्र ने कहा–रामचन्द्रजी ने धैर्य धारण करते हुए हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा है– हे तात हृदय में यही आता है कि पृथ्वी के इस व्यवधान को पीछे धकेल कर इन चरणों में आ लोटूँ और तुम्हारे हाथों का स्पर्श पाकर सुख प्राप्त करूँ। परन्तु धर्म पालने के कारण ही मैं बन में रह रहा हूँ। अतः मेरे लिए अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। धर्म पालन का जो भाव मुझे बन

में शान्ति प्रदान करेगा हे तात उससे तुम्हें भी शान्ति मिलेगी।

"क्या शान्ति ? विनीता ने ?" (पृ० १७६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—राजा दशरथ ने उत्तर में कहा—क्या मुझे शान्ति मिलेगी ? हाय अब इस हृदय को शान्ति कहाँ ? यहाँ तो स्वय कैकेयी ने क्राति का रूप ले लिया है। मेरे लिये तो प्रतिज्ञा पालन का पुण्य ही पाप बन गया। यह धर्म ही आज मेरे हृदय को दग्ध कर रहा है। क्या सीता ने, उस विनय की मूर्त्ति वैदेही ने, कुछ नहीं कहा ?

बोले सुमन्त्र यति के पीछे !" (पृ० १७६ -१७७)

शब्दार्थ—जकी=भौंचकी सी होना। महायति=महातपस्वी।

भावार्थ—सुमन्त्र ने कहा – सीता कुछ भी नहीं कह सकी। कहने की इच्छा रखते हुए भी वे भौचक्की सी बन थकित रह गई। साकेत की स्मृति में अपने को भूल गई। पृथ्वी तक झुककर उन्होंने प्रणाम किया और फिर आकाश की ओर हाथ जोड़े। नेत्र कुछ-कुछ सजल हो गए। आँसू बरौनियो तक आकर रुक गए। वे नीचे नहीं गिरने पाए। वे रामचन्द्रजी के पीछे इस प्रकार जाकर खड़ी हुई जैसे मुक्ति किसी महान तपस्वी के पीछे जा खड़ी होती है।

नृप रोने लगे टले सभी !" (पृ० १७७)

शब्दार्थ—बनस्पृही=बन की इच्छा रखने वाले। व्यतिक्रम=विघ्न, उलट फेर।

भावार्थ—राजा दशरथ रोते हुए कहने लगे—हाय ! सीते, हमारा हृदय इतना कठोर है कि इतना सब कुछ देख सुन कर भी हम जीवित हैं। परन्तु वन के कठोर कष्ट सहते हुए भी तुम्हारे हृदय मे तनिक भी विकार नहीं आया। जिन्हे गृह मे रहना चाहिए वे आज बन के आकाक्षी बने हैं, हाय बन में जाने योग्य तो हम थे, परन्तु गृह में हमें रहना पड़ रहा है। हे विधाता तूने इस उलट-फेर के लिए इतना श्रम क्यों किया ? यदि मथरा वास्तविक बात को न जान सकी तो कैकेयी जैसी रानी उसे क्यो न समझ सकी ? अब उस कैकेयी से जाकर कोई कह दे कि ले तेरे मार्ग के सभी काँटे दूर होगए।

बोले सुमन्त्र लक्ष्मण सीते !" (पृ० १७७--१७८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ--राजा दशरथ की बात सुनकर सुमन्त्र ने कहा--ओह लक्ष्मण भी यही कहा था।

इधर महाराज दशरथ को जीवन भार तुल्य प्रतीत होने लगा। उनके मुँह बस यही अन्तिम उद्गार निकले "मेरे दोनों हाथ टूट चुके हैं। कमर टूट है, सारे सुख मुझसे छूट गए हैं, आँखों की पुतली निकल पड़ी हैं, और यहीं कहीं विकल होकर पड़ी हैं। बार बार दुख के प्रहार सह कर भी न ने ये प्राण क्यों बचे हुए हैं? हे जीव चलो, तुम्हारे दिन अब समाप्त हो । 'हा राम, हा लक्ष्मण हा सीते।

विशेष—यहाँ कर युग से तात्पर्य राम लक्ष्मण, कटि से सीता और आँखों पुतली से अभिप्राय उर्मिला से है।

बस, यहीं परिवार-भार धारी (पृ० १७८-१७९)

शब्दार्थ—दव=अग्नि।

भावार्थ—बस यही कहते महाराज दशरथ स्वर्गवासी हुए। प्राणों का क बुझ गया। पुत्र का वियोग उनके लिए वायु के वाण की भाति प्राण तक सिद्ध हुआ। आकाश में चन्द्रमा मलिन पड़ गया। पृथ्वी पर कुछ दिख ई नहीं दिया। चारों ओर अत्यन्त भीषण हाहाकार छा गया। सारा संसार य सा हो गया। शोक में मग्न राजा की अर्द्धांगिनी रानिया मूर्च्छिता थीं वा अर्द्ध मृता बन गई थीं? सहसा यह करुण दृश्य देखकर सुमन्त्र ने अपने नों नेत्र बन्द कर लिए। 'हा स्वामी' कह वे जोर से चिल्ला उठे। मानो वे ग से दहक उठे हो। सेवक गण अनाथो की भाँति रुदन कर रहे थे। ने भी थे सब अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। भूप सभी के हितकारी थे वे चे अर्थों में परिवार का पालन करने वाले थे।

"माँ, कहाँ गए मथरा मरी!" (पृ० १७९)

शब्दार्थ—निजकृत=स्वय के द्वारा किया गया।

भावार्थ—"माँ वे पूज्य पिता कहाँ चले गए? इस प्रकार रुदन करते शोक की मूर्ति उर्मिला सभी सुध बुध भूलकर कैकेयी के सामने जा गिरी।

इस समय कैकेयी मुह भी न खोल सकी। एक शब्द भी उसके मुह से न निकला। उसका शरीर पत्थर की भाँति जड़ बनकर हिल डुल न सका। उसकी बड़ी बड़ी आँखे फटसी गई। ऐसा प्रतीत होता था मानो कृत्रिम नई आँखे जड़ दी गई हों। रोना भी उसके लिए दूसरो का उपहास का कारण बन गया। उसका यह वैधव्य उसके ही कार्य का परिणाम था। वह स्वय अपने से भयभीत हो गई। किस बुरे समय में आकर मथरा ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट की।

भूपति-पद का उन्होंने भी मानी। (पृ० १८०)

शब्दार्थ—भूपति=पृथ्वी के स्वामी। हिमकण = ओसकण। दानव भयहारी=दानवों के कारण उत्पन्न भय को दूर करनेवाले। सुराङ्गनाएँ=देवपत्नियाँ। पुराङ्गनाएँ=नगर वधुएँ।

भावार्थ—राजा दशरथ के रूप में पृथ्वी के स्वामी मृत्यु को प्राप्त हुए। भू यहीं रह गई उसके पति चले गए। इस प्रकार भू-पति पद खडित होगया। यह सुनकर किसको खेद नहीं हुआ। आकाश ने भी चुपचाप रोकर ओस कणो के रूप में अपने आँसू बहाए।

दानवो से उत्पन्न भय को विनिष्ट करने वाले राजा दशरथ का शरीर मिट गया। राजोचित गुणों का समूह स्थान नष्ट हो गया। ऊपर अमर लोक मे देव पत्नियाँ रोई, नीचे पृथ्वो पर नगर वधुओं ने रुदन किया। मुनि वशिष्ठ जो तत्व ज्ञानी थे, जन्म मृत्यु के रहस्य को जानने वाले थे उन्होंने भी दुख माना।

होकर भी जन्म में ही खोए। (पृ० १८०)

शब्दार्थ—डील=शरीर। हेमाद्रि=सुमेरु पर्वत।

भावार्थ—जन्म और मृत्यु साथी होने पर भी भाव भगिमाए रखते हैं। जन्म के अवसर पर तो हर्ष होता है, मृत्यु के अवसर पर शोक। राजा दशरथ के मन को मुग्ध करने वाला अपूर्व शरीर सुमेरु पर्वत की चोटी के आकार से समता करता हुए सदा उन्नत खड़ा रहता था आज पूर्णतः निष्चेष्ट होकर पृथ्वी पर पड़ा था। उनके मुख पर अब भी शोक चिन्ह अकित थे। राजा दशरथ चले गए थे, परन्तु उनके भाव अब नहीं गए थे। राजा के मुख पर अब भी वे परिलक्षित थे। अथवा वे मृत्यु के मिस सो गए थे जिससे कि **उनके खोए**

पुत्र स्वप्न में शायद मिल जाएँ।

मुँह छिपा पदों ..... क्रिया कर !" (पृ० १८१)

शब्दार्थ—क्षर=नष्ट होने वाला।

भावार्थ—जीवन गति के एक मात्र आधार प्रियपति के चरणों में मुंह छिपाकर रानिया विलाप कर रही थीं। जीवन और धन वैभव होते हुए भी वे जीवन रहित और निर्धन बन गईं। क्योंकि पति के रूप में उनका जीवन धन, उनसे छिन गया।

वशिष्ठ ने रानियों को विलाप करते हुए देखकर कहा—नश्वर शरीर यहा का यहीं रह गया। सास रूपी शृंखला टूट गई और उसके बंधन से आत्मा मुक्त बन गई। तब सुमन्त्र अत्यन्त आर्त भाव से बोले—गुरुवर देखिए तो सही यह क्या हुआ। वे देवताओं के पूज्य आज इस प्रकार मरण को प्राप्त हुए कि उनकी अन्त्येष्टि क्रिया के लिए उनके चार पुत्रों में से एक भी पुत्र उपस्थित नहीं है।

धैर्य देकर ..... वृत्त कहे बिना। (पृ० १८१)

शब्दार्थ—प्रकृत वृत्त=वास्तविक बात।

भावार्थ—तब फिर धीर मुनि वशिष्ठ ने सबको ज्ञान का उपदेश देकर धैर्य प्रदान किया। नृप के शव को उन्होंने सुरक्षित भाव से तेल में रखवा दिया। फिर उन्होंने चतुर दूतों को भरत को बिना वास्तविक बात बतलाए बुलाने के लिये संक्षिप्त सा संदेश देकर भेजा।

इस शोक के ..... कठोर कैकेयी ! (पृ० १८१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—इस दुख के कारण को लेकर सब अंध भाव से बस एक घृणा की मूर्ति को देख रहे थे और वह कठोर हृदया कैकेयी थी।

सप्तम सर्ग

'स्वप्न' किसका   निःश्वास ? (पृ० १८२)

शब्दार्थ—स्वप्न=सपना, महाकवि भास कृत 'स्वप्नवासवदत्ता'। सविलास=विलास सहित, शृंगार रस का पर्यायवाची। कविकला=कविता। प्रतिमा=राम कथा पर आधारित भासकृत नाटक, मूर्त्ति। भास=महाकवि भास, दीप्त।

भावार्थ—कवि की जो कविता साकेत नगरी के सुख वैभव का स्वप्न देख कर मधुर हास्य प्रगट करने को थी वही किसी प्रतिमा की भेंट का आभास पाकर करुण आहें भरने लगी।

यहाँ स्वप्न, प्रतिमा, भास, श्लिष्ट शब्द हैं। श्लेष से अर्थ होगा। महाकवि भास की कविता ने 'स्वप्नवासवदत्ता' में जहाँ शृंगार रस का मधुर हर्ष प्रगट किया है, वही 'प्रतिमा' नाटक मे करुण रस का सचार किया है। यहाँ कवि ने परोक्ष रूप से सस्कृत कवि भास की स्तुति की है।

विशेष—इन पक्तियो में सर्ग की भावी घटनाओ का आभास है। साकेत नगरी के सुख साधन अब स्वप्न की बात बन गए हैं। राजा दशरथ की मृत्यु के बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्या लौटते हैं। प्रतिमा रूप उन्हीं की भेंट का आभास पाकर कवि अब विलास पूर्ण स्वप्न से 'करुण निश्वास' की ओर आ रहा है।

छिन्न भी है   रख साहित्य ! (पृ० १८२)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—आज कवि की निरुपाय लेखनी भला क्यो न रोये ? शोक के भार से हाय वह छिन्न-भिन्न हो गई है। फिर वह क्यो न नित्य भर भर कर आँसू बहाए। हे करुणे इन आँसुओ से सींच कर साहित्य को सरस बनाए रख।

जानकर क्या   गृह ग्लानि ? (पृ० १८३)

शब्दार्थ—ग्लानि=मलिनता।

रही है। आज उसमें नावें नहीं तैर रहीं। तटों पर जन समुदाय सैर करता हुआ दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। अवश्य कुछ न कुछ अयोध्या में विपत्ति पूर्ण घटना घटी है। समस्त घाट द्विज जनों से रहित हैं। सध्या वन्दन का आर्य-जन कहाँ चला गया ? वेदों की पाठ-ध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती।

ये तरणि   कुल दीप।" (पृ० १८५–१८६)

शब्दार्थ—तरणि=सूर्य। अतुल=तुलना रहित। कुल मूल=कुल के आदि पुरुष। युगकूल=दोनों किनारे। कल्य=काल। पित्त भड़कना=उत्तेजित होना।

भावार्थ—अपने अतुलनीय वश के मूल पुरुष सूर्य देव जिन्हें प्राची और पश्चिम दिशाओं के दोनों किनारे सरसता प्रदान करते हैं, जिस लालिमा को धारण किए उदित हुए थे, उसी लालिमा के साथ अस्त हो रहे हैं। कल भी वे इसी प्रकार उदित होंगे। जन्म लेने और जीवन धारण की सफलता इसी में है। हे हमारे कुल के केतु सूर्यदेव तुम्हें प्रणाम है। तुम इस ससार के हितार्थ चिर काल तक इसी प्रकार तपते रहो। हे शत्रुघ्न हमारे बड़े भ्राता रामचन्द्र जी मुक्ति से पृथ्वी पर जन्म धारण करने को कहीं अधिक श्रेष्ठ मानते हैं, जिससे कि सूर्य की भाँति अपने जीवन से ससार का कल्याण किया जा सके।

परन्तु मेरा हृदय आज क्यों धड़क रहा है। हृदय की भावनाएँ उत्तेजित हो रही हैं। सध्या के रूप में दिन और रात्रि का मिलन सहर्ष भाव से हो, परन्तु मुझे तो आज इसमें सघर्ष प्रतीत होता है। अन्धकार समीप ही दिखलाई पड़ता हैं। (अपने हृदय को समझाते हुए भरतजी कहते हैं) हे हृदय ! भयभीत मत बन। आर्य कुल के दीप रामचन्द्रजी अन्धकार को दूर करने में समर्थ हैं।

तब कहा शत्रुघ्न   वहाँ के हाल। (पृ० १८६–१८७)

शब्दार्थ—सहचर बाल=बाल साथी।

भावार्थ—तब शत्रुघ्न ने आह भरकर कहा "मै तो कुछ और ही बात विचार रहा था। मैं तो घर पहुचने की कल्पना से अत्यन्त हर्षित और सनाथ हो रहा था। पिता जैसे मेरी कुशल-क्षेम पूछ रहे थे। राम, लक्ष्मण आदि भाई प्रेम-पूर्वक भेंट कर रहे थे। हमें देखकर माताओ का हृदय हर्षित हो

रहा था। भाभियाँ विनोद करके प्रसन्न हो रही थीं। हमारे समवयस्क मित्र-गण अपने यहाँ के समाचार सुनाकर हमारे हाल पूछ रहे थे।

प्राप्त मातुल से ... भोजन-पान। (पृ० १८७)

शब्दार्थ—मातुल=मामा। श्रव्य=सुनने को। नव्य=नए। आस्य=मुख।

भावार्थ—मन्त्रीगण तो केवल यही सुनने के लिए अभिलाषी थे कि मामा से हमें क्या द्रव्य प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कुछ क्षणों को हम सब के लिए नए और सब हमारे लिए नए बन गए थे। इस प्रकार सब कितने अच्छे जान पड रहे थे। सब की वेश-भूषा, भाषा और भाव-भंगिमाओं को लेकर सबके चेहरों पर मधुर हास्य प्रकट हो रहा था। हम अपने ही गृह में आज अतिथि के समान थे। क्या ही अपूर्व समाज वहाँ सम्मिलित था। सब एक साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। हर्षयुत उत्सव और गायन का आयोजन हो रहा था।

पर निरख अब ... हो गाँस। (पृ० १८७-१८८)

शब्दार्थ—शफर=मछली। वारि=जल। गाँस=बर्छी की नोंक।

भावार्थ—परन्तु आज यह विपरीत दृश्य देखकर हे आर्य मैं अत्यन्त भीत हो गया हूँ। ऐसा मालूम होता है मानो पिताजी अत्यन्त रोगग्रस्त होकर दुख उठा रहे हैं।"

"हे भगवान तात केवल मात्र रुग्ण ही हों।" यह कहकर भरत जल की मछली के समान सिहर उठे। उन्होने एक दीर्घ साँस लिया मानो हृदय में बर्छी की नोक चुभ गई हो।

"सूत तुम ... न अधीर।" (पृ० १८८)

शब्दार्थ—आयास=परिश्रम। हन्त=शोक सूचक शब्द। अभिभूत=पीडित। उत्तरीय=दुपट्टा, चादर।

भावार्थ—हे सारथी अब तुम घोड़े की रास खींचे रहो। घोड़े अत्यन्त परिश्रम कर चुके हैं। अथवा रास को ढीली छोड़ दो। हा हन्त किसी प्रकार इस अनिश्चित आशका का अन्त तो हो। हे दूत जब तुम अयोध्या से चले थे तब क्या पिताजी बहुत अधिक क्लेश में थे? अब तो हम अयोध्या मे आ ही गए, ठीक-ठीक बतला दो, उन्हें क्या रोग था?" दूत ने अपना उत्तरीय

सँभालते हुए उत्तर दिया "आते समय मैं प्रभु से भेंट न कर सका था। हे वीर, जो कुछ भी है वह कुछ देर बाद ही सामने आ रहा है। आप उसके लिए अधिक अधीर न हों।"

प्राप्त इतने में उदित था सोम। (पृ० १८८-१८९)

शब्दार्थ—सुहर्म्य=सुन्दर महल। पुलिनाकार=नदी के तट जैसे आकार का। गृहराजि=गृह पंक्तियाँ। वितान=चँदोवा। सोम=चन्द्रमा।

भावार्थ—इतने में नगर का द्वार आ गया। प्रहरियों ने मौन होकर शिष्टाचार प्रकट किया। उन्हें दुख में निमग्न देखकर भरत उनसे कोई संवाद नहीं पूछ सके। नदी के किनारों के समान दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे महल थे। जिनके बीच नदी के प्रवाह के समान राजमार्ग था। नौका के समान रथ उसी मार्ग से निशब्द गति से बढ चला। लहरों के समान भरत का हृदय अनेक भावनाओं के प्रवाह से तरंगित हो रहा था। दोनों ओर गृहों की ऊँची पंक्तियाँ थीं जिनका आरम्भ और अन्त ही नहीं दृष्टिगोचर होता था। इस राजमार्ग पर आकाश चँदोवे जैसा था और चन्द्रमा छत्र के समान प्रतीत होता था।

"क्या यही साकेत उठाते हैं न।" (पृ० १८९--१९०)

शब्दार्थ—अलका=इन्द्रपुरी। अवसन्नता=विषाद ग्रस्त। साँग=सम्पूर्ण, पूरा। उद्भ्रात=विकल, विह्वल। कीर=तोते। अभियोग=दोषारोपण, अपराध।

भावार्थ—हे ईश्वर क्या यही साकेत नगरी है, जिसके सम्मुख इन्द्रपुरी भी नत मस्तक है। उन प्रति दिन के आनन्द आयोजनों का क्या हुआ ? क्या वे सभी शान्त, अवसन्न और मन्द पड़ गए। किसी प्रकार का क्रयविक्रय और व्यापार नहीं हो रहा, सब यातायात बन्द पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे साकेत नगरी निर्जीव देह लेकर पड़ी है। कहीं कोई बात सुनाई नहीं पड़ती। तब क्या सचमुच ही पिता अब नहीं रहे ?

आज क्या साकेत के सभी लोग अपने समस्त उद्योग-धन्धों को पूर्णकर थककर सहज शांत भाव से बैठ गए हैं। परन्तु वे इतने विकल और विह्वल क्यों दिखाई दे रहे हैं ? समस्त कलागृह और विद्यालय बन्द पड़े हैं। छात्र

स्वच्छन्द भाव से क्यों नहीं इधर-उधर घूम रहे ? बालक बधन मे पडे तोतो के समान हो गए हैं। उन्होने बचपन में ही वृद्धों की सी गम्भीरता धारण कर ली है। जहाँ कहीं भी लोग एकत्रित होते हैं, वे जैसे कोई अकथनीय अभियोग प्रकट करते हुए व्याकुल होकर मौन खडे हो जाते हैं। उनके झुके हुए सिर फिर ऊपर नहीं उठ पाते।"

चाहते थे जन सभी विद्रोह। (पृ० १६०)

शब्दार्थ—आक्षेप = दोषारोपण, लाछन। निर्लेप = जो किसी विषय से असम्बन्धित हो।

भावार्थ—अयोध्या का जन समाज भरत पर लाछन लगाना चाहता था परन्तु भरत की निर्लिप्तता और उनके व्याकुल मुँह को देखकर सभी अपने विद्रोह को भूल जाते थे।

"ये गगन-चुम्बित अशुभ उन्मेप।" (पृ० १६०-१६१)

शब्दार्थ—आधि=मानसिक व्यथा। किरण चूड़=किरणो की शिखा। गवाक्ष=खिड़कियाँ। मागध=विरुदावली कहने वाले भाट। वन्दि=यश गान करने वाले। भृत्य=सेवक। उन्मेष=प्रगट होना।

भावार्थ—ये आकाश को स्पर्श करने वाले विशाल प्रासाद विषादपूर्ण स्थिति में मौन भाव से क्यों खड़े हैं ? शिल्प-कौशल के ये सजीव प्रमाण किसके शाप से पत्थर बन गए हैं। अथवा अपनी किसी मानसिक व्यथा को दूर करने के लिए ये प्रासाद आत्म चिन्तन में लीन होकर अचल समाधि लिए हुए हैं। किरणें ही इनकी जटाएँ हैं और गवाक्षों के रूप में ये अपने नेत्र बन्द किए हुए हैं। प्रासादों में रुद्ध वायु ही मानो प्राण-वायु हैं जिसे योगी रूपी प्रासादो ने अपने ब्रह्माण्ड में खींच लिया है।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने बड़ी कुशलता के साथ सॉग रूपक द्वारा अयोध्या की स्थिति का चित्रण किया है।

सूत, मागध, बंदीजन, याचक, सेवक जन कोई भी अपना कार्य करता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। केवल प्रहरी जन ही विशेष रूप से सतर्क होकर किसी अमङ्गल के उन्मेष को व्यक्त करते थे।

"आगए !" सहसा ... जयी कुल जात ।" (पृ० १९१-१९२)

शब्दार्थ--अवरोध=बिना किसी रुकावट के यहाँ, इसका प्रयोग अतःपुर के लिए किया गया है । सिद्धार्थ सचिव का नाम विशेष । जीर्ण=दुर्बल । जयी कुल जात=विजेताओं के कुल में जन्म लेने वाले ।

भावार्थ--भरत शत्रुघ्न आगए । सहसा यह ध्वनि चारों ओर गूंज उठी । बिना किसी रुकावट के अन्तःपुर तक यह सवाद पहुँच गया । रथ के रुकने पर दोनों, शीघ्र ही सचिव सिद्धार्थ के हाथ का सहारा लेकर नीचे उतरे ।

सचिव को सम्बोधित कर भरत ने कहा–हे तात तुम इतने दुर्बल कैसे हो गए । क्या मुझे कोई अनिष्ट प्रद बात सुनने को मिलेगी ?" इतना कह तत्काल ही सचिव के अ क में मुँह छिपाकर भरत रोते हुए चुप होगए । सचिव ने उनकी ओर एक बार देखा और किसी प्रकार अपने आँसू रोक कर वे उन्हें भीतर ले चले । भरत से उन्होंने कहा– मैं तुमसे कोई भयानक बात कैसे कह सकता हूँ ? हे विजेताओं के कुल में जन्म लेने वाले अब तुम्हें राज्य का भोग करना है ।

भरत को क्या ... यथार्थ अपत्य ।" (पृ० १९२)

शब्दार्थ—अपत्य = संतान, पुत्र ।

भावार्थ–राजा दशरथ की मृत्यु का रहस्य भरत को ज्ञात नहीं था । वे शंका-युक्त और शोकभरे स्वर में बोले "पिताजी कैसे हैं ?" इसके उत्तर में सचिव का कथन था "वे तो इस ससार की बाधाओं से मुक्ति पा चुके हैं ।" भरत ने पुनः कहा–परन्तु इस समय महाराज हैं कहा ?" सचिव ने फिर हाथ उठाकर कहा– जहाँ सभी सुन्दर रहस्य छिपे हुए हैं, जहाँ योगियों का भी गमन नहीं हो सकता ।" इसके उत्तर में शत्रुग्न ने कहा "परन्तु हम तो उनके पुत्र हैं, हमें उनका मार्ग दिखलाओ, जिससे हमें उनसे भेंट करने का सुअवसर प्राप्त हो सके । "सचिव ने कहा 'हे शत्रुघ्न वह मार्ग बड़ा दुर्गम है परन्तु है सत्य । तुम भी उनकी भाँति उस कठिन सत्य के मार्ग पर चलकर उनके सच्चे पुत्र सिद्ध हो सको ।

आगया शुद्धान्त भरत कुम.र ! (पृ० १६२-१६३)

शब्दार्थ—शुद्धान=अन्तःपुर ।

भावार्थ—इतने में अन्तःपुर का द्वार आगया। भरत अभी उसमें पूर्ण रूप से प्रवेश भी नहीं कर पाए थे। उनका एक पैर देहली के भीतर था कि वे सुकुमार भरत हा पिता कह कर सहसा चिहुँक उठे और चीत्कार करते हुए गिर पड़े।

कैकेयी बढ़ मुँह ढाँप (पृ० १६३)

शब्दार्थ—गिरा=वाणी।

भावार्थ—कैकेयी तब मंथरा के साथ आगे बढ़ी और शीघ्र ही अपना हाथ भरत पर फेरने लगी। शत्रुघ्न पूर्णतः मौन बन ठगे से रह गए। उनके हृदय की पीड़ा ने जैसे उनके गले को रुद्ध बना दिया। देर बाद उनके मुँह से शब्द निकल पाए और उन्होंने कैकेयी से पूछा "हे माता आज हम सबको सहारा देने वाले पिताजी कहाँ चले गए ?" क्या पिता से शून्य घर देखने के लिए हम अयोध्या में बुलाए गए थे। कांपकर गिरते हुए से अन्त में शत्रुघ्न मुँह ढाँप कर नीचे बैठ गए।

"वत्स, स्वामी तो अशेष अलीक।" (पृ० १६३)

शब्दार्थ—अशेष=समाप्त। अलीक=मिथ्या।

भावार्थ—कैकेयी ने अपने पुत्रों को सात्वना प्रदान करते हुए कहा– हे पुत्र स्वामी तो उस स्थान को चले गए जहां से पुनः लौटना नहीं होता।" शत्रुघ्न ने कहा क्या हमसे भी प्रिय उनके लिए कोई और था जिसके लिए वे उस लोक को गए ? हाय ! हृदय तेरी आशंका सत्य सिद्ध हुई। सारी आशा मिथ्या रूप लेकर समाप्त होगई।

"मैं स्वयं पति घातिनी हमारे राम ?" (पृ० १६४)

शब्दार्थ—जीव=प्राणी मात्र। अमर=अनश्वर। मृत्यु कर गत = मृत्यु के वश में। उपघात=विश्वासघात, धोका।

भावार्थ—"हे पुत्र पति की घातिनी मैं स्वयं हूँ। जीवन और मृत्यु द्वारा प्राणीमात्र का सौदा किया जाता है।" कैकेयी की बात सुनकर शत्रुघ्न ने कहा

में चुभ उठते हैं, उस दुष्टता का दड क्या साधारण हो सकता है ? इस अपराध के प्रायश्चित के लिए घास फूस की अग्नि में जलना भी कमल की कोमल पखुड़ियों पर शयन करने के समान है। हम सभी को मार कर हे सर्पिणी तू जीवित रह। तेरे अपराध का उचित न्याय करना बड़ा कठिन है। मृत्यु दड भी तुझे उचित नहीं क्योंकि इससे तो तू सहज में ही सब कष्टों से मुक्ति पा जायगी। इसलिऐ तू जीवित रह कर ही अपने किए का परिणाम भोग।

तेरा यह भूखा पुत्र-प्रेम धन्य है, जिसने पति के शरीर को भूनकर अपना आहार बनाया। अब मुझे भी अपना भोजन बनाकर अपनी क्षुधा तृप्त कर जिससे कि तेरे अहकारपूर्ण नीच विचार आनदित होकर नाच उठें।

"चुप अरे चुप यहीं वात्सल्य।" (पृ० १९७)

शब्दार्थ—प्रमाद=भूल। ऋणसयुक्त=कैकेयी के ऋणरूप वरदानो सहित। वर=वरदान। शल्य=चुभना।

भावार्थ—अरे भरत शात रहो, निसदेह अभी तू कैकेयी के प्रेम को नहीं जान पाया। वही स्नेह, हे पुत्र तुझमें भरा हुआ है जिसके कारण तू प्राप्त किए हुए राज्य पद को भी छोड़ रहा है। हे पुत्र चाहे सब मेरी निंदा करें परन्तु तू मेरी निंदा करने की भूल मत कर। महाराज तो जीवन्मुक्त हो गए थे। जीवित अवस्था में ही सासारिक बधनों से छुटकारा पा गए थे। मेरे वरदानो का ऋण चुकाए बिना उनका स्वर्ग वासी होना उचित भी नहीं था। इसलिय मैंने अपने दोनों प्राप्य वरदान उनसे माँग लिए। सभी सभा जन इसे उचित ही मानेगें। मैंने जो वरदान माँगे हैं, वे ही सब के हृदय को चुभ रहे हैं। परन्तु इन वरदानों के मागने में भी तो वात्सल्य प्रेम निहित है।

"सब बचाती हैं वह भूप।" (पृ० १९७ १९८)

शब्दार्थ—डिठौना=काली बिन्दी जो बालकों के मस्तक पर लगाई जाती है जिससे कि उन्हे नजर न लगे। नील=कालिमा। खर =गधा। वाहन= सवारी।

भावार्थ—भरत ने कहा "अपने पुत्रों के शरीर को लोगों की दुष्ट नजरों से बचाने के लिए माताएँ केवल डिठौना मात्र देती हैं, परन्तु जिस

वात्सल्य प्रेम पर तू गर्व कर रही है, उसने तो मेरा सारा मुख ही कालिमा से पोत दिया। हे माँ, एक गधा मगा यही सवारी मेरे लिए सर्वथा उपयुक्त है। जिससे कि सब देखलें कि यही कैकेयी के हाथों बनाया हुआ राजा है।

राज्य, क्यों माँ जिसे अभिशाप! (पृ० १६८)

शब्दार्थ—ध्रुव धर्म=अटल धर्म। विरूद=यश। अतिताप=अत्यन्त दुखी।

भावार्थ- हे माँ क्या केवल मात्र राज्य ही मनुष्य के लिए सब कुछ है। न्याय, धर्म और स्नेह क्या ये सब त्याग देने योग्य हैं? आज से सभी भरत से डरते रहें, क्योंकि राजमाता कैकेयी ने यह नीति निर्धारित करदी है कि सभी स्थानों पर स्वार्थ ही अटल धर्म है। हे माँ यह ठीक ही है न, कि स्वार्थ के सम्मुख भाई, पिता और अन्य जन सभी तुच्छ हैं। आज मैं कौशल नरेश बन कर धन्य हूं। मेरा यश गाओ, आज मेरे समान और कौन होगा? हाय मुझ जैसा पतित और अभागा कौन है जिसके लिए वरदान भी अभिशाप बन गया है।

तू अडी थी विनियोग। (पृ० १६८-१६६)

शब्दार्थ—तनय = पुत्र। क्षात्र=क्षत्रिय। चाप=धनुष। कोटि=धनुष का सिरा। विनियोग=प्रयोग।

भावार्थ—यदि तुझे राज्य का ही हठ था तो तेरा यह पुत्र उसके लिए क्या असमर्थ था। वह अपनी सामर्थ्य से कहीं का भी राज्य प्राप्त कर सकता था। इस पृथ्वी पर केवल मात्र कौशल का ही तो राज्य नहीं है, अन्य राज्य भी हैं जिन्हें मै तेरे लिए अपने अधीन बना सकता था। क्षत्रिय पुरुष तो सर्वत्र ही राज्य छत्र का अधिकारी है। वह अपने बल पौरुष से किसी भी देश के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हो सकता है। क्षत्रियों के धनुष के सिरे के समक्ष इस संसार में ऐसा कौन सा कठिन लक्ष्य है जो न वेधा जा सके।

हे माँ जीवन के कौन से ऐसे सुख थे जो तुझे प्राप्त न थे। एक मैं ही तो तेरा पुत्र न था, हम चारों ही तेरे पुत्र थे। जो राज्य सुख तेने मुझे प्रदान किया है वह तो बलिदान के लिए प्रस्तुत पुरुष के भोग के समान है। जिस प्रकार बलि पुरुष सांसारिक सुखो को भोगते हुए क्षण भर के लिए भी यह

नहीं भूल सकता कि उसे कुछ समय उपरात बलिदान होना है उसी प्रकार राज्य सुख भोगते हुए भी राज्य का अधिपति बलिदान के समान उसके कठोर उत्तरदायित्व को नहीं भूल सकता। अपने प्राणों का बलिदान ही तो इस राज्य सुख का मूल्य है।

स्वार्थिनी तू   प्रथम ही आप। (पृ० १९९)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे स्वाभिनी तुझसे किसी भी प्रकार के त्याग की आशा व्यर्थ है। राज्य में ही घर के सदस्य द्वारा आग लग गई। जो लोक के कल्याण में अपनी निद्रा को त्याग कर रत रहता है, उसे हा स्वप्न में भी सब स्मरण करते हैं। परन्तु तू दूसरे का अहित करके अमृत पान करना चाहती है।

हाय मा पहिले तो कभी तेरी ऐसी बुद्धि नहीं थी। तरे हृदय की वह पवित्रता कहाँ चली गई? क्या तुझे ज्ञात नहीं कि दूसरों के छलने से पूर्व ही हम छले जाते हैं।

सूर्य कुल में यह   इतनी सोच! (पृ० १९९-२००)

शब्दार्थ—चद्र मणिमय हार=चन्द्रमा सहित तारों का मणिमय हार।

भावार्थ—तेरे इस पाप से सूर्य कुल में कितना कठोर कलक लगा है। तनिक आकाश की ओर तो देख। तेरी इस भयकर अनीति को देखकर आकाश के नक्षत्र भयभीत होकर कहीं नीचे नहीं गिर पड़ें। हाय, तेरे इस पाप से भरत के जीवन का सारा उत्साह नष्ट होगया। ये आकाश के मणिमाला के समान चन्द्र और तारे उसे जलते हुए अंगारे के समान प्रतीत हो रहे हैं। भरत के हृदय के भावों को भला कौन समझेगा। कौन उस पर विश्वास करेगा जब कि उसकी स्वय की माँ ने ऐसा प्रस्ताव किया है। हे माँ, ऐसा अनीति भरा कार्य करते हुए तनिक भी सकोच नहीं हुआ। तनिक अपने हृदय में यह तो विचार कि इस प्रकार तू मुझे जीवन प्रदान करने वाली बनी अथवा प्राण लेने वाली।

इष्ट तुझको   राजकुमार (पृ० २००)

शब्दार्थ—दृप्त=अहकार से पूर्ण। वेन=राजा अङ्ग का पुत्र जो माता के प्रभाव से बड़ा अत्याचारी था। जात=पुत्र।

भावार्थ—तुझे तो यह अहंकार से पूर्ण शासन की नीति ही इष्ट थी।

परन्तु मुझे तो लोक सेवा करना ही रुचिकर है। हे माँ तेरे लिए तो वेन के समान अत्याचारी पुत्र ही उपयुक्त था। तू तो मूर्ख भरत की माँ के रूप में प्रसिद्ध हुई। यह जीवन व्यर्थ है, यह संसार ही व्यर्थ है, यह कर राजकुमार भरत मौन होकर रोने लगे!

थे भरे घन-से धर्म राजद्रोह। (पृ० २००–२०१)

शब्दार्थ—सोदरवर्य=श्रेष्ठ सहोदर। भुजग=सर्प।

भावार्थ—अभी तक शत्रुघ्न जल से भरे हुए बादलो के समान बरसने की प्रतीक्षा में खड़े हुए थे, पर अब तो मानो वे बरस ही पड़े। उन्होने कहा "हे श्रेष्ठ सहोदर लक्ष्मण उस अवसर पर तुम कहाँ थे? आश्चर्य है कि तुम्हारे सामने यह सब कुछ होता रहा? सर्प के समान तुम्हारी वे विशाल भुजाएँ क्या उस समय कीलित हो गई थीं।

राज्य को यदि हम अपने भोग-विलास का साधन बना ले तो वह प्रजा के लिए दुखदायी रोग के समान बन जायगा। तब फिर मैं विद्रोही बनकर क्यो न कहूँ कि राज के प्रति द्रोह करना ही मेरा धर्म है।

विजय मे बल धर्म राजद्रोह। (पृ० २०१)

शब्दार्थ—छोह=ममता।

भावार्थ—क्षत्रियो के लिए तो राज्य विजय मे बल और गौरव की सिद्धि है। इसी से क्षत्रियो के धर्म और धन की वृद्धि है। राज्य मे उत्तरदायित्व का भार ही अधिक है। वह प्रजा की व्यवस्था करने वाला है। यदि वह राज्य किसी व्यक्ति विशेष के लोभ से अभिभूत बन जाए तो फिर ऐसे राज्य के विरुद्ध क्रांति का झण्डा उठाना ही उचित है। आज मेरे हृदय से ममता, विषमता और मोह के भाव दूर हो जाएँ ये मेरे मार्ग मे बाधक न बने, आज ऐसे राज्य के प्रति विद्रोह ही मेरा धर्म बन गया है। जिस राज्य की प्राप्ति उसके त्याग से भी कठिन है, यदि उसमे भी स्वार्थ का प्रवेश हो जाय तो ऐसे स्वार्थ पूर्ण राज्य के लिए मैं अपने हृदय से ममता के भावो का त्याग क्यो न कर दूँ? अतः राजद्रोह ही मेरा धर्म है।

दो अभीप्सित तुमने आप। (पृ० २०१–२०२)

शब्दार्थ—अभीप्सित = इच्छित, अभिलषित। अराजक भाव=राजद्रोह के विचार।

भावार्थ—कैकेयी को सम्बोधित करते हुए शत्रुघ्न बोला 'हे माँ मेरे लिए चाहे जो अपने इच्छित दण्ड का विधान करो, परन्तु मैं तुम्हारे राज्य के शासन भार को स्वीकार नहीं कर सकता। न्याय ही मेरा आधार है। जिस राज्य भक्ति को सब अपनी शक्ति समझते हैं उसी से मैं विरक्त बन गया हूँ। राज्यक्रान्ति का जो विचार औरों के लिए पाप हैं, हे माँ वही तुमने मेरे लिए धर्म बना दिया है।

राज्य पद ही कुल भुक्त।" (पृ० २०२)

शब्दार्थ—दर्प = झूठा अहंकार। दम्भ=पाखंड। विगत=समाप्त। भुक्त= भोगा हुआ।

भावार्थ—यह राज्य पद ही क्यों न नष्ट कर दिया जाए, जिससे कि लोभ और मद की जड़ ही कट जाय। राज्य पद के न रहने पर फिर कोई झूठा घमण्ड और पाखंड न कर सकेगा। इस प्रकार संसार में एक नए युग का आरम्भ हो। समस्त नर-पति समाप्त हो जाए। केवल नर समुदाय रहे। जो जिस पद के उपयुक्त हो वह उसी पर नियुक्त किया जाय। सभी लोग एक ही परिवार के सदस्यों के समान जीवन को व्यतीत करें।

"अनुज, उस लोक सेवक मात्र।" (पृ० २०२–२०३)

शब्दार्थ—राजे=शोभायमान। रघु, भगीरथ, सगर=राम के पूर्वज। किरीट=मुकुट। पाप कर=पाप पूर्ण हाथ। नियत शाशक = नियुक्त किया गया शासक।

भावार्थ—भरत ने कहा 'हे अनुज उस राज्य का भले ही अन्त हो जाय, जिस पर कि कैकेयी के दाँत गड़े हुए हैं। परन्तु राम का राज्य विश्व की सभी अव्यवस्था और विद्रोहों को समाप्त कर शोभायमान हो।

कैकेयी का मैं ढीट पुत्र भरत यदि रघु भगीरथ और सगर द्वारा धारण किए राज्य मुकुट का स्पर्श करू तो यह मेरा पापी हाथ गल जाय अथवा वह मुकुट ही मेरे पापी हाथा के अनुताप से जल जाय।

हे तात राज्य किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। यह तो उन्हीं की सुख और शांति के लिए है जो कि इसके लिए अपना बलिदान करते हैं। उनके द्वारा नियुक्त किया गया शासक तो वास्तव में लोक सेवक मात्र है।

"आर्य, छाती हृदय पर मुष्टि। (पृ० २०३)

शब्दार्थ—दुर दृष्ट=दुर्भाग्य। मुष्टि=मुक्का।

भावार्थ—शत्रुघ्न व्यथा भरे स्वर में बोले "हे आर्य, आज तो दुख से हृदय फटा जा रहा है। राज्य अब हमारे लिए व्यवसाय बन गया है। अपना धर्म बेचकर हम उसे प्राप्त करना चाहते हैं। हमारे अनुपम सूर्य वंश में आज यह कैसा अनुचित कर्म हो रहा है! जहाँ भाई का निष्कासन और पिता की हत्या ये दो उपद्रव हो चुके हैं, वहीं माता कैकेयी का वध और गृह का विनाश ये दो उत्पात और हों, बस मेरे हृदय की यही अभिलाषा है जिससे कि हे दुर्भाग्य तू पूर्ण रूप से संतुष्ट बन सके। यह कहकर उस वीर शत्रुघ्न ने अपनी छाती पर मुक्का मारा।

उठ भरत ने डिडकार। (पृ० २०३–२०४)

शब्दार्थ—निष्कृति=मुक्ति। अजिर=आँगन। अफर=तृप्त होना। वत्स=बछड़े। हम्भाकर=रंभाकर। डिडकार उठे=डकराने लगे, जोर-जोर से रुदन करने लगे।

भावार्थ—भरत ने उठकर शीघ्र ही शत्रुघ्न का हाथ पकड लिया और वे दुख भरे स्वर में बोले "हे तात तुम किसे मारोगे, कैकेयी के लिए तो मृत्यु ही उसकी मुक्ति है। हे वीर इसे तो इसके भाग्य पर ही छोड दो। हे धीर आर्य रामचन्द्र जी की माता की ओर चलें। फिर शीघ्र ही दोनों के कंठों से 'हे मा' वाणी निकल कर राज्य प्रांगण में गूंज उठी। वह ऐसी प्रतीत हुई जैसे दुख ने तृप्त होकर डकार ली हो। दोनों पुत्र बछड़ों के समान डिडकारते हुए जोर जोर से रुदन करने लगे।

सहन कर मानो पदों की धूल।" (पृ० २०४)

शब्दार्थ—सस्फोट=जोर की आवाज सहित। आप्त=उचित। राज्य हारी=राज्य का हरण करने वाला।

भावार्थ—भरत के शब्द ऐसे जान पड़ते थे मानो गहन व्यथा की चोट

"वत्स, धीरे करूंगी व्यक्त।" (पृ० २०७)

शब्दार्थ—अनिलादित्य=वायु और सूर्य।

भावार्थ—हे पुत्र धीरे बोलो, स्वामी बड़ी कठिनता के साथ, दारुण कथा सहते हुए सो सके हैं। कहीं उनकी शाति भग न हो जावे। तुम धैर्य पूर्वक धर्म का पालन करो। ध्रुव, पृथ्वी, वायु और सूर्य सभी इस बात के साक्षी हैं कि मैं सदैव ही महाराजा दशरथ की सगिनी रही हूँ। अत पुत्र मैं शीघ्र ही उनके पास पहुँच कर तुम्हारे अभिन्न भावों को उनके सामने व्यक्त करूंगी।

"हाय मत मारो फल भोग्य।" (पृ० २०७-२०८)

शब्दार्थ—लोकापवाद=लोक निंदा।

भावार्थ—माता कौशल्या के मुह से सती होने की बात सुनकर भरत अत्यन्त अधीर हो गए और उन्होंने व्याकुल स्वर में कहा "हाय, मुझे इस भाँति मत मारो। हे माँ तुम जीवित रहो जिससे कि मैं भी किसी प्रकार जीवित रह सकूं। मैं अपने दुर्भाग्य का फल भोगने और लोक का तिरस्कार सहन करने के लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जीवित रह रहा हूँ। लोक निंदा के लिए जीवित रहने से क्या मेरा प्रायश्चित तनिक भर पूरा नहीं होगा। परन्तु यदि तुम सभी मुझे इस प्रकार त्याग दोगी तब फिर मैं भी सब प्रकार से असहाय होकर क्यों न मर जाऊं। हे मेरे भाग्य के भोगे जाने वाले परिणाम तू मुझे रामचन्द्र जी को मुह दिखाने योग्य तो रहने दे।

शोक से अति निज इष्ट (पृ० २०८)

शब्दार्थ—पास=स्पर्श कर। वश अरिष्ट=वश का अनिष्ट।

भावार्थ—शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत यह कह कर सज्ञा शून्य हो गए। सुमित्रा और कौशल्या भयभीत होकर काँप उठी, मानो उनके हृदय पर साप लोट गया हो। हाय करती हुई वे, हवा करके, पानी के छींटे देकर, स्पर्श कर, और पुकार के उनका उपचार करने लगीं। दोनों भाई होश में आए और उन्होंने अपने नेत्र खोले। परन्तु ये मुँह से कुछ भी नहीं बोल सके। पुत्र भरत के हठ और वश के अनिष्ट को देखकर माताएँ अपनी इच्छा को व्यक्त न कर सकीं।

आगए तब तक   सूर्यकुल गुरु-गर्व !" (पृ० २०८)

शब्दार्थ—वरिष्ट=श्रेष्ठ। प्रणय=प्रेम।

भावार्थ—इतने में तप और व्रत मे दृढ़ राजकुल के गुरु श्रेष्ठ वशिष्ठ जी आगए। उनके चरणो का आश्रय पाकर दोनो भाई उनमें गिर कर रोने लगे। भरत ने कहा—हे गुरुदेव क्या सचमुच इन घटनाओं का होना अनिवर्य था ? क्या वे टाली नहीं जा सकती थीं ?" गुरुदेव ने उत्तर में कहा—पुत्र इस प्रकार तो लोक शिक्षण का अनुपम कार्य सपन्न हुआ है। ससार में महान आदर्श की स्थापना हुई है। जो कुछ हुआ है वह तो प्रेम का त्यौहार है। जिसमें त्याग का सचय है। आज सचमुच मेरा सूर्य कुल के गुरु होने का गौरव सफल हुआ है।

"किन्तु मुझ पर   नय नीति (पृ० २०६)

शब्दार्थ—ओघ=प्रवाह, समूह। पितर प्रीति=पितृ स्नेह।

भावार्थ—गुरु वशिष्ठ की बात सुन कर भरत बोले—परन्तु आज तो मैं सबके लिए घृणा का पात्र बना हुआ हूँ। सारा ससार मानो मुझ पर घृणा की वर्षा कर रहा हो। हे देव मैं किस प्रकार और किधर अपनी दृष्टि उठाऊँ। वशिष्ट जी ने भरत को सात्वना प्रदान करते हुए कहा, हे भरत इस प्रकार व्याकुल मत बनो। अपने पिता की ओर दृष्टि पात करो। शव के समान अकम्प और कठोर उनके सत्य पालन को देखो। उनके प्रेम की अखण्ड प्रवाह की ओर निहारो जिसमें वे स्वय सदा के लिए निमग्न हो गए और फिर अपने भ्रात श्रेष्ठ रामचन्द्र जी की ओर देखो, जिनके त्याग की कोई सीमा ही नहीं है। उनका पवित्र पितृ-स्नेह, अपने कुल की मर्यादा पालन, उनका विनय और नीति धर्म सभी कुछ अतुलनीय है।

और उस अग्रज   का भोर !" (पृ० २०६-२१०)

शब्दार्थ—लाक्ष्मण्य=लक्ष्मण का कार्य। हिम वाष्प=ओस कण। भाराक्रात=भार से लदा हुआ।

भावार्थ—औरअपनी भाभी सीता की ओर बार बार देखो, जिसके लिए कि वन के गहन कंटक और शूल भी गृह वाटिका के फूल बन गए। वन भी जिसे गृह के समान सुखदायी बन गया। अथवा तुम अपने छोटे भाई लक्ष्मण

की ओर देखो, आह ! उस लक्ष्मण का कार्य कितना विकट है। उनका व्रत कितना कठिन और भक्ति कितनी दृढ है। एक रामचन्द्र जी में ही जैसे सबका अटल अनुराग समा गया हो। इस शत्रुघ्न की ओर देखो जो कि शोक में डूबा जा रहा है। जो कि आज ओस कणों के भार से बोझिल फूल की भाति सबसे अधिक विह्वल बना हुआ है। हे पुत्र अपनी माताओं की ओर दृष्टिपात करो, जिनकी सुख रूपी रात्रि का अन्त होगया।

"हाय भगवन !" निज नीड़ !" (पृ० २१०)

शब्दार्थ—नीड़=घोंसला।

भावार्थ—राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात कौशल्या और सुमित्रा आदि रानिया अपने जीवन की निस्सारता को प्रगट करती हुई कहती हैं—हे भगवन् हमारा नाम किस लिए लिया जा रहा है ? अब इस ससार में हमारा कार्य ही क्या है ? इस पृथ्वी पर अब हम केवल भार बन कर रह रही हैं। ससार को क्या पड़ी जो हमारे व्यथा भरे जीवन के करुण क्रदन को सुने ? हम जैसे अनाथ जनों का इस ससार में जीवित रहना उचित नहीं है। अब इस जीव रूपी पक्षी का अपने घोंसले के लिए उड़ जाना ही उचित है, अर्थात् अब तो मृत्यु ही हमें श्रेयस्कर है।

"देवियों, ऐसा दिन है देवि !" (पृ० २१०-२११)

शब्दार्थ—निर्गत=निकला हुआ। राग=आसक्ति, मोह। शुचिता=पवित्रता। दग्ध=जलना। काम=वासनाए।

भावार्थ—रानियों की ओर से मृत्यु का प्रस्ताव सुनकर वशिष्ठ जी ने कहा- हे देवियों वैधव्य के विषय में जैसे तुम सोच रही हो, वह वैसा नहीं। ससार में वैधव्य के समान महान वस्तु अन्य है ही नहीं। वैधव्य के रूप में यह आसक्ति रहित प्रेम, और पवित्रता से परिपूर्ण अमर सुहाग धन्य है। तुम्हारा यह वैधव्य पूर्ण जीवन तो अग्निमय होगया है, जिसमें स्वय ही समस्त वासनाए भस्म हो गई हैं। पति के साथ सती होने के धर्म से कहीं बढकर तो वैधव्य पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए आयु भर पति का स्मरण ही श्रेष्ठ है। तुम अपने इसी महान व्रत का पालन करते हुए जीवित रहो जिससे कि धर्म की शक्ति सदैव विकास को प्राप्त होती रहे। हे देवि, एक दिन मर जाना तो

बहुत सरल है परन्तु कष्ट और दुख सहन करते हुए जीना बहुत कठिन है।

भरत, देखो तुमने त्याज्य (पृ० २११)

शब्दार्थ—कृत यत्न=प्रयत्न शील।

भावार्थ—तदनन्तर भरत को सम्बोधित करते हुए वशिष्ठ जी ने कहा—हे भरत तुम स्वय अपनी ओर देखो। अपने हृदय रूपी सागर की उच्च भावना रूपी हिलोरो पर दृष्टि पात करो। वह तुम्हारा हृदय सागर अगणित गुण रत्नो से भरा हुआ है। देवता गण भी उन गुण रत्नो को पाने के लिए प्रयत्न शील हैं। तुम्हारे जैसे उच्च भाव उनके लिए भी दुर्लभ हैं। अयोध्या का जन समाज अब वास्तविकता को ज्ञात कर भरत के पवित्र भावो का अमृत पान करे। कैकेयी के भाग में तो उसके पुत्र-मोह रूपी विष का पान था।

हे पुत्र मेरी ओर देखो, इस ससार से निर्मोही होकर भी यह सब कुछ देखकर मैं गद्‌गद् होरहा हूँ। तुम रो रहे हो, परन्तु अरे विनय की मूर्ति देवता गण भी तुम्हारी प्रशसा के गीत गा रहे हैं। अपने आप प्राप्त हुआ यह राज्य भी तुमने तिनके के समान त्याग दिना।

मति यहाँ शत्रुघ्न पाओ त्राण। (पृ० २११-२१२)

शब्दार्थ -सुकृति=पुण्य कार्य करने वाला, भाग्यवान। अपत्य=पुत्र। क्रमागत=परम्परा से चली आई। गोत्र=वश।

भावार्थ—हे शत्रुघ्न तुम्हें देख कर तो मेरी बुद्धि भी जड़ हो गई है। मैं तो यह निश्चय भी नहीं कर पा रहा कि तुम और लक्ष्मण में से कौन अधिक भाग्यवान है। हे पुत्र भरत धैर्य धारणकर अब उठो। वीरपुरुष क्या इस प्रकार साहस छोड़कर बैठते हैं। जिस प्रकार रण क्षेत्र के बीच वीर पुरुष शत्रु के बाणों को सहन करते हैं उसी प्रकार तुम इस व्यथा को सहन करो। यह ससार तो निरन्तर कर्म शील जीवन व्यतीत करने की कर्म भूमि है। हे पुत्र पिता की अन्त्येष्टि क्रिया पूर्ण करके तुम भी परम्परा से चली आई और वश के जीवन सत्य की रक्षा का पालन करो।

सच्चा जीवन तो कार्य करते रहना है। कार्य से थककर अवकाश प्राप्त करना ही मृत्यु है। यह बात मैं स्वय तुम्हारा कुल आचार्य कह रहा हूँ। तुम

में अपने पिता के ही प्राण समाए हुए हैं, इसलिए हे वीर शोक को त्याग धैर्य धारण करो।

हम रुकें क्यों, कृपा की कोर।" (पृ० २१२)

शब्दार्थ—आँस=सवेदना। कुशकाँस=घास फूस।

भावार्थ—जब तक सास चल रही है, हमारे शरीर में प्राण शेष हैं त तक कर्म से विमुख होना, अपनी जीवन गति को अवरुद्ध बनाना उचित नहीं भाग्य भी हमारी कार्य शीलता में बाधक बनने के स्थान पर हमें सात्वना प्रदान करे। बाधाएँ तो जीवन के मार्ग में घास फूस के समान हैं। उन्हें देखकर कहीं हमारे हृदय में शोक की फास न पड़ जाए। हे पुत्र जीवन के कर्म-सगीत को सुन कर तो काल भी ताल देकर नाचता है। अर्थात् कर्म शील जीवन के वश मे तो मृत्यु भी होती है। जो प्रलय काल में भी विनाश के अवसर पर भी अस्तित्व को नहीं खोता उसे बनाए रखता है उसे ही सद्‌गति प्राप्त होती है। अत' आज अपने पैरों पर खड़े होकर स्वय अपने कधों पर अपने उत्तरदायित्व को वहन करो जिससे तुम्हें देखकर तुम्हारे परिवार और अयोध्या समजि को धैर्य मिले। हे वीर, उस प्रजा की ओर तो देखो जो तुम्हारे तनिक कृपा भाव के लिए अत्यन्त लालायित है।

सांत्वना में शोक भरे हिम अस्त्र। (पृ० २१३)

शब्दार्थ—ताम्रचूड़=मुरगा। अरुण पूर्व=सूर्योदय से पूर्व। सित-शून्य = सफेद और सूना। अम्बर=वस्त्र, आकाश। रजन=श्रृगार। अजस्र=निरन्तर। हिम-अस्र=बर्फ के आँसू, ओस की बूदें।

भावार्थ—इस प्रकार शोक से व्याकुल हृदयों को सात्वना प्रदान करते हुए वह रात समाप्त हो गई। धीरे धीरे प्रभात उदय हुआ। दूर से मुरगे ने गम्भीर स्वर में कहा—काल निष्ठुर होकर भी झरने के जल की भाति 'पति-शील है। अर्थात् दुख का समय स्थिर नहीं रहता, बदलता रहता है।

सूर्य उदय होने से पूर्व ही प्रकृति ने तारे रूपी हार को उतार कर मलिन श्वेत और सूने वस्त्र को धारण किया। वह विधवा के समान समस्त श्रृगार से रहित होकर दीन और विपन्न बन निरन्तर ओसो की बूदो के रूप में आँसू बहा रही थी।

विशेष—यहाँ कवि ने सागरूपक द्वारा बड़ी कुशलता के साथ प्रभात-कालीन प्रकृति को विधवा के रूप में चित्रित किया है।

२आज नरपति अपना लक्ष। (पृ० २१२-२१३)

शब्दार्थ—लोक पारावार=जनसमूह रूपी समुद्र। दुंदुभि=नगाड़ा। सुकृतियों=पुण्यात्माओं। भवभुक्ति=सांसारिक ऐश्वर्यों का उपभोग।

भावार्थ—आज नृपति की अन्त्येष्टि क्रिया के संस्कार का महान आयोजन है। जन-समूह के समुद्र को आज उमड़ने दो। महायात्रा के इस अवसर पर असंख्य पताकाओं को उड़ने दो। दुंदुभिओं का घोर नाद होने दो जिससे कि सब को यह सूचना मिल जाय कि पुण्यात्मा अपने जीवन में सांसारिक ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् शुभ मुक्ति को पश्चात् होते हैं। जितने भी अश्व, हाथी, रथ आदि हों वे सभी सुसज्जित किए जाएँ, क्योंकि आज नृपति की स्वर्गलोक यात्रा का महान पर्व है। महाराज को आज हम अन्तिम रूप से विदा कर रहे हैं, इसलिए इस विदा यात्रा में परिवार के सभी लोग, अयोध्या का सारा जन-समाज, तथा सभी सेनादल सम्मिलित हों। सूत, मागध और वन्दिजन आज निर्भय होकर जीवन के विजय गीत गाएँ। क्योंकि महाराजा दशरथ ने मृत्यु के पक्ष को भी तुच्छ ठहराकर अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

राजगृह की वह्नि भव्य-भद्र स्कन्ध। (पृ० २१४)

शब्दार्थ—राजगृह=राजा के रहने का प्रासाद। वह्नि=अग्नि। होम=यज्ञ। शिविका=पालकी। वहन=उठाकर चलना। भद्र=श्रेष्ठ, वीरभद्र, शिवजी के प्रधान गण। स्कंध=कंधे, शिवपुत्र कार्तिकेय।

भावार्थ—राजगृह की अग्नि को बाहर एकत्रित कर ब्राह्मण लोग आहुतियाँ डालकर होम करने लगे। कुलपुरोहित तथा कुलगुरु भरत सहित मिलकर सभी कार्य करने लगे। राजा दशरथ का शव शिव की समाधि के के समान प्रतीत होता था। शवयान शिवालय के समान था और जहाँ तक उसको उठाने का प्रश्न था, उसे शिवपुत्र कार्तिकेय और शिवजी के प्रधान गण वीरभद्र के समान भरत के उच्च और श्रेष्ठ कन्धे उठाए हुए थे।

बज रहे थे धन, रत्न। (पृ० २१४–२१५)

शब्दार्थ—झाँझ झालर=वाद्ययन्त्र विशेष। वाहनों=सवारियों।

भावार्थ—शव यात्रा में झाँझ, झालर और शख बज रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे नृपति का जयघोष असख्य पखों को प्राप्त कर चारों ओर उड़ रहा हो। जन समुदाय भाव-विभोर होकर रो भी रहे थे और गा भी रहे थे। उनकी आँखों से केवल मात्र आँसू ही बरस रहे थे। मार्ग के धूल कण पहिले ही शान्त हो गए थे अर्थात् धूल नहीं उड़ रही थी, नेत्रों के जल से वह पहिले ही दब गई थी। दोनों ओर मनुष्यों की विशाल पंक्तियाँ बनी हुई थीं, जिसके बीच में पाँवड़ो पर शवयान चला जा रहा था। आज श्रेष्ठजन पैदल ही चले जा रहे थे। सवारियों पर वे ही बैंटे थे जो स्वय नृप के पूज्य थे। अन्य लोग भक्ति पूर्वक बड़े प्रयत्न के उपरान्त नृपति के शव का दर्शन कर रहे थे और श्रद्धा सहित वस्त्र, धन और रत्न लुटा रहे थे।

आ गया सब कल विलाप विलोल। (पृ० २१५)

शब्दार्थ—वेणी=चोटी। विलोल=चचल।

भावार्थ—सारा समुदाय सरयू के किनारे आ गया। सरयू का जल भी करुणा से भाव विभोर हो रहा था। स्वय नदी चचल लहरों के रूप में अपने केश खोलकर रुदन कर रही थी।

अगरू-चन्दन सुविशाल। (पृ० २,५–२१६)

- शब्दार्थ—सोमगान=वेदमन्त्र। लघु घन=छोटा बादल।

भावार्थ—अगरु और चन्दन की सुगन्धित चिता थी। उस चिता की शैया पर सयमित तेज से पूर्ण राजा दशरथ का शव सोया हुआ था। वे ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे शरद् का बादल पृथ्वी को सरस बनाते हुए एकांत में बरस कर क्षितिज पर स्थित हो गया हो। (यहाँ राजा दशरथ की शरद् के शात घना से उपमा बड़ी सुन्दर है। शरद्कालीन बिना गरजे हुए बादल एकात मे बरसकर पृथ्वी को सरस बनाते हैं। उसी प्रकार राजा दशरथ ने भी अपने जीवन काल में बिना किसी प्रदर्शन की भावना से अपने पुण्य कार्यों द्वारा पृथ्वी का हित साधन किया।)

इसके उपरात सभी ने नृपति के शव की प्रदक्षिणा की और प्रणाम करते

हुए जय जयकार किया। तदनन्तर वेद-मन्त्रो सहित यह पवित्र संस्कार सम्पन्न हुआ। चिता मे घी और कपूर बरस रहा था। इस अवसर पर सूर्य के सामने एक छोटा सा बादल आ गया, मानो अपने वंशज की अन्त्येष्टि क्रिया के शोक में सूर्य ने कुछ क्षण के लिए अपने को एक बादल की ओट मे कर लिया है। चिता की ज्वाला प्रज्वलित होकर तत्काल ही ऊपर उठीं। सरयू के जल मे उसकी विशाल झलक पड़ने लगी।

फिर प्रदक्षिणा कर को अनुपाय ? (पृ० २१६)

शब्दार्थ—अन्तर्धान=छिपना। अपवर्ग=मोक्ष। अनुपाय=असहाय।

भावार्थ—इसके बाद भरत ने पुनः हाथ जोड़कर चिता की प्रदक्षिणा की। वे अधीर हो उठे और धैर्य त्यागकर रोते हुए बोले "हे पिता यह मैं क्या देख रहा हूँ ? हे महाराज तुम कहाँ जा रहे हो ? हे देव रुको, इस प्रकार मेरी दृष्टि से अन्तर्धान मत बनो। आपके द्वारा माता कैकेयी को प्रदान किए गए वरदान मुझे नहीं चाहिए। इस दुष्ट भरत की प्रतीक्षा कर अपनी मृत्यु के मूल कारण को तो देख लेते। हे आर्य आज तो तुम इस लोक को छोड़कर परलोकवासी बन गए हो, फिर मेरे दुःख को कौन समझ सकता है ? हे पिता आप स्वर्ग ही क्या मोक्ष को प्राप्त करे, परन्तु इससे पूर्व मुझे यह बात बता जाएँ कि आर्य रामचन्द्रजी के आने पर उन्हें मैं असहाय, राज्य के साथ आपको कहाँ से प्रदान करूँगा ?

आज तुम मिले चिरवास ! (पृ० २१६–२१७)

शब्दार्थ—प्रश्नातीत=प्रश्न और उत्तर से परे। क्रम भोग्य=क्रमागत उपभोग किया जाने वाला, वंश परम्परा से प्राप्त भोग का अधिकार। वदान्य=उदार। प्रकृत=वास्तविक, स्वाभाविक।

भावार्थ—हे नर-श्रेष्ठ आज तुम प्रश्न और उत्तर से परे हो गए हो। अतः यह प्रजा का समुदाय ही नीतिपूर्ण बात बतलाए कि वंश परम्परा से प्राप्त किसी के भोग के अधिकार का हरण करने वाले के लिए क्या उचित दण्ड है ? आह, मेरी जय न बोलो। यह तो मेरे जीवन की हार है। जयनाद के बदले इस चिता के अङ्गार ही मेरे लिए उचित हैं। जिनके अभिषेक के लिए आप लालायित थे वे धीर, वीर, श्रेष्ठ और उदार आर्य रामचन्द्रजी

अष्टम सर्ग

चल, चपल कमल स्वदेश हमारा। (पृ० २२०)

शब्दार्थ—भाल-लिपि=भाग्यलेख ।

भावार्थ—हे चपल लेखनी चल, चलकर चित्रकूट के दर्शन करें। वहाँ प्रभु के चरण चिन्हों पर अपना मस्तक झुकाकर अपने भाग्य लेख को सफल बनाएँ। साकेत का समस्त समाज वहीं है। सर्वत्र हमारे साथ हमारा स्वदेश रहता है।

तरु तले विराजे ज्यों जागी। (पृ० २२०–२२१)

शब्दार्थ—धनुष की कोटि=धनुष का सिरा। बिरछे=वृक्ष। प्रणय प्राणा=प्रेम की मूर्त्ति।

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी शिला का सहारा लिए हुए पृथ्वी पर धनुष के सिरे को टेक कर के वृक्ष नीचे विराजमान थे। वे अटल अनुराग रखने वाले रामचन्द्रजी अपनी लक्ष्यसिद्धि के समान मूर्तिमान मायारूप स्वर्णकान्तिवाली, प्राणों से भी अधिक प्रिय अपनी पत्नी सीताजी को जो कि कुछ तिरछे होकर पर्णकुटी के पेड़ पौधों को सींच रही थीं, उसी प्रकार देख रहे थे जैसे योगी अपने सामने अलख ज्योति को देखता है।

अंचल पट मन भाया। (पृ० २२१–२२२)

शब्दार्थ—धज धारे=छबि धारण की। कलश पयोधर=स्तन रूपी कलश। बदन=मुख। भव भावन=संसार को भाने वाला। दुकूल=वस्त्र। कर=हाथ। पद=पैर। अनावृत=बिना ढके हुए। पत्र पुंज=पत्तों का समूह। कच = बाल। तक्षक=सर्प। अम्बुज=कमल। क्षोणी=पृथ्वी। मंजीर-मराल=पायल रूपी हंस। लङ्क=कमर। गाभा=कोंपल। सौधसदन=राजमहल। उटज=झोंपड़ियाँ।

भावार्थ—अंचल के किनारे को कमर में खोंस कर कछोटा मारे हुए

माता सीता ने आज नई शोभा धारण की थी। उनके पवित्र स्तनरूपी कलश छोटे छोटे अकुरो के लिए हित दायक थे। वे जैसे उन अकुरों को सींचने के लिए थे। इसीलिए ससार की श्रद्धा का पात्र उनका मगल प्रद मुख मातृत्व के सुख से युक्त था। वे दिव्य वस्त्र अपने शरीर पर इस प्रकार धारण किए हुए थी मानो वह उसके साथ ही उत्पन्न हुआ हो। उनके वस्त्र से बिना ढके हाथ, पैर और मुख, पत्तों के समूह में से अलग निकले फूलों के समान शोभायमान हो रहे थे। कधो को ढकते हुए उनके लम्बे केश इस प्रकार लहर रहे थे मानो सर्प उनकी रक्षा के लिए लटक रहे हों। पसीने की बूद से युक्त उनका मुख उसी प्रकार शोभायमान था जैसे ओस की बूदों से युक्त कमल का पुष्प। परन्तु उनकी पुलकित भुजाओ की समानता कटकित कमलनाल कैसे कर सकता था? उनके विशाल केशों के भार से एड़ियाँ भूमि मे धस जाती थीं। सभवतः एड़ियों की इसी दुर्बलता पर उनकी कोमल अगुलियाँ अपने नखों की ज्योति के बहाने हस पड़ती थीं। परन्तु सीताजी के पैर उठाने पर शरीर का भार उगलियो पर पड़ता था, तब उन लाल एडियों से भी मधुर हास्य प्रस्फुटित होता था। उनके जो चरण कमल पृथ्वी पर अपनी छाप अङ्कित करते चलते थे उनमे पायल रूपी हस मचल रहे थे। सीताजी की सुन्दर कमर उनके रुकने और झुकने पर लचक जाती थी परन्तु अपनी ही शोभा में छिप जाने के कारण वह टूटने से बच जाती थी। केतकी के कुसुम की नई कली के समान उनके शरीर का गौर वर्ण था। उनके सौंदर्य की आभा उनके शरीर की सुगधि के साथ मिलकर तरगित हो रही थी। भौंरो से सजी हुई, कल्पलता के समान प्रफुल्लित होती हुई सीताजी अपने मे भूलकर एक गीत गुनगुना रही थी— मेरे पिता (राजा जनक) ने अपने राजमहल में कुटिया बनाई थी, आज मेरी कुटिया में राजभवन के सभी सुख विद्यमान हैं।)

सम्राट स्वयं मन भाया। (पृ० २२२)

शब्दार्थ—प्राणेश=पति। आकर=खान, भडार।

भावार्थ—पतिदेव मेरे इस राजभवन के सम्राट हैं, देवर लक्ष्मण उनके मत्री हैं। मुनिजन आकर हमें आशीर्वाद देते हैं। यद्यपि यहां खानों के रूप

में धन का असीम भण्डार है, फिर भी धन का यहा कोई महत्व नहीं है। यहाँ हिरण और सिंह एक तट पर पानी पीते हैं। इस प्रकार इस राज्य में सभी परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हैं। सीता रानी तो यहाँ आकर लाभ में ही रहीं। मेरी कुटिया में राजभवन के सभी मनोरम सुख हैं।

क्या सुन्दर मन भाया। (पृ० २२३)

शब्दार्थ—पुञ्जाकृति=गुच्छे के आकार का। परिखा=खदक, खाई। प्रवाह की काया=जलधारा का शरीर।

भावार्थ—मेरी इस कुटिया पर छाया हुआ यह लताओं का वितान कितना सुन्दर है? भौंरों से गुंजित मेरा यह घना कुंज पुंज की आकृति के समान है। यहाँ पराग से युक्त पवन और निर्मल जल है। अत्यन्त दृढ़ और महान दुर्ग के समान मेरा यह चित्रकूट बना हुआ है। झरने इस दुर्ग के प्रहरी हैं, जो निरन्तर नाद करते हुए इस दुर्ग का पहरा देते हैं। मदाकिनी नदी का जल प्रवाह ही इस दुर्ग के चारों ओर की खाई है। मेरी कुटिया में राजभवन के मनोरम सुख हैं।

औरों के हाथों मन भाया। (पृ० २२३)

शब्दार्थ—श्रमवारि विन्दु=पसीने की बूंदें। शुक्ति=सीपी। व्यजन=पखा।

भावार्थ—मै यहाँ औरों के आश्रय पर पलकर परावलम्बी जीवन व्यतीत नहीं करती अपितु अपने पैरों पर आप खड़ी होकर स्वावलम्बन और आत्म निर्भरता से पूर्ण जीवन बिताती हूँ। मेरे स्वास्थ्य रूपी सीपी में परिश्रम के कारण उत्पन्न पसीने की बूंदों से सफलता के मोती फलते हैं। अर्थात् मैं परिश्रम द्वारा स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करती हूँ। अपने अंचल से मै स्वय ही अपनी हवा कर लेती हूँ। शरीर रूपी इस लता की सफलता रूप वास्तविक फल का स्वाद तो मैंने आज ही पाया है, जीवन का वास्तविक आनन्द मुझे आज ही प्राप्त हुआ है। मेरी कुटिया में राजभवन के सभी मनोरथ सुख विद्यमान हैं।

जिनसे ये प्रणायी मन भाया। (पृ० २२३)

शब्दार्थ—प्रणयी=प्रेमी। द्रव्य=वस्तु।

भावार्थ—जब देव (श्रीरामचन्द्रजी) अथवा देवर साथ मे नित्य दो

एक नवीन वस्तुएँ लेकर बन से घूम फिर कर लौटते हैं तो उन्हें देखकर ये स्नेही प्राण आनन्द से भर उठते हैं। नेत्र जी भर कर उन्हे देखकर तृप्त होते हैं। उन लाए हुए पदार्थों का वर्णन ही हास परिहास का कारण बनता है। मेरी कुटिया मे राजभवन के सभी मनोरम सुख हैं।

१५८ किसलय कर मन भाया। (पृ० २२४)

शब्दार्थ—किसलय कर=नवीन कोपलो रूपी हाथ। मुक्ता=मोती।

भावार्थ—हिलती हुई नव कोंपले ऐसी प्रतीत होती हैं मानो हाथ उठा कर स्वागत कर रही हो। हृदय के मधुर मनोभावों के समान फूल खिला करते हैं। वृक्षों की डालियों से नित्य नए फल प्राप्त होते हैं। तृण तृण पर ओस की बूँदें मोतियो के समान झिलमिलाती हैं। इस प्रकार मेरी कुटिया मे मनोरम राजभवन है प्रकृति अपने वैभव और ऐश्वर्य की माया को खोलकर दिखला रही है।

कहता है कौन मन भाया। (पृ० २२४)

शब्दार्थ—जाया=पत्नी।

भावार्थ—कौन कहता है कि मैं सौभाग्य से वञ्चित हूँ। यहा आकर तो बन के कष्टों के सम्बन्ध मे सुना गया मेरा भ्रम भी दूर भाग गया। अब मैं कुछ करने योग्य बनी हूँ। इस बन मे ही आकर मैं वास्तविक रूप से गृहस्थ बन सकी हूँ। अयोध्या की वधू कही जाने वाली सीता यहाँ आकर गृहिणी बन गई है। मेरी कुटिया मे राजभवन के सभी मनोरम सुख छाए हैं।

फल-फूलों से मन भाया। (पृ० २२२)

शब्दार्थ—आलियाँ=सखियाँ। तटिनी=नदिया। क्रीड़ा=खेल।

भावार्थ—वृक्षों की मेरी डालिया फल फूलो से लदी हुई हैं। वे हरे पत्ते फूलों से भरी मेरी थालिया हैं। मुनिजनों की बालिकाएँ मेरी सखियाँ हैं। नदी की लहरे मेरी तालियाँ हैं जिनको बजा बजाकर आनन्दित होती हूँ। मेरी स्वय की छाया ही मेरे विनोद का कारण बन गई है। मेरी कुटिया मे राज-भवन के सभी मनोरम सुख विद्यमान हैं।

मैं पली पक्षिणी मन भाया। (पृ० २२४)

शब्दार्थ—पिंजर=पिंजरा। कोटर=घोसला। कलगीत=सुन्दर गीत।

अघाया=तृप्त हुआ।

भावार्थ—मैं बन के कुंज रूपी पिंजरे में पली हुई पक्षिणी के समान हूँ। यहा अपने नीड़ के समान घर की याद मुझे आती रहती है। उन्हीं स्मृतियों को लेकर हृदय की मधुर और तीक्ष्ण वेदना आज इस प्रकार जीवन व्यतीत करने के समय का स्वर पाकर सुन्दर गीत बन गई हैं। बन में घर की मधुर स्मृतियों की वेदना भी सुख प्रदान करती है। उन गीतों को गाते हुए कंठ कब तृप्त नहीं होता अर्थात् उन स्मृतियों से हृदय को कब तृप्ति नहीं प्राप्त हूई। मेरी कुटिया में राजभवन के सभी सुख छाए हुए हैं।

गुरुजन परिजन मन भाया। (पृ० २२५)

शब्दार्थ—परिजन=परिवार के सदस्य। ज्ञेय=जाने हुए। आतिथेय= अतिथि सेवा करने वाले। प्रेम=प्रिय। श्रेय=श्रेष्ठ, कल्याणकारी। धाया= दौड़ा।

भावार्थ—मेरे हृदय के उच्च आदर्श ही मेरे गुरुजन और परिजन हैं। बनौषिधियों के गुण अवगुण सभी मुझे ज्ञात हैं। बन की देव देवियाँ मेरा आतिथ्य करने वाली हैं। अपने प्रिय के साथ मुझे यहा की सभी वस्तुएँ सुख-कारी और मंगलदायक प्रतीत होती हैं अर्थात इस लोक और परलोक के सब सुख प्राप्त हैं। स्वयं अटल धर्म मेरे पीछे भागता हुआ सा मेरा अनुसरण कर रहा है। मेरी कुटिया मे राजमहल के सभी सुखों का वास है।

नाचो मयूर नाचो मन भाया। (पृ० २२५)

शब्दार्थ—कुरंग=हिरण। दिवि=नीलकंठ। चटक=गौरेया।

भावार्थ—हे मोर और कबूतरों के जोड़े आज आनन्दित होकर नाचो। हे हिरण तुम भी लम्बी उड़ानें भरते हुए हर्ष मनाओ। हे नीलकंठ, चातक, गौरेयों और भौंरों निर्भय होकर गाओ, क्योंकि सीता जी के बनवास का समय अब थोड़ा रह गया है। हे तितली तूने यह चित्रपट अर्थात रंग विरंगा रूप कहाँ से प्राप्त किया है। मेरी कुटिया में राजभवन के सभी सुखों का वास है।

आओ कलापि मन भाया। (पृ० २२६)

शब्दार्थ—कलापि=मोर।

भावार्थ—हे मयूर आओ और मुझे अपने पंखों की चंद्र कला दिख-

लाओ। तुम कुछ बातें मुझसे सीख लो और कुछ मुझे सिखा दो। हे कोयल गाओ। मैं भी तुम्हारा अनुकरण करूँगी। तुम अपना स्वर खींच कर उसे थोड़ा घुमाओ। हे तोते पढो। तुमने ही तो सर्व प्रथम वृक्षों के मधुर फलो का स्वाद चखा है। मेरी कुटिया में राज भवन के सभी मधुर सुख विद्यमान हैं।

अयि राज हसि मन भाया। (पृ० २२६)

शब्दार्थ—शुक्ति वञ्चिता=मोती से भरी सीपी से रहित। श्रमज=श्रम से उत्पन्न। व्यजन पक्ष=पङ्ख रूपी पङ्खा। अकोर=गोद मे लेकर। मानस=मान-सरोवर।

भावार्थ—हे राजहसिनी मोती न मिलने के कारण इस प्रकार तरस-तरस कर क्यो रो रही है। यदि कहीं तू मेरे समान मोतियो से भरी सीपियो से वचित होती तो मेरे समान तू भी (श्री रामचन्द्र जी के) श्यामल शरीर के श्रम से उत्पन्न मोती के समान पसीने की बूंदो को अपने पङ्ख रूपी पखे की सहायता से गोद में लेकर आत्म विभोर हो जाती। इन्हीं मोतियों को प्राप्त करने के लिए मान सरोवर ने अपना कमल रूप मुँह खोल रखा है। मेरी कुटिया में राज भवन के सभी मनोरम सुखो का वास है।

विशेष—यहाँ राजहसिनी को सम्बोधित कर सीता जी ने अपने पति प्रेम का परिचय दिया है।

ओ निर्झर मन भाया। (पृ० २२६)

शब्दार्थ—उत्तरीय=दुपट्टा। मोद पयोद=प्रसन्नता रूपी बादल।

भावार्थ—अरे झरने तू झर झर की ध्वनि करता हुआ प्रवाहशील रह। पथ की बाधाओ में उलझता हुआ उन्हे सुलझा कर आगे बढ। पर्वत के दुपट्टे के समान हे झरने तू उड। प्रसन्नता का रूप लेकर मेघो के समान घुमड। हे झरने तेरे रूप मे पर्वत का हर्ष और उल्लास से भरा गद्‌गद् भाव ही उमड़ रहा है। यह जीवन तेरे लिए मधुर गति बन गया है और निरंतर तू उसी को गाता रहता है। मेरी कुटिया मे राजभवन के सभी सुखों का वास है।

ओ भोली मन भाया। (पृ० २२७)

शब्दार्थ—कोल-किरात भिल्ल=वन मे रहने वाली जातियाँ।

भावार्थ—सीताजी को सम्बोधित कर रामचन्द्रजी ने कहा---हे प्रिये, ठहरो। थोड़ा विश्राम भी करो। हे राजलक्ष्मी तुमने बन में भी इस राम का साथ नहीं छोड़ा। परिश्रम करती हुई अपने पसीने के जल से स्वास्थ्य के मूल का सिंचन करो। अर्थात् परिश्रम द्वारा अपने सुन्दर स्वास्थ्य का निर्माण करो परन्तु तुम अपने कर्म तत्पर जीवन की गति में विश्राम के नियम का पालन करो। परिश्रम करती हुई थोड़ा विश्राम भी लो। सभी लोग किसी कार्य में तन्मय होने का आदर्श तुम्हें बनाएँ। परन्तु अपने कार्य में तन्मय होकर तो तुमने अपनी सुध बुध को भी भुला दिया है।

हे प्रिये कहीं तुम स्वय ही लता बनकर इन लताओं में मत विलीन हो जाना। क्योकि हथेलियों तक तो तुम इन नई कलियों में ही विलीन होगई हो। अतः कहीं ऐसा न हो कि मुझे भी तुम्हें उसी प्रकार खोजना पड़े जैसे भौंरा मनोहर पुष्प को ढूँढ़ता है। तुम्हारा वह सीता फल फले, जिसकी तुम्हें अभिलाषा है---ओह तुम हँस पड़ी, मेरा विनोद तो सार्थक होगया।"

"तुम हँसो, नाथ, गहन में।" (पृ० २२६)

शब्दार्थ - इन्द्रजाल=जादू।

भावार्थ—रामचन्द्र जी की विनोद पूर्ण बात का उत्तर देते हुए सीताजी बोलीं "हे नाथ, तुम अपने शब्दों के जादू की सफलता पर भले ही हँसो, परन्तु मेरे ये फल तो सत्य के बल पर ही प्रगट होंगे, तुम्हारे जादू से उत्पन्न फलों में तो केवल विनोद ही होगा परन्तु मेरे इन फलों में वास्तविकता होगी। अत. मेरे इन श्रम से उत्पन्न फलों का रस सभी प्राप्त करें।

तुम बड़े रहस्यमय होते हुए भी बड़े भोले हो। अपने इस विनोद में भी तुम सत्य को न छिपा सके। यह सचमुच कैसे आनन्द की बात हो कि मैं वन में छिप जाऊँ और तुम मुझे घने जगल में खोजते फिरो।

विशेष—राम और सीता के इस हास परिहास मे कवि ने बड़ी कुशलता से भावी घटना का सकेत दिया है। सीता सचमुच ही विलीन हो जाती है और राम को उन्हें घने बन मे ढूँढ़ना पड़ता है।

"आमोदिनि, तुमको के भीतर।" (पृ० २३०)

शब्दार्थ—आमोदिनी=आमोद प्रदान करने वाली। अन्तर=हृदय।

विद्युद्द्युति=बिजली की चमक । घनश्यामयबादल ।

भावार्थ--हे आमोदिनी, भला तुमको कौन छिपा सकता है ? हृदय को तो हृदय अनायास ही देख लेता है । राम के हृदय में तो सीता उसी प्रकार विराजमान है जैसे काले बादलो मे बिजली की चमक ।

"अच्छा, ये पौधे समुचित हैं ?" (पृ० २३०)

शब्दार्थ—विटपी=पौधे । जनपद=बस्ती । पुर=नगर ।

भावार्थ—अपने पौधों के विषय में सीताजी ने पूछा—अच्छा तो बतलाओ ये पौधे कब तक फल वाले बनेंगे ? उस समय तक हम कहीं अन्यत्र तो नहीं चले जायँगे । सीताजी की बात का उत्तर देते हुए रामचन्द्रजी ने कहा अच्छा पौधों के विषय में पूछ रही हो, इन्हें केवल सींचना ही पर्याप्त नहीं होगा, इन्हें गोड़ना भी पड़ेगा ?" इनके उचित विकास के लिए इनकी डालियो को भी इधर उधर मोड़ो ।

रामचन्द्र जी की बात के उत्तर मे सीता जी ने कहा--पुरुषो को तो सदैव राजनीति की बातें ही सूझा करती हैं । चाहे नृप का कार्य हो अथवा माली का वे सदैव काट छाँट की बाते किया करते हैं । हे प्राणेश्वर यह उपवन नहीं है वन है । यहाँ पौधे स्वच्छदता पूर्वक बढते हैं । कोई उनकी काट छाट नहीं करता । ये नगर और बस्तियाँ बधन के ही तो दूसरे रूप हैं । देखो इस बन में यह छोटा सा नाला कितना स्वच्छद है ? परन्तु नगर में रहने वाले लोग बाध आदि बनाकर इसे भी बाँध लेते हैं ।

राम ने इसके उत्तर मे कहा--तुम्हारा यह कथन तो सत्य है नगर में नदी नालों को बधन में बाध लेते हैं परन्तु वे इसका उपयोग तो बढा देते हैं ।" सीता जी ने तत्काल ही उत्तर दिया--परन्तु इससे नद नाले का तो कोई लाभ नहीं होता इसमें तो उसे बधन मे डालने वालो का ही स्वार्थ है । इस प्रकार अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरो को बधन मे डालना क्या उचित है ।

'मैं तो नद भाव-से भू पर ।" (पृ० २३१)

शब्दार्थ—भरणी = भरण करने वाली, पालन करने वाली । उच्छिन्न = छिन्न भिन्न । प्रतिकूल=विरोधी ।

भावार्थ—राम ने सीता की बात का उत्तर देते हुए कहा—मैं तो इस

नद को अपनी भावनाओं को समझाने का अवसर ही कहाँ है ? तनिक विचारो किसी का स्वार्थमय जीवन क्या कभी प्रशसनीय बन सकता है। जब हम किसी का उपकार करते हैं तब हमारे हृदय को कितना संतोष होता है। यही बात नद के सम्बन्ध में कही जा सकती है। उसे भी हम अपना जैसा ही मान सकते हैं। हमारी भाति उसे भी दूसरों का उपकार करते हुए आनन्द ही होता है। यदि हमें प्यास न लगती तो जल का कोई महत्व ही न था। हमारी प्यास के कारण ही जल का महत्त्व है। वही जल अन्न और मोतियों को उत्पन्न करता है। बादल भी अपने लिए जल बर्षा नहीं करते, लोक कल्याण के लिए वे बरसते हैं। वस्तुतः हमें समाज के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान कर देना चाहिए।

"तुम इसी भाव .... बचाने आया। (पृ० २३३-२३४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सीता जी बोलीं—तब तुम बादलों के आदर्श भाव से भरे हुए आए हो। इसीलिए तुमने प्रसन्नता पूर्वक बादलों के समान यह श्यामल शरीर धारण किया है। यही बात है तो बरसो जिससे कि यह तप्त भूमि सरस हो जाय। मैं भी संसार के पाप समूह पर बिजली के समान टूट पड़ूँ।

रामचन्द्र जी ने कहा—हे प्रिये सचमुच मैं इसी भाव से भरा हुआ आया हूँ। मैं इस संसार को कुछ प्रदान करने के लिए ही आया हूँ। समस्त प्राणियों को अपनी रक्षा का अधिकार रहे, परन्तु समाज की सुविधा का भार राज्य शासन ही उठाए। मैं इस प्रकार आर्यों के आदर्श सिखाने के लिए आया हूँ। धन से व्यक्ति बड़ा है यही बात मैं बताने के लिए आया हूँ। ससार में सुख और शाति की स्थापना के लिए मैं क्राति मचाने आया हूँ। तथा जो मुझ पर विश्वास रखते हैं, उनके विश्वास की रक्षा करने आया हूँ।

मैं आया उनके .... पार उतरेंगे (पृ० २३४-२३५)

शब्दार्थ—कौणप कुल=राक्षस कुल। मूक सदृश्य = चुपचाप हो कर। मदीय=मेरा।

भावार्थ—मै उस नर समाज के उद्धार के लिए अवतरित हुआ हूँ जो कि सतप्त विकल, विवश, दीन हीन और दुख दैन्य से पीड़ित है। जिनके

हृदय भय से व्याकुल हैं जो राक्षसों के अत्याचार मौन होकर सह रहे हैं, वे अब निर्भय हो जायँ। मैं इसलिए आया हूँ कि संसार में मर्यादा बनी रहे जिससे कि मनुष्य जीवन उच्छृङ्खल न बन जाए और वह विनाश से बच सके। मैं यहाँ दूसरों के दुखों को स्वयं सहन कर उन्हे सुख प्रदान करने आया हूँ। मै यहाँ अपनी नर लीला द्वारा मानव का आदर्श रखने आया हूँ। इस प्रकार मैं संसार को एक सहारा देने आया हूँ। मैं यहाँ तोड़ फोड़ करने के उद्देश्य से नहीं, निर्माण करने के उद्देश्य से आया हूँ। मैं संसार की निधि का सञ्चय करने नहीं आया, अपितु संचित निधि का वितरण करने आया हूँ। इस संसार रूपी वाटिका में जो मनुज जीवन के विकास में बाधक झाड़ झंखाड़ के समान शक्तियाँ हैं उन्हें दूर करने आया हूँ। मै स्वयं राज्य का उपभोग करने नहीं आया अपितु दूसरो को ही राज्य शासन के सुख प्रदान करने आया हूँ। वास्तव में जीवरूपी हसों को मोक्ष रूपीमोती चुगाने आया हूँ। मैं इसी संसार को नए वैभव और नए ऐश्वर्य से भरने आया हू। मैं मनुष्य को ही ईश्वर बनाने आयो हूँ। मैं यहाँ स्वर्ग का सन्देश नहीं लाया वरन् इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने आया हूँ। अथवा इस पुण्यभूमि का आकर्षण ही मेरे लिए इतना तीव्र है कि मैं स्वयं उच्च फल के समान इस भूमि पर अवतरित हुआ हूँ। (न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से ऊँची डालियों पर लगा फल नीचे आ गिरता है।) जो मेरा नाम मात्र के लिए स्मरण करेंगे वे बिना किसी अन्य प्रयत्न के बड़ी सरलता के साथ इस संसार से मुक्त हो जायेंगे। परन्तु जो मेरे गुणो का, कार्यों का, और स्वभाव का अनुसरण करेंगे, वे स्वयं अपना उद्धार कर, दूसरों का भी उद्धार कर सकेंगे।

"पर होगा यह ... मै सारी।" (पृ० २३५-२३६)

शब्दार्थ– ऋक्ष-वानर=रीछ बन्दर। होम धूप=यज्ञ का धूँआ। दुकूल= वस्त्र। निरत=लीन। तप-त्याग=तपस्या और त्याग। वर्बर=असभ्य। कौणप-गण=राक्षस गण। भौतिक मद=सासारिक ऐश्वर्य से मतवाले।

भावार्थ—सीता जी ने कहा –परन्तु आपका यह उद्देश्य क्या वन मे पूरा हो सकेगा? इस जन रहित स्थान में चिंतन और मनन का कार्य ही सम्भव हो सकता है।

उत्तर में रामचन्द्र जी ने कहा "बन में भी धर्म के द्वारा हमारा इष्ट साधन हो सकता है। जब मन से चिंतन मनन हो सकता है, तब क्या कर्म से वह कार्य पूरा नहीं किया जा सकता? अब भी इस वन में बहुत से मनुष्य रीछ बानरों की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। मैं उन्हें अपने हाथों से आर्यत्व की दीक्षा दूँगा। यहाँ से चलकर मैं शीघ्र ही दडक बन को अपना निवास स्थान बनाऊँगा। वहाँ तपस्वियों के धर्म स्थानों पर होने वाले विघ्नों को दूर करूँगा जिससे वेदों की वाणी सवत्र सुनाई पड़े। पर्वत, कानन, और सिन्धु पार यह मगलदायिनी और कल्याणकारी वाणी गूज उठे। आकाश में यज्ञ का पवित्र धूआ छा जाए। पृथ्वी का अचल हरा भरा हो जाय। ज्ञानीजन स्वस्थ होकर तत्वों का मनन चिंतन करें। ध्यान लगाने वाले बिना किसी विघ्न बाधा के ध्यान में लीन रहें। यज्ञ की प्रज्ज्वलित अग्नि में निरतर क्रम से आहुतियाँ पड़ती रहें तथा हमारे द्वारा तपस्या और त्याग की विजय तथा वृद्धि होती रहे। आज मुनिजनों के लिए दक्षिण प्रदेश में वास करना बड़ा कठिन है। असभ्य राक्षस गण उनके लिए काल समान बने रहे हैं। मैं उन साँसारिक ऐश्वर्य से मतवाले स्वेच्छा चारियों की दुर्बुद्धि और दुराचार का अ त कर दूँगा।

"पर यह क्या .... पुण्य पथ गामी।" (पृ० २३६–२३७)

शब्दार्थ—व्याध=शिकारी। अस्फुट=अस्पष्ट। धूल से धूसरित=धूल से भरा। नकुल=नेवला। सदय=दयावान।

भावार्थ—इतने में ही वन में कोलाहल होता हुआ देख कर सीता जी ने कहा "परन्तु यह क्या बात है? पशु पक्षी भयभीत होकर क्यों भागे चले आ रहे हैं? मानो शिकारी गण उनका पीछा कर रहे हों। सचमुच बुरों की तो चर्चा करना ही उचित नहीं। सर्पों की बातें जहाँ करो वहीं वे उपस्थित हो जाते हैं। सारा जगल अस्पष्ट कोलाहल से भर कर गूज रहा है। उच्च और गभीर आकाश धूल से ढक गया है। देखो, मेरा यह नेवला भी देहली पर से बाहर की यह हलचल देखकर भयभीत हो रहा है। लो, बाढ के वेग की भाँति क्षण-क्षण में क्रुद्ध और शाँत तथा स्थिर और अस्थिर होते हुए देवर लक्ष्मण चले आ रहे हैं? हे स्वामी न जाने क्या बात होने को है? जो दया-

न और पुण्य मार्ग पर चलने वाले हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय न हो।

"भाभी, भय का रण में !" (पृ० २३७)

शब्दार्थ—चाप=धनुष। गुणमय=प्रत्यंचा युक्त। परास्तता=पराजित ना। चमू=सेना। अनय=अनीति। स्वमातृ तनय=अपनी माता के पुत्र। तषेध=निषेध, मना ही।

भावार्थ—सीताजी को सम्बोधित कर लक्ष्मण जी ने कहा "हे भाभी इस य की औषिधि तो मेरा यह धनुष है। दुगनी प्रत्यंचा युक्त यह धनुष स्वयं स भय की ओर दुगनी तीव्रता से आकृष्ट हो रहा है। कौन मेरे इस धनुष निशाने के समक्ष खड़ा रह सकेगा? वही जिसके भाग्य में पराजित होना लखा होगा। मैंने ऐसा सुना है कि भरत दल-बल सहित यहाँ आए हैं। यह न और जंगल उनकी सेना के कोलाहल से व्याकुल हैं। विनीत होकर भी ऐसा अनीति पूर्ण कार्य क्यों न करे? इसमें आश्चर्य ही क्या? क्योंकि वे ो वे अपनी माता कैकेयी के पुत्र हैं। परन्तु यह अच्छा है कि हम असमर्थ ही है। चाहे एक बार साक्षात यम ही हमारे सामने क्यों न हो, उसके नए भी हम काल सदृश्य हैं। हम जैसे के लिए तैसे के समान हैं।

रामचन्द्रजी को सम्बोधित कर लक्ष्मण ने कहा 'हे आर्य आप इस प्रकार तने गम्भीर क्यों हो गए? क्या आत्म रक्षा के लिए भी किसी सोच विचार ी आवश्यकता है? यदि भरत किसी बुरी भावना को लेकर इस बन में आए ोंगे तो मैंने भी अपने मन में यह संकल्प कर लिया है कि मैं उन्हें शीघ्र ही अपने बाण का लक्ष्य बनाऊंगा। रण क्षेत्र में आपका भी निषेध नहीं ानूंगा।

"गृह कलह जब यों?" (पृ० २३८)

शब्दार्थ—अक्षुण्ण=जो न टूटे। विग्रह=झगड़ा।

भावार्थ—लक्ष्मण जी की बात सुनकर सीता ने कहा "यह गृह का कलह शांत हो। हाय, कुल की कुशल मंगल हो। अतुलनीय रघुकुल की अक्षुण्ण अतुलता बनी रहे। हे देवर, जब तुम राज्य छोड़कर यहाँ बन में आगए हो तब कलह कराने वाले ग्रहों का कोप फिर क्यों हो रहा है?

"भद्रे, न भरत टाल सकते हैं ?" (पृ० २३८)

शब्दार्थ—अंतःपुर=हृदय ।

भावार्थ—सीता जी को सम्बोधित कर रामचन्द्र जी ने कहा हे प्रिये, उस राज्य को कहीं भरत भी न त्याग आए हों ? वह वैभव जो उन्हें उनकी माता ने प्रदान किया है, उससे कहीं वे मुख मोड़ न आए हो ? हे भाई लक्ष्मण मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भरत के पीछे सेना नहीं सारी प्रजा है जो नगर को सर्वथा जनरहित बनाकर यहाँ चली आई है ।"

राम की बात सुनकर लक्ष्मण ने व्यंग पूर्वक कहा "आप जिस आशा का आधार लेकर यह बात कह रहे हैं वह तो वास्तव में हृदय के मध्य में निवास करने वाली कुलटा के समान अविश्वसनीय है । आप जैसे सीधे हैं वैसा जगत नहीं है । वह ठीक इसके विपरीत है । जब आप पिताजी के वचनों का पालन कर सकते हैं तब क्या भरत माँ की आज्ञा की अवहेलना कर सकते हैं ?"

"भाई, कहने को ये जागे !" (पृ० २३८-२३९)

शब्दार्थ—दनुजत्व=राक्षस पन । प्राकृत=साधारण । तुल्यगति=समाम गति ।

भावार्थ—लक्ष्मण की बात का उत्तर देते हुए राम बोले "हे भाई यद्यपि तुम्हारा तर्क अकाट्य है, फिर भी भरत के प्रति मेरे हृदय का विश्वास ही सत्य है । राम ने यदि माता कैकेयी की अभिलाषा पूर्ण की, तो क्या भरत पिता की मनोकामना पूर्ण न करेंगे ?"

इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा "परन्तु यह मानव हृदय बड़ा दुर्बल और चंचल होता है । इस पृथ्वी तल पर मनुज समाज मे लोभ की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रवल है मनुष्य के लिए राक्षसोचित कार्य तो सरल है, परन्तु देवत्व प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । वास्तव में नीचे से ऊपर की ओर उठना सरल कार्य नहीं है ।"

उत्तर में राम ने कहा "परन्तु हम अपने को साधारण पुरुष क्यों समझें । हम अपने मे निहित पुरुषोचित महानता क्यों न पहिचानें ? हम मनुष्य को उत्कृष्ट प्रवृतियों के स्थान पर बुरी प्रवृत्तियो के विषय में विचार ही क्यों करें ? मन की गति तो ऊपर नीचे सर्वत्र समान ही है । उसे बुरे और भले दोनों

मार्गों मे ही प्रवृत्त किया जा सकता है ।"

राम के इस युक्ति युक्त कथन को सुनकर लक्ष्मण बोल उठे "हे आर्य मैं आपके सम्मुख हार गया। परन्तु इस हार मे भी मैं विजय का अनुभव कर रहा हूँ, क्योंकि मेरा शरीर सैकड़ों प्रकार के भावों से पुलकित हो रहा है।

"देवर, मैं तो ... बैठते घर ये।" (पृ० २३९)

शब्दार्थ—दारुणमूर्त्ति=भयानक मूर्त्ति।

भावार्थ—क्रुद्ध लक्ष्मण को इस प्रकार शाँत हुआ देखकर सीताजी ने प्रसन्न भाव से कहा "हे देवर तुम्हारी यह बात सुनकर मै तो जी उठी, अन्यथा मेरे तो प्राण निकले जाते थे। ग्रह कलह का भयकर चित्र मेरे सामने नाच रहा था। रामचन्द्र जी को सम्बोधित करते हुए सीता जी बोलीं "हे आर्य पुत्र तुमने इन देवर को अपने साथ लाकर अच्छा ही किया। तुम्हारे अतिरिक्त भला ये किसकी बात मानने वाले थे। सचमुच यह मेरे लिए बड़े संतोष की बात है कि देवर हमारे साथ हैं। अन्यथा घर रहकर न मालूम वे जाने क्या कर बैठते।

"पर मैं चिंतित ... चले अनुरागे। (पृ० २३९-२४०)

शब्दार्थ—वारण=निषेध करना। अन्तराल=हृदय से, भीतर से।

भावार्थ—सीता जी को सम्बोधित कर रामचन्द्र जी कहने लगे "हे प्रिये मुझे एक बात की चिंता है कि कहीं भरत अपने सहज प्रेम के कारण मुझे वन से लौट चलने का हठ न करें। यह देखो जैसे क्षितिज जाल से दो तारे उदित होते हैं वैसे ही भरत और शत्रुघ्न वन के भीतर से निकलते हुए आ रहे हैं! वे, हम दोनों के समान है और हे प्रिये उनके रूप में हमीं को वन में आया हुआ जानो। इस प्रकार कहते हुए प्रभु रामचन्द्र जी उठकर आगे बढ़े। सीता और लक्ष्मण भी प्रेम भाव से उनके साथ चले।

देखी सीता ने ... सुनिर्मल उनका। (पृ० २४०)

शब्दार्थ—युग्म=जोड़ा। स्वर्वैद्य=देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार। दृगम्बु=नेत्र जल, आँसू।

भावार्थ—सीता ने स्वय साक्षिणी होकर अपने सम्मुख ही एक एक की दो-दो प्रतिमाए देखीं। राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न के रूप में

जगतीतल ने अपनो चिकित्सा के लिए चार वैद्य रखे थे, परन्तु वे सुर वैद्य अश्विनी कुमार स्वयमेव आधे अर्थात् दो ही रह गए। दोनो आने वाले व्यक्ति प्रणाम करते हुए चरणों पर गिर पड़े। तब राम और लक्ष्मण ने उन दोनो को अपने हृदय से लगा लिया। भरत तथा शत्रुघ्न के आँसू सीता जी के चरणों को पखारने लगे। राम और लक्ष्मण के आँसू अपने निर्मल जल से उनका अभिषेक करने लगे।

"रोकर रजमें   देखा-भाला।" (पृ० २४०)

शब्दार्थ—सुमुख=सुन्दर मुख वाले। मानस=मन, मान सरोवर। उर्वी= पृथ्वी।

भावार्थ—चरणों में गिरे भरत को सम्बोधित करते हुए रामचन्द्र जी ने कहा—हे भाई भरत इस प्रकार रोते हुए धूल में मत लोटो। हे सुन्दर मुख वाले सुखकारी भरत हृदय से लगकर छाती शीतल करो। अपने हृदय रूपी मान सरोवर के ये अमूल्य मोती इन आँसुओं को व्यर्थ ही धूल में मत बिखेरो आओ मुझे उपहार के रूप मे इन आँसुओं की माला पहनाओ, जिससे कि उसे मैं अपने हृदय पर धारण कर सकूँ। अर्थात् हे भरत धूल में लोटने के स्थान पर मेरे हृदय से लग जाओ।

राम के कथन का उत्तर देते हुए भरत ने कहा, हे आर्य भरत का भाग्य तो धूल से ही भरा हुआ है। अपने हृदय के रहते हुए भी उसके स्थान पर तुमने उसे पृथ्वी ही प्रदान की हैं। तुमने उस मूर्ख माता कैकेयी के विकारयुक्त वचन का तो पालन किया, परन्तु इस सेवक की ओर तनिक भी दृष्टि पात नहीं किया।

"ओ निर्दय   है रूखा।" (पृ० २४१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—भरत की बात सुनकर राम प्रेम विभोर हो कहने लगे—हे भाई इस प्रकार निष्ठुर बनकर मुझे निरुत्तर मत बना। हे भाई मेरे लिए तुम्हें क्या यही कहना उचित है। राम तो सदैव ही भरत के प्रेम भाव का भूखा है। परन्तु वह अपने रूखे कर्त्तव्य पालन के कारण विवश है।

इतने में कल कल गुनियों को। (पृ० २४१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—इतने में ही वहाँ गुरुजनों के साथ अयोध्या के नगर निवासी पंचगण और मन्त्रियो द्वारा जय जयकार का मधुर शब्द गूँजने लगा। हाथी, घोड़े, रथ आदि भी अपनी अपनी शब्द ध्वनि करते हुए आगे बढ़ आए। मानों उन सबने अपने खोए हुए प्राण फिर से प्राप्त कर लिये हों। चित्रकूट में ऐसी क्या विचित्रता थी जिसे खोजने के लिए सम्पूर्ण अयोध्या का समाज आया हुआ था। प्रभु रामचन्द्र जी ने वशिष्ठ आदि मुनि जनो को प्रणाम कर गुण रत्न गृहस्थों से आदर पूर्वक भेंट की।

जिस पर पाले ही कर्मा।" (पृ० २४१-२४२)

शब्दार्थ—सरसी=छोटा तालाब, तलैया। सित वासना=श्वेत वस्त्र पहनने वाली। रसना=जीभ।

भावार्थ—पाले की पर्त से आच्छन्न क्षतविक्षत कमलों वाली तथा स्थिर जल वाली सरसी के समान सफेद वस्त्र धारण किये हुये आभूषण रहित विधवा वेश में माताओं को देखकर प्रभु रामचन्द्रजी काँप उठे। उनकी वाणी जड़ बन गई।'हा पिता' कह कर जैसे उन्होंने चीत्कार भरा। सीता जी के साथ लक्ष्मण भी उसी क्षण रोने लगे। यह देखकर माताओ का हृदय वेदना से व्यथित हो उमड़ पड़ा। उन्होने कहा "हे पुत्र वे तात तुम्हारे ही नाम की रटना करते हुए स्वर्गवासी बने।"

राम ने कहा "जितने भी इस ससार मे आने वाले हैं, उन्हें अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए यहाँ से जाना ही है। इसलिए जन्म के साथ मृत्यु तो अनिवार्य ही है। शोक का इसमें कोई विशेष कारण नहीं। परन्तु मुझे इस बात का अत्यन्त दुख है कि मैंने पिताजी के प्रति निष्ठुर कार्य ही किया। उन्हें शोचनीय अवस्था में छोड़ कर चला गया।

दी गुरू वशिष्ठ हैं सब के।" (पृ० २४२)

शब्दार्थ—समुपस्थित=सामने उपस्थित होना। टेक=सत्य पालन।

भावार्थ–तब प्रभु रामचन्द्र जी को सान्त्वना प्रदान करते हुए कुल गुरू वशिष्ठ जी ने कहा "वे राजा दशरथ सर्वत्र अपनी कीर्त्ति फैलाते हुए अब भी

सबके सामने उपस्थित हैं। वे स्वय अपने जीवन के ऋण से मुक्त नहीं हुए अपितु इस ससार को ही अपने पुण्य कार्यों से ऋणी बना गए हैं। वे ससार के कृतज्ञ नहीं, ससार ही उनका कृतज्ञ है। वे अपने एक जीवन के बदले में, इस ससार को अपने चार पुत्रों के रूप में चार जीवन प्रदान कर गए हैं। सत्य की मर्यादा को निभाते हुए उन्होंने तुम जैसे पुत्र को भी तज दिया। उनके लिए चिंता करना व्यर्थ है। वे तो सबके लिए स्मरण करने योग्य अभिमान के कारण, और अनुकरण के आदर्श हैं।"

बोले गुरु से फल जल है।" (पृ० २४२–२४३)

शब्दार्थ—साश्रु वदन = आँसुओं से भरा मुख। बद्धांजलि = हाथ जोड़कर।

भावार्थ—तब आँसुओं से भरे मुख से हाथ जोड़कर प्रभु रामचन्द्र जी गुरु वशिष्ठ से बोले "हाय पितृ देव अपूर्ण अभिलाषा ही लिए स्वर्ग धाम चले गए। क्या मैं उन्हें अब भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर सकता हूँ।" यह कहते हुये उनका गला भर आया और हृदय व्याकुल हो गया। उन्होंने पुन. कहा "आप ही बतलाइए अब मैं क्या करूँ ? हे गुरुदेव आप ही अब हमारे पितृ तुल्य हैं।"

राम की बात को सुनकर वशिष्ठ ने कहा "यह उत्तरदायित्व तो मुझे पहिले से ही प्राप्त है। राजा दशरथ के लिए हम जिस समय भी जो कुछ करें वह थोड़ा है।"

राम ने कहा–हे प्रभु इस राम के हृदय में अविचल भक्ति भाव भरा हुआ है। परन्तु उन्हें अर्पण करने के लिए अब केवल, पत्र, पुष्प, फल और जल ही हैं।

"हा ! याद न सुख होगा।" (पृ० २४३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—राम को राजा दशरथ के लिए पत्र पुष्प आदि अर्पण करते हुए देखकर प्रभु जननी कौशल्या ने रोते हुए कहा "हे राम तुम्हारे हाथों मे अर्पण के लिए वन के इन पत्र, पुष्प, जल आदि को देखकर कहीं उन्हें तुम्हारे वनवास की याद न उठ आए।" तब कौशल्या को धीरज बँधाते

हुए वशिष्ठ जी ने कहा "हे देवी राजा दशरथ आज सब दुखो से परे हैं। वे तो स्वर्गीय भावों से भरे हुए हैं। राम का बनवास उनके दुख का कारण नही होगा, परन्तु भरत के प्रेम भाव को देखकर उनकी आत्मा को अत्यन्त सुख होगा।

गुरु गिरा श्रवण निहारा उसने। (पृ० २४३)

शब्दार्थ—परिष्कृत=सुधारना। वलय-शून्य=कंगन रहित।

भावार्थ—गुरु वशिष्ठ की वाणी सुनकर सभी गद्‌गद् हो गए। तब जल से भरे नद के समान स्नेह से परिपूर्ण होकर रामचन्द्र जी ने कहा "देव तुल्य पिता पूजा की सामिग्री पर ध्यान न देकर हृदय की भक्ति भाव ही देखेगें। अत्यन्त कृपावान होने से वे थोड़ी को भी बहुत समझेंगे।" कौशल्या के हृदय मे अब कोई दुख भाव नहीं रहा तथापि उन्होंने कैकेयी की ओर देखा। कैकेयी अपना कठ साफ करती हुई, प्रभु के कधे पर अपना कगन रहित हाथ रखकर बोली" सच्चा श्राद्ध तो हृदय के श्रद्धा भाव द्वारा होता है, व्यर्थ के आडम्बर द्वारा नहीं। परन्तु तुम्हें किस बात का अभाव है। पूज्य गुरुवर जैसा कहें वैसा ही करो।" यह कहकर मानो उन्होंने अपने हृदय का भार उतारते हुए सतोष अनुभव किया, और फिर लक्ष्मण जननी सुमित्रा की ओर देखा।

कुछ कहा जब लौं। (पृ० २४४)

शब्दार्थ—करणीय=करने योग्य।

भावार्थ—अपने आसुओं से भरे हुए मुख से सुमित्रा कुछ बोल न सकी। दुख पूर्वक आँसू पोछते हुए उसने सिर के सकेत से अपनी अनुमति प्रदान की। जो आज्ञा यह कहकर प्रभु रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी की ओर उन्मुख होकर बोले "हे भाई अपने कुछ चुने हुए भोले बन वासियो को साथ लेकर तुम सबका स्वागत सत्कार करो। मैं तब तक अपने आवश्यक कार्य पूर्ण करलूं।

यह कह सीता आपको चुनके। (पृ० २४४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—यह कह कर सीता जी के साथ प्रभु रामचन्द्र जी नदी तीर पर

आए। वे दोनों श्रद्धा और धर्म के समान सुशोभित हो रहे थे। उनके पीछे परिवार के सदस्य गण और अयोध्या वासी इस प्रकार चले जैसे स्वय विश्वास ही श्रद्धा और धर्म का अनुगामी बन रहा हो। लक्ष्मण ने चुने हुए फल के समान अपने आपको समर्पित कर दिया था।

पट मण्डप चारों   कलेवा देना।" (पृ० २४४–२४५)

शब्दार्थ – रसाल=आम। जम्ब=जामुन। आलान=हाथी बाँधने का खूटा। द्रुमकांड=पेड़ का तना। गज-निगड़=हाथी के पैर में बाँधी जाने वाली जजीर। वलय=कगन। च्युत=गिरे हुए।

भावार्थ—इतने में ही चारों ओर मनोहर शामियाने बन गए जिन पर आम, महुआ, नीबू, जामुन और वट के वृक्ष छाए हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो चित्रकूट ने अनेक कटि वस्त्रों को धारण कर लिया था। अथवा नए बादलों ने चारों ओर से घिर कर उसे घेर लिया हो। वृक्षों के तने हाथियों के लिए खूँटे बन गए और हाथियों की जजीरें उन पेड़ों के लिए कगन बन गई। पेड़ों से गिरते हुए पत्ते जब घोड़ों की पीठ पर पड़े तब उनका शरीर रोमाचित हो उठा और वे आश्चर्य से गर्दन उठाते हुए इधर-उधर दृष्टि दड़ौाने लगे।

घड़ी भर मे ही चित्रकूट में एक नया उपनिवेश ही बस गया। अयोध्या वासियों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे अपने घर में ही रह रहे हैं। वहाँ ऐसा बाजार लग गया जहाँ कि वस्तुओं के क्रय के लिए कुछ भी नहीं देना पड़ता था। अपनी इच्छानुकूल जिसे जो वस्तु चाहिए वही प्राप्त की जा सकती थी। अनेक प्रकार के कद, मूल, फल, कोल भील, किरात आदि लोग ला लाकर सबको प्रदान कर रहे थे और बदले में वे सबके प्रेम पात्र बन रहे थे। वे लोग विनय पूर्वक यही कह रहे थे" हम बन वासियों की फल पुष्पों के रूप में आपकी यही सेवा है। यहाँ महुआ ही मेवा है और बेर कलेवा है।

उस ओर   उपवन ज्यों। (पृ० २४५--२४६)

शब्दार्थ—उपकरण=सामिग्री। अवश=विवश। मदानिल=धीरे-धीरे बहने वाली हवा।

भावार्थ—उधर पिता की भक्ति भाव से परिपूर्ण हृदय लिए रामचन्द्र जी

ने अपने हाथों सामिग्री एकत्रित कर मुनियो के बीच मे बैठकर श्राद्ध का कार्य विधि पूर्वक उसी प्रकार सपन्न किया, जैसे कोई अपराधी विवश होकर अपना दड ऋण चुकाता है। अपने पुत्रो का अनन्य और अविचल प्रेम पाकर पिता राजा दशरथ की आत्मा का परितोष जैसे वहाँ स्वय प्रगट हो गया। यज्ञ की शिखा द्विगुणिक रूप से उज्ज्वल हो उठी। धूप की धूनी भी मद मद बहने वाली पवन में मिलकर खिल उटी। पवन को उसने और सुगन्धित बना दिया।

चित्रकूट मे आए सभी लोगो को अपना आमत्रित अतिथि मानकर रामचन्द्र जी ने पहिले उन्हें भोजन से तृप्त किया और तदुपरात उन्होंने स्वजनों के साथ उसी प्रकार भोजन किया जैसे उपवन, मद पवन का सेवन करता है।

तदनन्तर बैठी महू महकर। (पृ० २४६)

शब्दार्थ—उटज=कुटिया। वितान=चँदोवा।

भावार्थ—इसके उपरान कुटिया के आगे सभा जुड़ी। उस समय चदोवे रूपी नीले आकाश में दीपकों के रूप मे तारे जगमगा रहे थे। वे तारे मानो भय से व्याकुल देवताओं के टकटकी बाँधे हुए नेत्र थे, जो कि सभा का निर्णय जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। देवताओं के भय का कारण यह था कि कहीं रामचन्द्र जी भरत के प्रेम भाव के कारण अयोध्या पुन. न लौट जॉय और इस प्रकार उनका असुरो के विनाश का कार्य अधूरा ही रह जाएँ। इसी लिए वे सभा का परिणाम जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।) करौंदी के सुगन्धित फूलों के समूह से प्रफुल्लित पवन रह रहकर सबको अपनी महक से पुलकित कर रही थी।

वह चन्द्रलोक था पाई जिसको!" (पृ० २४६--२४७)

शब्दार्थ—नीर निधि=समुद्र। अभीप्सित=हार्दिक अभिलाषा। अरण्य=जगल। आशय=भाव, विचार।

भावार्थ— वह चन्द्रमा के प्रकाश से युक्त रात्रिकाल का समय था। वैसी चाँदनी अन्यत्र कहाँ थी? प्रभु रामचन्द्र जी समुद्र की भाँति गम्भीर वाणी में बोले "हे श्रेष्ठ भरत अब अपनी हार्दिक अभिलाषा बतलाओ।" यह सुनकर सभी लोग सजग हो गए मानो उनका कोई सपना भग होगया हो।

भरत ने उत्तर दिया "हे आर्य क्या अब भी भरत की अभिलाषा शेष रह

गई है। जब कि उसे बिना किसी बाधा के अयोध्या का राज्य प्राप्त हो गया है। तुमने इस जगल में वृक्षो के नीचे वास किया, तब भी क्या मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई ? पिता ने वेदना से तड़प तड़प कर अपने प्राणों को त्यागा है, फिर भी क्या मेरा दुर्भाग्य से भरा अभीप्सित शेष रह गया ? हाय, क्या इसी अपयश का फल भोगने के लिए मेरा जन्म हुआ था ? अपनी ही माता के हाथों मेरा इस प्रकार मरण होने को था ? हे आर्य जिसका परिवार ही भ्रष्ट हो जाता है, उसका ससार भी नष्ट हो जाता है। हे आर्य अब किसकी अभिलाषा पूर्ण होने को शेष रह गई है। आज मुझे स्वय अपने से ही घृणा हो गई है। हे आर्य अब तुम्हीं मुझे मेरा अभीप्सित बतला दो।"

प्रभु ने भरत को खींचकर हृदय से लगा लिया, और अपने नेत्रों के जल से उन्हें भिगोते हुए विनोद पूर्वक उन्होंने कहा "जिसके उच्च भावों की गहराई को अनुमान जन्म देने वाली माता ही नहीं जान पाई उसके हृदय की अभिलाषा को और कौन जान सकता है ?"

"यह सच है गो मुखी गगा— (पृ० २४७)

शब्दार्थ—तुषारवृता=कुहरे से ढकी। विधु लेखा=चाँदनी।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्र जी के बात समाप्त करते ही कैकेयी बोली यदि तुम्हारा यह कथन सत्य है कि भरत की जननी भी उसके भावों को नहीं जान पाई तो अब तुम घर को लौट चलो। कैकयी के इस अटल स्वर को सुनकर सब चौंक पड़े। सबने अचानक ही विस्मय भाव से रानी की ओर देखा। वह वैधव्य की मूर्त्ति कोहरे से ढकी चाँदनी के समान प्रतीत हो रही थी। उसके हृदय में असख्य तरगो की भाव लहरियाँ उमड़ रही थीं, फिर भी वह स्थिर भाव से बैठी थी। इस समय वह सिंहनी, गोमुखी गगा के समान शीतल और पवित्र थी।

"हाँ, जन कर भी करने पाऊं ?" (पृ० २४८)

शब्दार्थ—अनुताप=पश्चाताप।

भावार्थ—कैकेयी ने कहा—सचमुच भरत को जन्म देकर भी मैं उसे पहिचान न सकी। सारी सभा यह बात सुन ले। तुमने स्वय अभी इस बात को स्वीकार किया है। यदि यह बात सत्य है तो पुत्र घर को लौट चलो। हे तात,

मैं तुम्हारी माँ ही वास्तविक अपराधिनी हूँ। शपथ खाना तो दुर्बलता का ही चिन्ह है परन्तु हम अबला जनों के लिए इसके अतिरिक्त कौन सा मार्ग है ? यदि वरदान के लिए मैं तनिक भी भरत द्वारा उकसाई गई हूँ तो पति के समान ही मैं अपने पुत्र से भी वञ्चित हो जाऊ। ठहरो, मुझे रोको मत, जो कुछ मैं कह रही हूँ, उसे पूरा सुन लो। यदि उससे कुछ सार मिले तो उसे ग्रहण कर लो। पहाड़ के समान पाप करके भी क्या मैं शात बनी रहूँ ? क्या उसके लिए राई के समान तनिक सा पश्चाताप भी न करूं।

थी सनक्षत्र वत्स भी मेरा। (पृ० २४८–२४६)

शब्दार्थ—उल्का=प्रकाश, तारा टूटना। पंजर गत=हड्डियों के ढाँचे में बन्द हृदय।

भावार्थ—तारों सहित चन्द्रमा से भरी निस्तब्ध रात्रि ओस टपका रही थी, मानो वह ओस के रूप मे रो रही हो। नीरव सभा भी अपने हृदयों को स्वय ही सात्वना प्रदान करते हुए रो रही थी। तेज की मूर्त्ति बनी उल्का के समान रानी कैकेयी उस अधकार में प्रकाश बिखेर कर रही थी। वह सबके हृदय मे भय विस्मय और दुख के भावो का सचार कर रही थी।

कैकेयी ने कहा—वह तुच्छ मथरा दासी भला मेरा क्या कर सकती थी ? जब कि स्वय मेरा ही मन अपने ऊपर विश्वास न कर सका। अपने हृदय को सबोधित करते हुए रानी कैकेयी ने कहा—हे हड्डियो के ढाँचे इस शरीर में स्थित अभागे और व्याकुल होने वाले हृदय तू जल जा। रे ज्वाला के समान दग्ध करने वाले विचार तुझ में ही तो जगे थे। परंतु उस समय क्या मेरे हृदय मे ईर्ष्या की ज्वाला से भरे विचार ही थे। हृदय में उस समय क्या और भाव न थे। हे मेरे पुत्र-प्रेम क्या तेरा कुछ भी मूल्य नहीं है, जब कि तेरे लिये ही मैंने यह सब कुछ किया। पर इस वात्सल्य को भी मैं प्राप्त न कर सकी। मेरा अपना पुत्र भी मेरे लिए पराया बन गया है।

थूके, मुझ पर ने घेरा।'—" (पृ० २४६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—तीन लोकों के वासी भले ही मुझसे घृणा करे। जो कोई भी मेरा जितना तिरस्कार कर सकता है करे, उसे कौन रोक सकता है, परन्तु मुझ

से भरत का मातृ पद न छीना जाय । हे राम मैं तुझसे और क्या विनय करू ? अभी तक तो मनुष्य जन यही कहते आते थे कि माता कुमाता नहीं बन सकती पुत्र भले ही कुपुत्र बन जाय । अब सब लोग परम्परा से विरुद्ध इस बात को कहें कि माता कुमाता भले ही हो पर पुत्र सुपुत्र ही रहता है । मैंने भरत का बाहरी रूप ही देखा था । इसके दृढ हृदय को न देख सकी, केवल इसके कोमल शरीर को ही देख पाई । मैंने दूसरों के हित साधन की ओर ध्यान नहीं दिया, केवल अपने स्वार्थ की ही साधना की । इसी कारण तो यह विपत्ति आज सामने आई है । चिर युगों तक यही कठोर कहानी सुनी और कही जाती रहे कि रघुकुल में एक अभागिन रानी थी । अपने प्रत्येक जन्म में मेरी आत्मा यही सुने कि उस 'रानी को धिक्कार है जिसने कि महा स्वार्थ के वशीभूत हो ऐसा किया ।

"सौ बार धन्य लाल की माई ।" (पृ० २५०)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—राम ने कहा—जिस माता ने भरत से भाई को जन्म दिया है, वह एक पुत्र की माँ होकर भी सौ बार धन्य है । प्रभु के साथ ही पागलों के समान सभा भी चिल्ला उठी—वह एक लाल की माँ सौ बार धन्य है ।

"हा लाल ? हे मेरा ? (पृ० २५०)

शब्दार्थ—घृत=पकड़ा हुआ । श्री खंड=चंदन ।

भावार्थ—कैकेयी ने उत्तर दिया—हा पुत्र, उसे भी आज मैंने खो दिया। उसके बदले में भयङ्कर अपयश ही मुझे प्राप्त हुआ । अपने उसी पुत्र पर मैंने अपना सारा सुख न्यौछावर कर दिया था । उसके लिए ही मैंने तुम्हारे अधिकार को छीना था । परन्तु वही पुत्र आज दीन होकर रो रहा है । वह पकड़े हुए हिरण की भाँति सबसे शंकित हो रहा है । चंदन के समान मेरा पुत्र आज जलते हुए अंगारों की तरह भयङ्कर बन रहा है । इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या दण्ड होगा ।

पटके मैंने पद दंड मे भारी । (पृ० २५०-२५१)

शब्दार्थ—पद-पाणि=हाथ पैर । वैतरणी=नरक की नदी । जाह्नवी=गंगा वरुणा=यमुना ।

भावार्थ—मैने स्वय ही अपने हाथ पैर मोह की नदी मे पटक दिए। मनुष्य स्वप्न में अथवा मतवाले पन में क्या क्या नहीं करते। मेरे लिए कौन सा दण्ड हो सकता है, क्या अब भी मै उस दण्ड से डरू गी। फिर भी मेरे दण्ड पर दया पूर्वक विचार किया जाय। ओह दया, वह घृणा, अहा वह करुणा आज तो मुझे गगा और यमुना भी वैतरणी के समान प्रतीत हो रही है। विचारवान पुरुप सुन लें, मैं चिर काल तक नरक में रह सकती हूँ, परन्तु मेरे लिए स्वर्ग की दया नरक के दण्ड से भी कठोर है।

लेकर अपना यह   पद्म कोष है मेरा। (पृ० २५१)

शब्दार्थ—कुलिश=बज्र। पकिला=कीचड़। पद्मकोप=कमल।

भावार्थ—अपना यह वज्र के समान कठोर हृदय लेकर मैने इस भरत के ही लिए तुम्हें वन भेजा था। अब इसी के लिए घर लौट कर चलो। अब इस प्रकार न रूठो। यदि मैं कुछ और कहूँगी तो लोग उस पर विश्वास नहीं करेंगे। मझको यह भरत प्यारा है और इसे तुम प्यारे हो। अतः तुम मेरे दुगुने प्रिय होकर मुझसे अलग न हो। मैं इसके हृदय को नहीं पहिचान पाई, परन्तु तुम तो इसे जानते हो। अपने से भी अधिक तुम इसे महत्व देते हो। तुम भाइयों का पारस्परिक प्रेम इस प्रकार यदि सब लोगों के समक्ष प्रगट हुआ तो मेरे पाप के कारण लगने वाला मेरा कलक दोप पुण्य कार्य के समान सन्तोप प्रदान करने वाला बन गया है। मैं स्वयं कीचड़ की भाति मलिन बनी रहूँ, परन्तु मेरा यह पुत्र कमल की भाति निर्मल है।

आगत ज्ञानी जन   यहाँ फलती है।" (पृ० २५१)

शब्दार्थ—दुवृत्ति=दुष्टतापूर्ण विचार।

भावार्थ—यहाँ अनेक विद्वान जन आए हुए हैं। वे भले ही अपना मस्तिष्क ऊँचा करके अनेक अकाट्य युक्तियों द्वारा तुम्हें समझायें। हे पुत्र मेरे पास तो तेरे लिए एक ही व्याकुल हृदय है। आज उसी हृदय ने अपनी पूर्णता के साथ तुम्हें अपने में समेट लिया है। सदा देवत्व की भावनाओं के ही अनुसार कार्य नहीं होता कभी-कभी राक्षसी दुष्प्रवृत्तियाँ भी पल्लवित और पुष्पित होती हैं।

हस पड़े देव ... इसे जानेगा।" (पृ० २५२)

शब्दार्थ -पाश = फंदा, बंधन। प्रेरे=प्रेरणा देने वाले। कुहुकिनी= मायाविनी। कुहुक=जादू।

भावार्थ--देवों की प्रशंसा और दैत्यों की बुराई से भरे कैकेयी के कथन को सुनकर देव प्रसन्नता से भर उठे तथा दैत्यगण क्षुब्ध होकर सिर धुनते हुए पछताने लगे।

कैकेयी ने पुनः राम को सम्बोधित करते हुए कहा—भाग्य ने मुझे अपयश देने के ही लिए मेरे साथ यह छल किया। आज उसी ने अपनी भूल स्वीकार करने का साहस दिया है। आज मेरे वे सभी विनाश की ओर प्रेरित करने वाले भावों के फंदे कट चुके हैं। आज मैं तुम्हारी वही कैकेयी हूँ और तुम मेरे वही राम हो। प्रायः जब अँधेरी रात्रि के अर्द्धकाल में तुम जग पड़ते थे तब जीजी कौशल्या मेरी पुकार करती हुई कहती थीं "हे मायाविनी अपने जादू इस राम को संभालो। यह अपनी मझली माँ का स्वप्न देखकर जाग पड़ा है और तुम्हारे पास भाग आया है। भरत पर मुझे व्यर्थ ही संदेह किए जाने का भय हुआ। उस भय का स्थान प्रतिहिंसा ने ले लिया था। यदि भरत के हृदय में तुम्हारे प्रति ऐसी ही भ्रांत धारणा मैं पाती तो मैं उसे मनाने यहाँ नहीं आती। फिर तो जीजी ही आतीं। परन्तु इसे कौन स्वीकार करेगा। जो सबके हृदय की बात जानने वाला है वही इस पर विश्वास करेगा।

"हे अम्ब, तुम्हारा ... भाव-धन मेरा। (पृ० २५२-२५३)

शब्दार्थ—नालम्बा=असहाय। भावज्ञ=भावों को जानने वाली।

भावार्थ—कैकेयी के कथन को सुनकर रामचन्द्र जी ने कहा—हे माता, तुम्हारे राम को सब कुछ विदित है। इसी कारण उसे तनिक भी खेद नहीं है।

कैकेयी ने कहा—क्या मेरा स्वाभिमान का भाव हृदय में रखना उचित नहीं है? अपने उच्चकुल का अभिमान रखने वाला कोई भी व्यक्ति मुझे यह बात बतलाए। क्या तुम्हारी माता कैकेयी कभी कोई अपमान सह सकती थी? परन्तु हाय आज तो वह पूर्णतः असहाय बन गई है। मैं क्षत्राणी का

सहज स्वाभाविक स्वरूप लिए स्वभावतः ही मानिनी रही हूँ। इसीलिए मेरी वाणी ने कभी दीनता भरे स्वर मे दया की याचना नहीं की। परन्तु आज तो मेरा मन अत्यन्त दीन बन गया है। हे हृदय के भाव रत्नों के पारखी राम तुम्हीं मेरी इस भाव-सम्पदा को सभालो।

समुचित ही मुझको यह माता—।" (पृ० २५३-२५४)

शब्दार्थ—सुचरित=सुन्दर चरित्र वाले राम। क्रीड़ा=खेल। व्रीड़ा=लज्जा, तिरस्कार।

भावार्थ—यह उचित ही हुआ कि आज सारे संसार की घृणा का मैं पात्र बन गई हूँ। इस घृणा ने ही शान्ति सहित मुझे मेरे भ्रम से अवगत कराया। इसके अतिरिक्त और कौन मुझे मेरे भ्रम का बोध करा सकता था? मेरे इसी व्यर्थ भ्रम के कारण तुम बन में चले आये और महाराज स्वर्गवासी बने। मैं भ्रम से भरे अपने इस हृदय को लिए बैठी ही रही। हे भरत की भुजा को धारण करनेवाले, उसे सहारा देनेवाले राम पिता की चिता तो बुझ गई है, फिर भी तुम्हारी पितृभूमि आज भी तप्त है। तुम अयोध्या चलकर उसके भय और शोक को दूर करो। हे सुचरित राम उसके भग्न हृदय को शाति प्रदान करो। तुम्हीं भरत के राज्य हो, अतः अपना राज्य चलकर सँभालो, मै स्वय अपने धर्म का पालन न कर सकी, परन्तु तुम अपने धर्म का पालन करो। स्वामी को अपने जीवन मे मै कोई सुख न पहुँचा सकी, अब मरने के उपरात तो मैं उन्हें मुँह दिखा सकूँ, अर्थात् मरने से पूर्व ऐसा कोई काम तो कर लूँ जिससे हृदय पर से कलक की लज्जा का भार उठ सके। मृत्यु को प्राप्त होना तो हमारे लिए एक सरल सा खेल है। परन्तु भरत का आदेश है कि मैं जीवित रहकर ही ससार के तिरस्कार को सहूँ। सचमुच मेरे जीवन नाटक का यह लज्जापूर्ण अन्त बड़ा कठिन है। इसका प्रस्ताव मात्र ही मेरे लिए अधकार पूर्ण और व्याकुलता से भरा हुआ है। अब तक मुझे दूसरों को आज्ञा प्रदान करना ही आता था, परन्तु आज वही माता तुमसे प्रार्थना कर रही है।

"हा मातः, मुझको कैकेयी रोई।" (पृ० २५४)

शब्दार्थ—अन्य तुल्य=दूसरों के समान।

भावार्थ—कैकेयी के कथन का उत्तर देते हुए राम ने कहा—"हे माता,

मुझको इस प्रकार पाप का भागी बनाकर अपराधी मत बनाओ। मैं अब तुम्हारी आधी बात भी नहीं सुनूँगा। तुम पराई के समान ये सब बातें क्यों कह रही हो? क्या राम तुम्हारा वही रूठने वाला पुत्र नहीं है? इस प्रकार मुझे मनाकर रुठाओ मत। यदि मैं तुम्हारे कहने से नहीं उठता तो तुम स्वय मेरी माता होकर मुझे क्यों नहीं उठातीं? वे शैशवकाल के दिन आज हमारे बीत गए। माँ के वे बालक अब माँ के हृदय को भाने वाले बालक बने न रह सके। तुम कभी प्रसन्न होकर, कभी क्रोधित होकर मुझे प्यार करतीं थीं। हँसी में तुम ही कभी मुझे रुठाती और कभी मुझे मनातीं थीं। वे दिन सब समाप्त होगए। अब तो तुम दुख के कारण जर्जर होगई हो। मैं अब बड़ा होगया हूँ। साथ ही पहिले से बहुत अधिक भारी होगया हूँ। अब तुम तीनों माताओं में से कोई भी मुझे न उठा सकोगी।"

"तुम पहिले ही कौन से हलके थे? यह कह कर कैकेयी पहिले तो हँसी, फिर रोने लगी।

"माँ, अब भी तुमसे धन पर!" (पृ० २५५)

शब्दार्थ—अद्रि=पहाड़। धर्म धनुर्धृति धारी=धर्म, धनुष तथा धैर्य को धारण करने वाला। अनुचर=सेवक। घन=बादल।

भावार्थ—हे माँ, क्या राम अब भी तुमसे यह आशा करेगा कि तुम उससे विनय करो? इस प्रकार क्या वह अपने ऊपर पाप का पहाड़ गिरायेगा? हे माँ, अब तो तुम्हारे द्वारा आज्ञा प्रदान करने का समय है। मैं भी धर्म, धनुष और धैर्य से युक्त होकर उस आज्ञा मानने को प्रस्तुत हूँ। माता कौशल्या ने तो मुझे जन्म ही दिया है, परन्तु मेरा पालन तो तुम्हारे ही हाथों हुआ है। अपने व्यक्तित्व के अनुसार ही यत्नपूर्वक तुमने मुझे बनाया है। हे माता तुम्हारी आज्ञा ही मेरे लिए सर्वोपरि है। मैं तो तुम्हारा सेवक, पुत्र, सुपुत्र और प्यारे का भय्या हूँ। मैंने तुम्हारे ही आदेश को स्वीकार करते हुए वनवास लिया है, तब क्या तुम्हारी आज्ञा से राज्यसिंहासन ग्रहण कर प्रजा के पालन का उत्तरदायित्व स्वीकार न करूँगा? परन्तु तुम्हारा वनवास का प्रथम आदेश मैं पूर्ण करलूँ, जिससे कि हे माता पिता के सत्य पालन की मर्यादा भी अधूरी न रहे। इसी सत्य की मर्यादा के लिए तो उन्होंने अपने प्राणों का त्याग किया है।

उनकी भाँति मैं भी अपने जीवन में इसी प्रकार व्रत, नियम का पालन करूँगा। हे माँ भरत का यहाँ आना व्यर्थ नहीं गया। मैंने तुम्हारा वचन पूर्णतः मान लिया है। तुम इस वन में मुझे पूर्ण रूप से सुखी और सन्तुष्ट देख रही हो। वास्तव में सुख धन सम्पदा और राज्य में नहीं है वह तो मन में ही निहित है। यदि मन सुखी है तो सर्वत्र सुख है, और यदि मन दुखी है तो सर्वत्र दुख है। यदि तुम्हें इस जन की बात पर पूर्ण रूप से विश्वास न हो तो राज दूत नियुक्त करके तुम इस बात का पता लगा सकती हो। ये राजदूत तो बादलों पर भी चढ़कर ससार भर की बातो को ज्ञात कर सकते हैं।

"राघव, तेरे ही सुनूँगी किससे ?" (पृ० २५६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—रामचन्द्रजी का कथन समाप्त होते ही कौशल्या ने कहा—हे राम तेरा यह कहना सचमुच तेरे ही अनुरूप है। अपने बालपन में जैसा तू हठी था आज भी वैसा ही बना हुआ है। हम सब कुछ सहन करके तेरे लौटने की बात देखेंगे। यह कह कर कौशल्या स्वय ही चुप होगई। सरल स्वभाव की सुमित्रा केवल दीर्घ निश्वास लेकर रह गई। तब कैकेयी ने ही रामचन्द्रजी से कहा—"परन्तु मैं तो इससे सतुष्ट नहीं हूँ। हाय, उस समय तक मैं किससे क्या कह सुन सकूँगी। लोगों की बातों का उत्तर कैसे दूँगी ?

"जीती है अब भी किया मैने ही।" (पृ० २५६)

शब्दार्थ—चेटी = दासी, सेविका। प्रत्याहार = किसी काम को न होने के बराबर करना।

भावार्थ—कैकेयी के कथन के उत्तर में उर्मिला ने कहा "हे मा अब भी तुम्हारी उर्मिला बेटी जीवित है। मेरे हृदय में बस यही अभिलाषा है कि मैं तुम्हारे इन चरणो की सेविका बनी रहूँ।"

कैकेयी ने कहा 'हे उर्मिला रानी तेरे दुख ने मुझे पहिले ही रुला दिया और अब यह कहकर तो तूने मुझे काँटों पर सुला दिया है।" उर्मिला को अपने हृदय से लगाते हुए कैकेयी ने पुनः कहा, "आ मेरी सबसे अधिक दुखिनी आ जा, मुझसे पिस कर चन्दन लता की भाँति मुझ पर छा जा। (यद्यपि तेरे दुख का कारण मैं ही हूँ फिर भी चन्दन लता के समान तू मेरे

हृदय को तृप्त करना चाहती है।) हे पुत्र मैंने ही तुम्हें बनवास दिया है। अब मैं ही उस बनवास के आदेश को वापिस लेती हूँ।

"पर रघुकुल में ये भ्राता।" (पृ० २५६-२५७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—रामचन्द्रजी बोले "परन्तु रघुकुल में जो वचन दिया जाता है वह क्या वापिस लौटाया जाता है। तुम इस प्रकार व्यर्थ ही क्यों विकल हो रही हो? प्रेम और कर्त्तव्य तो दो भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं। खैर इन सब बातों को जाने दो। अब भरत ही यह निर्णय करेंगे कि मेरा कथन उचित है अथवा तुम्हारा। हे माता मेरे और भरत के बीच में तुम सदैव ही पच बनती आई हो आज हमारे और तुम्हारे बीच में भरत निर्णायक बनेंगे।

"हा आर्य! भरत यह कितना? (पृ० २५७ २५८)

शब्दार्थ—आयास=परिश्रम। अनिरत=तत्परता रहित।

भावार्थ—राम द्वारा अपने को पच चुने जाने पर भरत बोले "हे आर्य भरत के भाग्य में क्या यही होना शेष रह गया था?" राम ने बीच में ही भरत को रोकते हुए कहा—बस भाई।" फिर कैकेयी को सम्बोधित करते हुए कहा, हे माँ, ये अब और क्या कहें?"

भरत ने कहा "आर्य कहने को तो बहुत सी सुख दुख पूर्ण बातें हैं परन्तु मैं उन्हें भला किस मुँह से कहूँ? फिर भी तुमसे इतनी विनय है घर लौट चलें।" रामचन्द्र जी बोले "तुम्हारे इस जाओ का क्या अर्थ है मुझे यह तो बतलाओ? उत्तर में भरत ने कहा "हे प्रभु मैं इस बन में तुम्हारे व्रत को पूर्ण करूँगा।"

भरत की यह बात सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा "तब क्या मैं व्रत पालन में अयोग्य, असमर्थ और तत्परता रहित हूँ।" भरत बोले "आपके सम्बन्ध में मेरा ऐसा सुनना भी पाप है। मैं क्या आपसे भिन्न हूँ?" भरत के उत्तर में रामचन्द्र जी बोले "परन्तु ऐसी शंका क्या मेरे लिए कष्ट प्रद नहीं है? हमारी तुम्हारी आत्मा एक है। परन्तु शरीर तो भिन्न भिन्न हैं।" भरत तब आवेश भरे स्वर में बोले "तब अपने शरीर पर मुझे तनिक भी मोह नहीं है। यह इसी कुटिया के आगे सड़कर नष्ट हो जाए। मेरे दुखी अनुगामी

प्राण तुम्हीं मे आकर मिल जाए ।"

रामचन्द्रजी ने कहा "हे भाई मेरे लिए तो तुम्हारा यह शरीर व्यर्थ नहीं है। मुझे तो इसकी आवश्यकता है। भरत ने उत्तर में कहा" यदि आपको मेरे इस शरीर से प्रयोजन है तो हे तात इस सेवक के शरीर का तनिक बोझ तो उतारो। तुम तो अपने विनोद में अपनी व्यथा को छिपा सकते हो, इतना परिश्रम करके भी नहीं थकते हो। पर मैं किस प्रकार और किसके लिए यह सब सहन करू। "रामचन्द्र जी बोले" मुझ जैसे बनकर अथवा मेरे लिए इस बोझ को सहन करलो। तुम्हारे लिए यह है ही कितना ?

शिष्टागम निष्फल सहसा जाऊं ।" (पृ० २५८)

शब्दार्थ—दृष्टि-मति—दृष्टि और बुद्धि । विफल गति = कार्य जी असफलता ।

भावार्थ—रामचन्द्र जी ने अपने बात के क्रम को जारी रखते हुए कहा सभ्य जनो का आगमन कभी निष्फल नहीं होता। इस प्रकार बन मे भी नागरिक भावों का उदय होता है। मेरी दृष्टि और बुद्धि सुदूर भविष्य की ओर देख रही है। हे वीर क्या तुम यह चाहते हो कि मैं अपने कार्य मे असफल रहूँ ? तुमने सदैव ही मेरे आदेश का पालन किया है, फिर आज तुम इस प्रकार व्यर्थ ही क्यो हट कर रहे को। अपने कर्त्तव्य पालन से मिलने वाला अपयश भी सुयश के समान है।

भरत ने उत्तर दिया "हे आर्य तुम्हारा यह भरत अत्यन्त विवश है। मैं सोच नहीं पा रहा कि क्या करू और क्या नहीं करू। कौन सा मार्ग मेरे लिए उचित है ? पल भर के लिए ठहरो, ऐसा न हो कि मैं सहसा ठगा जाकर घाटे मे रह जाऊँ ।"

सन्नाटा-सा आपको जिसका !" (पृ० २५८–२५९)

शब्दार्थ—जावालि=कश्यपवशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु थे। जरठ = वृद्ध । स्वजटिल = जटा युक्त । शीर्ष = सिर । मर्त्य = मानव प्राणी ।

भावार्थ—सभा में क्षण भर के लिए सन्नाटा छा गया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो क्षणभर के लिए काल भी इधर उधर न हिल सका। वृद्ध

जावालि को सभा का यह मौन सहना कठिन होगया। वे स्वय ही अपने जटा युक्त सिर को हिलाकर सहसा बोले "ओह" मेरी समझ में तो कुछ आता ही नहीं। लोग तो राज्य प्राप्त करने के लिए परस्पर लड़ते हैं यहाँ राज्य को लौटाने के लिए द्वद हो रहा है। राज्य के लिए तो लोग अपने पिता की हत्या करने में भी सकोच नहीं करते।"

इसके उत्तर में रामचन्द्र जी ने कहा 'हे मुने राज्य पर तो स्वार्थी जन ही मरते हैं।" यह त्याग करने की वस्तु तो नहीं है मुनि ने कहा। "तो हे मुनिराज, उसे भोग करने की वस्तु भी नहीं समझनी चाहिए।" राम ने कहा।

"मुनि जावालि बोले "हे तरुण तुम्हें राज्य प्राप्त करने में किस बात का भय और सकोच है?" राम ने उत्तर देते हुए कहा "हे वृद्ध मुनिराज मुझे उसी बात का भय और सकोच है, जिसका भय और सकोच आपको नहीं है।"

"पशु-पक्षी तक यह दुख है?" (पृ० २५६--२६०)

शब्दार्थ—चारुवाक्य=मधुर वाक्य बोलने वाले।

भावार्थ—राम के उत्तर में जावालि ने कहा "हे वीर, पशु पक्षी सभी अपनी स्वार्थ साधना में रत हैं।" राम उत्तर में विनोद पूर्वक बोले "हे धीर मुनिराज, न तो आप पक्षी है और न मैं पशु ही हूँ।" जावालि ने पुनः कहा "अपनी इच्छा के अनुसार ही कार्य करना और अपने मत की स्वतन्त्रता ही आर्यों की विशेषता रही है। हे पुत्र परलोक की ओर देखना व्यर्थ है। उधर से अपनी दृष्टि हटाकर इसी लोक में सुख प्राप्त करने की चेष्टा करो।"

"परन्तु हे मुनिराज क्या यही ससार सब कुछ है आप स्वय देखिए।" राम ने कहा। उत्तर मे मुनि बोले "यह ससार नाशवान है, इसीलिए तो कह रहा हूँ। राम ने बीच में कहा जब यह ससार नाशवान है तो क्यों हम अथवा हमारा राज्य नष्ट होने से बच जाता। मुनि बोले कि जब सब कुछ भस्म हो जाने को है तब दुख को त्याग कर तुम सुखों का ही भोग क्यों न करो।" रामचन्द्र जी ने कहा "परन्तु हे मुनिराज आप यह तो बतलावें कि इस ससार में सुख है कहाँ?" उत्तर में जावालि बोले "जनसाधारण जिसमें सुख की कल्पना करें वहीं सुख है।" परन्तु आप

हमें जन साधारण न समझें, जन साधारण के हित के लिए भले ही हमें जानें।" रामचन्द्रजी ने कहा। मुनि बोले, "यह तुम्हारी भावुकता मात्र है"। राम ने उत्तर दिया हमे इस भावुकता में ही सुख है। हे मधुरवाक्य बोलने वाले चारु वाक्य फिर दूसरे के सुख में इस प्रकार का दुख क्यों ?

तब वामदेव फूलकर ऊले।" (पृ० २६०)

शब्दार्थ—वामदेव=एक वैदिक ऋषि। ऊले=गर्व से भर उठे।

भावार्थ—तब ऋषि वामदेव ने कहा, "यह भावुकता धन्य है। भला इसका मूल्य कौन चुका सकता है। ससार में जितने भी महान कार्य हुए हैं भावुक जनों के हाथों हुए हैं। ज्ञानी तो इस ससार को सारहीन मानकर व्यर्थ ही रोते रहते हैं।"

इतने में ही लक्ष्मण ने जावालि के सम्बन्ध में रामचन्द्र जी से कहा "हे आर्य आप किससे यह व्यर्थ का विवाद कर रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन तो सुख की खोज में ही नष्ट हो जाता है। जिन्हें जहाँ सुख प्राप्त हो वे उसका वहाँ भोग करें। परन्तु कृपा कर स्वय सुख प्राप्त करते हुए दूसरों के भी सुख का ध्यान रखें। हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि सब एक सत्ता के शासन के अधीन हैं। यह शासन स्वय शासक पर भी है। अतः उसे भी गर्व और अहंकार में नहीं फूलना चाहिए।

हंसकर जावालि तुम्हारी पूरी।" (पृ० २६०--२६१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—तब जावालि मुनि ने हसकर वसिष्ट की ओर देखा। गुरु ने मुस्करा कर कहा कि ये मेरे शिष्य हैं। मन भर कर चाहे जैसे इनकी परीक्षा ले लीजिए। आवश्यक समझें तो स्वय अपनी इच्छानुसार दीक्षा प्रदान कीजिए। रामचन्द्र जी यह सुनकर बोले "शिक्षा नाम की वस्तु तो सदैव अपूर्ण ही बनी रहती है।" फिर भरत की ओर उन्मुख होते हुए उन्होने कहा "हे भरत श्रेष्ठ अब तुम अपनी अधूरी बात को पूरा करो।"

"हे देव, विफल ये उनके।" (पृ० २६१)

शब्दार्थ—पितुराजा=पिता की आज्ञा। ऊना=तुच्छ,अधूरा। मडन=शृङ्गार करना।

भावार्थ—राम की बात का उत्तर देते हुए भरत ने कहा "हे देव बार बार असफल होकर भी इस सेवक के मन की आशा यहाँ अटकी हुई है। हे आर्य बनमें रहकर जबतक आप पिता की आज्ञा का पालन करें, तबतक आर्या (सीता) ही चलकर अपने राज्य को सभाले।

इस पर रामचन्द्र जी ने कहा "इससे अच्छा और प्रस्ताव तुम्हारा क्या हो सकता है? इससे तो हमें, तुम्हें और सभी को सन्तोष है।" इतने में ही सीता जी बोल उठी "परन्तु इस प्रस्ताव से मुझे सतोष हो जब न। मैं तो इसे अपने लिए उचित नहीं समझती।" यह कहती हुई सीता जी की सरल दृष्टि कुछ टेढी हो गई। उन्होने पुनः कहा "अभी मुनि जावालि कह ही चुके हैं कि सबको अपना स्वार्थ देखना चाहिए। वे अपना यह सिद्धान्त मुझपर लागू कर सकते हैं हैं।"

सीता जी की बात सुनकर भरत ने कहा "हे भाभी तुम पर तो मुझे दूना भरोसा है। तुम अपने भरत के अपूर्ण मातृ पद को अयोध्या चलकर पूर्ण करो। जो कोशल राज्य की अधीश्वरी है, हाय आज उनका यह वेश कैसा हुआ है? यह शृङ्गार है अथवा उसके शेष चिन्ह रह गये हैं?"

"देवर, न रुलाओ तुम पाओ।" (पृ० २६२)

शब्दार्थ—कातर=दुखी। अरुण=प्रभात कालीन सूर्य। खडमयी=खाड से भरी, मीठी।

भावार्थ-सीता जी ने कहा, "हे देवर इस प्रकार रोकर मुझे मत रुलाओ। हे तात, पुरुष होकर इस प्रकार कातर बन रहे हो। तुम स्वय ही जानते हो कि राज्य का मूल्य कितना है? फिर क्यो उस धूल के समान तुच्छ राज्य के लिए मुझसे कह रहे हो? मेरा सच्चा शृङ्गार तो मेरा यह सिन्दूर विन्दु है, इसे देखो, सौ सौ रत्नो से भी अधिक यह मूल्यवान है। जिस प्रकार प्रकृतिएँ स्वत ही सैकड़ो चन्द्र और तारो को प्रभात कालीन सूर्य के सम्मुख त्याग देती है, उसी प्रकार मेरे इस प्रभात कालीन सूर्य के समान सिन्दूर बिन्दु के आगे सौ सौ चन्द्रहार भी तुच्छ हैं। अपने इस सुप्रभात के समान सौभाग्य की वेला और जाग्रत जीवन की मिठास भरी क्रीड़ा के क्षणो में मैं आओ तुम्हे ममता के समान आशीर्वाद प्रदान करूँ। आओ, अपने बड़े भाई से भी

अधिक उज्ज्वल यश के तुम भागी बनो।

"मैं अनुगृहीत हूँ   गें न्यायी।" (पृ० २६२)

शब्दार्थ—कर्कश=कठोर।

भावार्थ—सीता का आशीर्वाद ग्रहण करते हुए भरत ने कहा "हे देवी! मैं आपका कृतज्ञ हूँ। इससे अधिक मैं क्या कहूँ? मेरी तो यही अभिलाषा है कि अपने प्रत्येक जन्म में मैं आपके चरणों का सेवक बना रहूँ। हे यशस्विनी, आप तो मुझे यश से भी अधिक मान्य हैं। परन्तु मैं अब जो अपने निवेदन से भरे वचन कहने वाला हूँ, वे आपको कठोर न जान पड़े। अपने श्री मुख से अभी आपने मुझे यश प्रदान किया है। अतः आर्य रामचन्द्र जी मेरा दुख से उद्धार कर मुझे सुख प्रदान करें। फिर राम को सम्बोधित करते हुए भरत ने कहा "हे राघवेन्द्र यह सेवक तो सदा ही आपका अनुयायी रहा है। हे न्यायी अ त में दया दड से भी अधिक कठिन होती है।

"क्या कुछ दिन   मैं सबसे।" (पृ० २६३)

शब्दार्थ—दया घृष्ट लक्षण=दया के कारण घृष्टता के लक्षणों से युक्त भरत।

भावार्थ—भरत के कथन के उत्तर में रामचन्द्र जी ने कहा "हे भाई क्या कुछ दिनों के लिए भी राज्य, भार स्वरूप है। देखो अर्द्ध रात्रि होने आई है। (परिणाम की उत्सुकता में सभी जाग रहे हैं)। अतः इस सम्बन्ध में शीघ्र निर्णय करना चाहिए।

भरत ने कहा "हे देव मैं राज्य को भार स्वरूप समझ कर नहीं रोता। मैं तो आपके इन चरणों के लिए ही विकल बन रहा हूँ। आपकी दया से घृष्ट यह भरत यदि आपका प्रिय बना रहा तो राज्य का रक्षण तो प्रभु की पादुकाएं ही कर लेगीं। हे आर्य जैसी आपकी इच्छा। आप सुख पूर्वक वन वास करें। यह सेवक राजमहल मे रहते हुए भी बिना किसी सुख का अनुभव किये, इस दुख से संघर्ष करेगा। बस मुझे आपकी पादुकाएँ मिल जाएं जिन्हें मैं अयोध्या ले जाऊं। उन्हीं के सहारे आपकी अवधि के समय को पार कर सकूँ। आज से ही सम्पूर्ण अयोध्या अवधि मय हो जाय। हे स्वामी अपनी पादुकाएँ प्रदान कर मुझे इस योग्य बना दीजिए कि मैं म ह खोलकर

सबसे कुछ कह सकूं।

"रे भाई, तूने नियत ही मात्रा।" (२६३)

शब्दार्थ—अम्बु=जल। अधिष्टित=नियुक्त, स्थापित।

भावार्थ—भरत की यह प्रार्थना सुनकर रामचन्द्रजी बोले "हे भाई तूने तो मुझे भी रुला दिया। हे अपूर्व निर्लोभी मुझे तुमसे यही शका थी। हे अनुरागी क्या तेरी यही अभिलाषा थी? हे त्यागी तेरी भाभी के ये वचन कि तुम अग्रज से भी अधिक यश पाओ सत्य सिद्ध हों।

भरत ने राम से पूछते हुए कहा कि इस अभिषेक जल की स्थापना कहाँ की जाए? इस जल की इच्छा तो यही है कि वह यहीं तीर्थ बन कर रहे। हम सब भी यही चाहते हैं कि तनिक तपोवन की यात्रा करें। राम ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा। परन्तु यात्रा करने की अवधि सीमित ही रहे। तुम्हारे लिए बन में अनिश्चित काल तक रहना उचित भी नहीं।

तब सबने दृश्य मिलते थे! (पृ० २६४)

शब्दार्थ—श्लाघ्य=प्रशसनीय। अनिल=वायु। अनन्त=आकाश। द्विज=पक्षी। हाटक पट=स्वर्ण वस्त्र। दिनेश=सूर्य। मुकुल=कमल।

भावार्थ—तब सबने जी भर कर भरत और राम का जय जयकार किया। भरत का इच्छित वस्तु से वंचित होना भी सबने प्रशसनीय ही माना। सबने सतोष की सास लेकर अपूर्व विश्राम को प्राप्त किया। चित्रकूट पर्वत ने शुद्ध जल और हवा प्रदान कर सबकी सेवा की। आकाश ने वह अपूर्व दृश्य धारण कर अपने नेत्र मूद लिए। चन्द्रमा चाँदनी के रूप में निश्चित हँसी हँसकर कहीं छिप गया। पक्षी चहक उठे, क्योंकि प्रभात का नया प्रकाश चारों ओर छा गया। सूर्य की सुनहरी किरणों में पर्वत माला ने जैसे स्वर्ण के वस्त्र धारण कर लिए हों। उदित हुए सूर्य के रूप में जैसे गिरिमाला ने सिन्दूर चढा लिया हो। जन समुदाय अपने को देख-देख कर प्रसन्न हो रहा था। अतिथि इधर उधर विचर कर सुख प्राप्त कर रहे थे और गा रहे थे "हम इस पवित्र भूमि पर आकर कृतार्थ हो गए।" इस प्रकार सभी व्यक्तियों के मन रूपी कमल खिले हुए थे। (प्रभात होने पर कमल विकसते हैं।) उन्हें स्थान-

स्थान पर मुनियों के दर्शन और नए-नए प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते थे।

गुरु-जन-समीप   समझ में आया! (पृ० २६४--२६५)

शब्दार्थ—साऽलाघव=चतुरता से। ताल सम्पुटक=दोने। कर निकर=सूर्य की किरणों का समूह। सरोज पुटी = कमल का संपुट। कोणास्थ = कोने में स्थिति।

भावार्थ—एक अवसर पर जब रामचन्द्र जी गुरुजनों के निकट थे, तब जनक सुता सीता जी ने लक्ष्मण जी से बड़े चातुर्य पूर्ण शब्दों में कहा—हे आर्य, तनिक (कुटिया में से) दोने तो ले आना। मुझे बहिनों को बन की भेंट देनी है।

जो आज्ञा! यह कहकर लक्ष्मण ने तुरन्त कुटी में उसी प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार सूर्य का किरण समूह कमल संपुट में प्रवेश करता है। परन्तु कुटिया में जाते ही उन्हें जो देखने को मिला वह कोने में स्थित रेखा मात्र उर्मिला की क्षीण काया थी। क्षण भर के लिए तो वे समझ ही नहीं सके कि यह उर्मिला की काया है अथवा उसकी छाया ही शेष रह गई है।

"मेरे उपवन के   दृग जल में। (पृ० २६५)

शब्दार्थ—भीग उठी=पुलकित हो उठी।

भावार्थ—लक्ष्मण को किंकर्त्तव्य विमूढ़ दशा में देखकर उर्मिला पुकार उठी—मेरे उपवन में विचरने वाले हरिण आज बन के वासी बन गए हैं। इसीलिए शायद अपने पुराने उपवन में आने से डरते हैं कि कहीं बन्धन में न बाँध लिये जायँ। परन्तु उर्मिला विश्वास दिलाती है कि मैं तुम्हें नहीं बाँधूंगी, क्योंकि मैंने अपनी इच्छा से तुम्हें बन का वासी बनाया है। इसलिए अपना भय त्याग दो।" उर्मिला की यह बात सुन कर शीघ्र ही लक्ष्मण दौड़ कर पत्नी के चरणों पर जा गिरे। पत्नी उर्मिला भी अपने आँसुओं से प्रियतम के चरणों को भिगोती हुई पुलकित हो उठी।

"वन में तनिक   है सतोष।" (पृ० २६५)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लक्ष्मण ने उर्मिला से कहा—कुछ समय वन में तनिक तपस्या

इस छन्द से दूसरा अर्थ यह भी ध्वनित होता है कि जब कवि करुणा से सहानुभूति पूर्वक उसके रुदन का कारण पूछता है तो उत्तर में वह अधिक रोने लगती है। (यह मनौवैज्ञानिक सत्य है कि जब किसी रोते हुए व्यक्ति से सहानुभूति पूर्वक उसके रोने का कारण पूछा जाता है तो वह उत्तर में और अधिक रोने लगता है।) करुणा का कहना है कि कोई भी कवि मेरी विभूति का वर्णन पूर्ण रूप से नहीं कर सकता। अतः भवभूति जैसा कवि भी उसके वर्णन में पूर्णता कैसे पा सकता है। अतः भवभूति के 'उत्तर रामचरित' के पश्चात भी साकेत के नवम सर्ग में करुणा का रोना उचित ही है।

विशेष—यहाँ नवम सर्ग में करुण रस की प्रधानता होने के कारण कवि ने करुण रस के महान कवि 'भवभूति का स्मरण किया है। यहाँ उत्तर तथा भवभूति में श्लेष है।

अवध को .... व्रत ले लिया! (पृ० २६८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्रजी अपने त्याग पूर्ण कार्य से अयोध्या को अपना कर अर्थात् अयोध्या वासियों की श्रद्धा को और अधिक प्राप्त कर वन को भी तपस्वियों के योग्य तपोवन सा बना दिया। उधर भरत ने भी रामचन्द्र जी के अनन्य प्रेम के कारण राज महलों में भी वन के समान जीवन व्यतीत करने का व्रत ले लिया।

विशेष—त्याग से अपनाने में विरोधाभास अलकार है।

स्वामि-सहित .... उपवन भी! (पृ० २६८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—पति के साथ रहते हुए सीता जी ने घने और भयानक जगलें को भी नदन वन के रूप में स्वीकार किया। उधर वधू उर्मिला ने उन्हीं के लिए अपने उपवन को भी वन बना लिया।

अपने अतुलित .... 'जाओ!' (पृ० २६८)

शब्दार्थ—अश्रु सलिल=अश्रु जल।

भावार्थ—कैकेयी के कृत्य से अतुलनीय रघुकुल में जो काला कलक उत्पन्न

हुआ था, उसे पूर्ण रूप से इस कुल बाला उर्मिला ने अपने अश्रु जल से ो डाला।

• कभी तो उर्मिला जाग्रत अवस्था में अपने प्रियतम लक्ष्मण की अवधि के समय को भूलकर उन्हें अपने पास बुलाती हुई कहती थी आओ। परन्तु स्वप्न में पति को अपने पास देखकर वह चौंक उठती और कहती, जाओ।

विशेष—डा० नगेन्द्र का इस सम्बन्ध में कथन है—उसकी (उर्मिला) मनोदशा में इस समय एक प्रकार की जटिलता है, वहाँ आदर्श और कामना के बीच में संघर्ष है। आदर्श कहता है 'जाओ' और भाव कहता है 'आओ'।

अपनी इन पंक्तियों के लिए स्वयं कवि के शब्द हैं—मैंने तो यहाँ यही कहना चाहा था कि जागते में उर्मिला भले ही अवधि की सुध बुध भूल कर पीड़ा के कारण कभी अपने प्रिय को पुकार उठती थी, परन्तु स्वप्न में भी वह अवधि के पहले उनका आना नहीं चाहती थी। यदि वे कभी स्वप्न में आ जाते तो 'जाओ' कहकर वह जाग उठती थी।

मानस-मंदिर आत्मज्ञान। (पृ० २६८-२६९)

शब्दार्थ—मानस=मन, हृदय। थाप=स्थापित कर। विषम=कठोर। आत्म ज्ञान=स्वयं का ज्ञान, तत्वचिंतन।

भावार्थ—उस सती उर्मिला ने अपने हृदय मंदिर में पति की मूर्त्ति स्थापित की और प्रतिमा की उपासना के लिए स्वयं ही आरती बनकर विरह की अग्नि से जलती थी। इस प्रकार उर्मिला का जीवन सतत प्रज्ज्वलित विरह की दीप शिखा बन गया था।

उसके नेत्रों में प्रियतम की मूर्त्ति ही समाई रहती थी। समस्त सुख के भोग उसने भुला दिए थे। उसका कठिन वियोग योग से भी अधिक आगे बढ़ गया था। योग में जिस प्रकार चित्त की वृत्तियाँ एक लक्ष्य पर केन्द्रित हो जाती हैं उसी प्रकार उर्मिला की चित्त वृत्तियाँ भी अपने पति पर केन्द्रित हो गई थी।

उर्मिला को आठ पहर चौसठ घड़ी अपने पति का ही ध्यान रहता था। वह अपने पति के ध्यान में इतनी लीन रहती थी कि वह स्वयं अपने को भूल गई थी। पति स्मरण से मानो आत्मज्ञान (तत्वचिंतन) भी पीछे छूट गया था।

'उस रुदन्ती ... सुवर्ण के ? (पृ० २६६)

शब्दार्थ—रुदन्ती=एक औषधि विशेष, जिसके सम्बन्ध में यह का जाता है कि यदि इसका रस तॉबे पर मलकर उसे आंच में तपाया जाय त तॉबा सोना बन जाता है। विक्षेप=भावोन्माद। वर्ण-वर्ण=एक एक अक्षर विभूषण=आभूषण, सुख देने वाले। कर्ण=कान।

भावार्थ—जिस प्रकार रुदती औषधि के रस का लेप करके ताम्र प को अग्नि में तपाने पर वह सोना बन जाता है, और उससे कानों के अने सुन्दर आभूषण बनाए जा सकते हैं उसी प्रकार रुदन्ती औषधि के समा विरहिणी उर्मिला के रुदन के रस के लेप से तथा उसके पति वियोग ज भावातिरेक के ताप से उन कवियों की जिनका प्रत्येक शब्द कानों को सु प्रदान करने वाला होता है ताम्र पत्र पर रची गई उर्मिला की वियोग क स्वतः ही स्वर्ण रूप बन जाती है।

अलकार=रूपक, श्लेष काकुवक्रोक्ति।

पहले आँखों ... कब थे ? (पृ० २६६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सयोग के समय प्रियतम लक्ष्मण उर्मिला की आँखों में ब रहते थे, अर्थात वे सदा नेत्रों के सामने ही रहते थे। परन्तु अब वियोग व अवस्था में लक्ष्मण स्मृति रूप उर्मिला के मन में छाये हुए हैं। वे जैसे उर्मिल के नेत्रों से उसके मन रूपी सरोवर में कूदकर मग्न हो गए हैं। उर्मिला आँसू छींटे हैं जो लक्ष्मण के कूदने पर उड़े हैं। जिस प्रकार छींटे उड़ने प सरोवर में हलचल होती है उसी प्रकार ये और भी उर्मिला की मानसिक हल चल के परिणाम हैं।

अलकार-हेत्वपह्नुति।

उसे बहुत थी ... की ओट (पृ० २६६)

शब्दार्थ—दण्ड=डडा, साठ पल का समय।

भावार्थ—उर्मिला के विरह के कुछ क्षण भी दड की चोट के समा बहुत अधिक कष्ट प्रद थे। किसी प्रकार सखि अपने यत्नों की ओट से विर की इस चोट से उर्मिला की रक्षा कर रही थी।

अलङ्कार—रूपक और श्लेष।

मिलाप था ... दार-दारा! (पृ० २६६)

शब्दार्थ—धनी = पति। बनी = बधू। विपञ्ची = वीणा। दिर-दार-दारा= वीणा से निकलने वाला स्वर।

भावार्थ—उर्मिला के लिये अभी पति का मिलन दूर था। उस वधू के लिए तो रुदन ही वश की बात रह गया था। जिस प्रकार गायक की अँगुलियो के स्पर्श करते ही वीणा से 'दिर, दार, दारा' की ध्वनि निकलती है वैसे ही उर्मिला के शरीर को स्पर्श करते ही रुदन की ध्वनि निकलती है। इस प्रकार विलाप ही उर्मिला के जीवन की अपूर्व स्वर-साधना बन गया है।

सींचे ही बस ... भिगोता बहे! (पृ० २७०)

शब्दार्थ—कर्त्तरी = कैंची। यन्त्र जल=फव्वारे का जल। ससिक्त = सींचा हुआ। सोता=झरना।

भावार्थ—वियोग की वेदना के कारण उर्मिला का हृदय बहुत कोमल बन गया है। उसका कहना है कि मालिनें कलश लेकर केवल पौधों की सिंचाई ही करें। कैंची द्वारा उनकी काट-छाँट न करें। वृक्षों की डालियाँ स्वच्छन्द भाव से फलें, फूलें और हरी भरी लताएँ विकसित हों। क्रीड़ा-कुंज का पर्वत भी फव्वारे के जल से सींचा जाता रहे। हे सखि, मेरे जीवन का झरना भी उस क्रीड़ा-कुंज को भिगोता हुआ वहीं बहता रहे।

क्या-क्या होगा ... प्रवीणा! (पृ० २७०)

शब्दार्थ—तूली=तूलिका, चित्र बनाने वाली कूँची।

भावार्थ—उर्मिला कहती है "हे सखि, पति की अनुपस्थिति मे मेरे सदृश क्या होगा, मैं क्या बतलाऊँ? आज मेरा है ही क्या जिसे मैं अपना कह सकूँ? फिर भी तूलिका है, पुस्तिका है, वीणा है, चौथी मैं हूँ और पाँचवीं हे चतुर सखी तू है।

हुआ एक ... दिन-रात! (पृ० २७०)

शब्दार्थ—दुःस्वप्न=बुरा स्वप्न।

भावार्थ—हे सखि इस वियोग ने तो बुरे स्वप्न के समान उपद्रव खड़ा कर दिया है। जाग जाने पर भी दिन रात यह वैसा ही कष्ट प्रदान करता है।

खानपान तो ठीक कौन उपाय ? (पृ० २७०)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे सखि भोजन आदि तो नियत समय पर हो जाता है, परन्तु भोजन के उपरान्त जो विश्राम आवश्यक है उसका कौन उपाय करूँ ? अर्थात् वियोग से दग्ध उर्मिला को विश्राम कहाँ ?

अरी व्यर्थ है कौन खावे ? (पृ० २७०)

शब्दार्थ—व्यजनों=भोजन के पदार्थों। पाक=मिष्ठान्न।

भावार्थ—उर्मिला को अब भोजन में भी रुचि नहीं रही। इसलिए भोजन लाने वाली सखि से वह कहती है "अरी सखि इन विविध व्यजनों की प्रशसा करना मेरे लिए व्यर्थ ही है। इस थाल को मेरे सामने से हटा दे, इसे तू व्यर्थ ही लाई है। वास्तव में पकवान तो वे ही हैं जो बिना भूख होते हुए भी स्वादिष्ट होते हैं। परन्तु अब तू ही बता इस परिस्थिति में मैं इन पकवानों को कैसे खा सकती हूँ।

बनाती रसोई, अलोना-सलोना ? (पृ० २७१)

शब्दार्थ—अलोना = नमक रहित, स्वाद रहित। सलोना = नमकीन रसीला।

भावार्थ—कितना सुन्दर होता यदि मैं आज अपने हाथों रसोई बनाकर सभी को खिलाती। इसी कार्य से ही मुझे तृप्ति प्राप्त होती। मेरे लिए तो बस अब एक रोना ही शेष रह गया है। अपने अलोने-सलोने भोजन को मैं किसे खिलाऊँ ?

बन की भेंट ही जी से ! (पृ० २७१)

शब्दार्थ—जड़ी=गुड़मार बूटी, जिसके खाने पर गुड़ का स्वाद भी मिट्टी के समान लगता है। सभवत: चित्रकूट के प्रसग में सीताजी ने इस बूटी को उल्लेख उर्मिला से किया हो अथवा भेंट स्वरूप उसे प्रदान करदी हो।

भावार्थ—हे सखी मुझे जीजी से एक नई जड़ी बन की भेंट के रूप में प्राप्त हुई है। उसके खाने पर गुड़ जैसा स्वादिष्ट पदार्थ भी गोबर जैसा अस्वादिष्ट प्रतीत होता है। अर्थात् प्रिय के वियोग में उर्मिला को सभी वस्तुएँ बेस्वाद प्रतीत होती थीं। उसकी जिह्वा का स्वाद जाता रहा था।

रस हैं बहुत, भी रोग ! (पृ० २७१)

शब्दार्थ — रस=मधुर, तिक्त, अम्ल आदि भोजन के षड्रस, रसौषध। प्रयोक्ता=प्रियतम लक्ष्मण, राजवैद्य।

भावार्थ—हे सखि, रसौषधियाँ तो बहुत होती हैं परन्तु बिना राजवैद्य के उचित निर्देशानुसार इनका असंगत प्रयोग तो विष के समान हानिकारक होता है। इसी प्रकार षटरस व्यंजनो के भोग भी बिना प्रियतम के मेरे लिए रोग के समान हो गए हैं।

अलङ्कार—श्लेष।

लाई है क्षीर क्या हा ! (पृ० २७१)

शब्दार्थ—क्षीर=दूध। रक=गरीब।

भावार्थ—सखि उर्मिला के लिए दूध लाई है। उर्मिला कहती है "हे सखि यह दूध किसलिए लाई है ? मै इसे नहीं पिऊँगी। मुझे इस प्रकार दूध पिलाने का हठ मत कर। क्या तू ने मुझे कोई सफल हठी शिशु समझ रखा है, जो रक होकर भी राज्यशाली है। क्या हठी बालक की भाँति मुझे भी प्रलोभनो से बहलाया जा सकता है ? अर्थात् मेरे दूध पीने का कारण यह नहीं कि मैंने किसी रूठे हुए बालक की भाँति हठ ठान लिया हो। तूने ही तो मुझे तरुण विरहिणी माना है, जिसका विवाह एक वीर के साथ हुआ है। ऐसी विरहिणी के पास पति के लिए नेत्रों का जल ही पर्याप्त है। इन के रहते उसे और क्या चाहिए ?

चाहे फटाफटा धूलि तो डाली। (पृ० २७२)

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश, वस्त्र। अशून्य = रिक्त न होना। अनिल = वायु।

भावार्थ—अपने फटे वस्त्रो को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है "मेरे वस्त्र भले ही फटे हुए हो परन्तु वे आकाश की भाँति रिक्त नहीं हैं। क्योंकि कोई पवन उन पर आकर अपनी धूल तो डाल जाता है।

अम्बर के श्लिष्ट प्रयोग के अनुसार इन पक्तियो का यह भी अर्थ हो सकता है "मेरा अदृष्ट मुझसे फटाफटा अर्थात रुष्ट भले ही हो परन्तु वह सर्वथा रिक्त नहीं है। मुझे कुछ प्रदान ही कर रहा है। किसी पवन ने भला

यहाँ आकर धूल तो डाली है।

अलङ्कार—श्लेष।

धूलि-धूसर .... सुपात्र भी! (पृ० २७२)

शब्दार्थ—धूलिधूसर = धूल से भरा हुआ। मृन्मात्र = मिट्टी के समान। गात्र=शरीर।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे सखि यदि मेरे वस्त्र धूल से भरे हुए हैं तो इससे क्या? यह शरीर भी तो मात्र मिट्टी ही है। फिर ये वस्त्र उन वल्कलों से तो कहीं अधिक सुन्दर हैं (जिन्हें मेरे पति बन में पहिनते हैं)।

फटते हैं, ... विचार से? (पृ० २७२)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सभी वस्त्र व्यवहार में लाने से मैले होते हैं, फट जाते हैं, किन्तु क्या उन वस्त्रों को हम इसी विचार से पहनते हैं कि वे मैले हो जायँ फट जायँ। (यह तो वस्त्रों का सामान्य धर्म ही है।)

पिऊ ला, खाऊ ला .... पद मरूँ। (पृ० २७२)

शब्दार्थ—अर्णव=समुद्र।

भावार्थ—पति मिलन की उत्कट अभिलाषा हृदय में लिए उर्मिला अपनी सखी से कहती है "हे सखि तेरी इच्छानुसार ला खालूँ, पीलूँ, पहिन लूँ और सब कुछ करूँ। जिस प्रकार भी हो जीवित रहकर यह अवधि का समुद्र पार कर सकूँ। तू जो कहेगी वही स्वीकार करूँगी, परन्तु मुझे कोई उपाय बता, जिससे कि धैर्य धारण करूँ, जिससे कि किसी प्रकार मैं अपने प्रिय के चरणों में मर सकूँ।

रोती हैं और .... और पाऊँ? (पृ० २७२)

शब्दार्थ—देवर श्री=शत्रुघ्न। विजन=निर्जन।

भावार्थ—हे सखि मेरी अवस्था देखकर दुख से हीन मेरी तीनों सासें दुगने दुख से रोने लगती हैं। पहिले ही वे बहुत दुखी हैं परन्तु मेरे कारण उनका दुख दूना हो गया है। देवर श्री शत्रुघ्न दुख के भार से झुक जाते हैं सतप्त माँडवी और श्रुतिकीर्ति बहिने दुख भरे निश्वास छोड़ती हैं। परन्तु हे सखि तू ही बता, इस निर्जन को छोड़कर मैं दीन, हीन और पराश्रिता नारी

कहाँ जाऊँ, जहाँ रहकर मैं दूसरों को शान्ति प्रदान कर सकूँ तथा स्वय भी शान्त रह सकूँ ।

आई थी सखि .... होगा आप । (पृ० २७३)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—हे सखि मैं हर्ष और उल्लास लेकर इस अयोध्या में आई थी अब भला अपने दुखी और सतप्त निश्वास इसे देकर यहाँ से कैसे जा सकूँगी। ये प्राण वियोग वेदना का इतना ताप लेकर भला कहाँ जा सकेंगे ? यदि ये कहीं चले भी गए तो प्रिय के लौटने पर इन्हें भी अपने आप लौटना पड़ेगा ।

साल रही .... ही तुझको ।' (पृ० २७३)

शब्दार्थ--साल रही=वेदना दे रही ।

भावार्थ—हे सखि मेरे हृदय को माँ की चित्रकूट वाली वह झाँकी व्यथित बना रही है जब उन्होने मुझसे कहा था कि न तो तुझे वन ही मिला और न घर ही ।

जात तथा .... कर पाए । (पृ० २७३)

शब्दार्थ—जात=पुत्र । जामाता=दामाद ।

भावार्थ--मेरे पिता राजा जनक अपने जामाता भरत को अपना पुत्र ही मानते आए थे, इसीलिए वे राज्य मँझली माता कैकेयी को सौंपने की इच्छा से चित्रकूट आए थे परन्तु वे लज्जावश राज्य न सौंप सके ।

मिली मैं स्वामी .... हा ! रह गया ! (पृ० २७३)

शब्दार्थ--उपालम्भ=उलाहना ।

भावार्थ--जब मै चित्रकूट मे पति से मिली तो उनसे सँभलकर कुछ कह भी नहीं सकी । मेरे सारे उपालम्भ आँसुओं के रूप में गल कर बह गए । मेरी इस अवस्था को देखकर उनके हृदय में जो मूक दया उमड आई थी, उसी की पीडा के अनुभव की स्मृति मेरे पास बच रही है ।

न कुछ कह सकी .... हृदय मे । (पृ० २७३)

शब्दार्थ--सरल है ।

भावार्थ—न तो मैं अपने ही हृदय की बात कुछ कह सकी और न भय के कारण उनसे ही कुछ पूछ सकी । वे तो अपने हृदय की बात भूलकर दुख

भरे हृदय से मरे ही मन की बात कह उठे। मुझे जो कुछ कहना था वही उन्होंने कह डाला।

मिथिला मेरा हूँ भूल ! (पृ० २७४)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—चित्रकूट का स्मरण करती हुई उर्मिला कहती है कि मिथिला तो मेरा जन्मस्थान है तथा अयोध्या में मैं फूल के समान विकसित हुई हूँ। परन्तु इस चित्रकूट को अपने लिए क्या कहूँ ? इसका निर्णय करने से पूर्व ही मैं अपनी सुधबुध भूल जाती हूँ।

सिद्ध-शिलाओं उच्च उदार ! (पृ० २७४)

शब्दार्थ—तने=खड़े। आड = छाया।

भावार्थ—चित्रकूट पर्वत को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहने लगी "हे सिद्ध शिलाओं के आधार, हे उच्च उदार और पर्वतों के गौरव, तुझ पर अनेक ऊँचे-ऊँचे झाड़ हैं और छत्र की भाति पत्तों युक्त पेड़ पौधे खड़े हैं। तेरी छाया भी कितनी अपूर्व है। हे उच्च उदार पर्वतों के गौरव चित्रकूट अनेक प्राणी तुझ पर विहार करते हैं।"

घिर कर उच्च-उदार ! (पृ० २७४)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—तेरे चारों ओर घिर कर मेघ कैसी घोर गर्जना करता है। मोर नृत्य करते हुए गाते हैं। हे उच्च उदार पर्वतों में गौरव चित्रकूट फिर उनकी गहरी गुंजार चारो ओर गूँज उठती है।

नहलाती है उच्च-उदार ! (पृ० २७४)

शब्दार्थ—वृष्टि=वर्षा। आतप=धूप।

भावार्थ—हे उच्च उदार गौरवगिरि, आकाश का वर्षा जल तुझे स्नान कराता है। सूर्य, धूप की सृष्टि कर वर्षा जल को सुखाता हुआ मानो तेरे शरीर को पोंछता है। चन्द्रमा अपनी चाँदनी से तुझे शीतलता प्रदान करता है। ऋतुपति बसत तेरा शृंगार करता है।

विशेष—यहाँ मानवीयकरण के रूप में प्रकृति चित्रण दृष्टव्य है।

तू निर्झर के उच्च-उदार ! (पृ० २७५)

शब्दार्थ—दुकूल=वस्त्र । दरियों=गुफाओ ।

भावार्थ—हे उच्च उदार और पर्वतो के गौरव चित्रकूट तू झरने का दुपट्टा डालकर तथा अपनी गुफाओ के द्वार खोलकर, हाथ में कन्दमूल और फल फूल लेकर सबके मन के अनुकूल स्वागतार्थ खडा हुआ है ।

सुदृढ़, धातुमय, उच्च उदार ! (पृ० २७५)

शब्दार्थ—धातुमय=लोहे के समान । उपल=पत्थर । अन्तःस्तल=हृदय । समशीतोष्ण=सरदी गरमी में एक समान ।

भावार्थ—हे चित्रकूट पर्वत तेरा शरीर धातु और पत्थरो से बना हुआ होने के कारण अत्यन्त सुदृढ़ है । परन्तु बाहर से कठोर भी तू भीतर से निर्मल है क्योंकि झरने के रूप में तेरे हृदय से निर्मल जल की धारा प्रवाहित होती है । हे उच्चउदार गौरव गिरि तू सदैव ही अटल अचल और धीर गभीर सर्दी गर्मी में सदा एक-सा बना रहने वाला अर्थात् सुख दुख में सदा एक सा भाव रखने वाला और शाँति तथा सुख का सार है ।

विविध राग उच्च-उदार !(पृ० २७५)

शब्दार्थ—राग रजित=रगो से रगा हुआ । अभिराम=सुन्दर । विराग-साधन=वैराग्य का साधन । कामद=चित्रकूट का नाम, कामनाओ को पूर्ण करने वाला । अकाम=निष्काम, निस्वार्थी ।

भावार्थ—हे चित्रकूट पर्वत तुम विविध रगो से रजित अत्यन्त सुन्दर हो । तुम्हारे यहाँ रहकर वैराग्य सहज ही प्राप्त हो जाता है । तेरी गुफाए ही बन का निवास स्थान हैं । अपने कामद नाम के अनुरूप ही तू दूसरों की कामनाओ को पूर्ण करने वाला है परन्तु स्वय निष्काम ही है । हे उच्च उदार गौरव गिरि तुझे मेरा शत बार नमस्कार है ।

अलङ्कार—श्लेष और विरोधा भास ।

प्रोषित पतिकाएँ हो ले आ । (पृ० २७५)

शब्दार्थ—प्रोषित पतिकाएँ=वे नायिकाए जो परदेश मे रहने वाले पति के वियोग से दुखी हैं । प्रणयपुरस्सर = प्रेमपूर्वक ।

भावार्थ—हे सखि नगर मे जितनी भी प्रोषित पतिकाएँ हो उन्हें मेरी

ओर से निमत्रण दे आ। समान भाव के दुखी जनों के परस्पर मिलने पर दु
बटेगा ही। इसलिए जा प्रेम पूर्वक उन्हें ले आ।

विशेष—यहा उर्मिला की बिरह वेदना ने उसे जन-साधारण के अधि
निकट ला दिया है। इसीलिए तो वह प्रोषितपतिकाओं को आदेश देकर नट
प्रेमपूर्वक निमत्रण देकर बुलाती है।

सुख दे सकते मैं भी मेटूँ ? (पृ० २७६)

शब्दार्थ– सरल है।

भावार्थ—हे सखि इस अवस्था में दुखी जन ही मुझे सुख प्रदान क
सकते हैं। यहाँ क्या कोई दुखी नहीं है जिसका दुख मैं दूर कर सकूँ।

विशेष—वियोग ने उर्मिला के हृदय को अत्यन्त कोमल और उदार बन
दिया है। स्वय पीड़ित होने के कारण वह दूसरों की पीड़ा को भी कष्ट प्र
समझती है।

इतनी बड़ी हँसी-रोई ? (पृ० २७६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे सखी इतनी बड़ी नगरी में क्या ऐसी दु:खिनी नह
है जिसे मैं अपनी सखी बना सकू। जो मेरे ही समान सुखी और दुख
बनी हो।

मैं निज ललित कलाए उपवन मे ? (पृ० २७६)

शब्दार्थ—पुरबाला-शाला=नगर की बालिकाओं के लिए शाला।

भावार्थ—हे सखी कहीं मैं इस वियोग की वेदना में अपनी ललि
कलाएँ न भूल जाऊँ। इसलिए इस उपवन में ही नगर की बालिकाओं
लिए एक शाला क्यों न खुलवा दूँ, जहाँ मै उन्हें ललित कलाओं का अभ्या
करवाती रहूँ।

कौन सा दिखाऊ वाह वाह ? (पृ० २७६)

शब्दार्थ—अवगाह=बहुत गहरा। किवा = अथवा।

भावार्थ—हे सखि आज मेरे हृदय में चित्र रचना की अभिलापा जग
है। बता मै अपने चित्र में वन का कौनसा दृश्य दिखाऊँ ? क्या यह दृश
दिखाऊँ कि पथ मे कोई नाला पड़ा है, किनारे पर जेठ (रामचन्द्रजी) और

जीजी (सीता जी) खड़ी हैं। आर्य पुत्र (लक्ष्मण) जल की गहराई की थाह ले रहे हैं। अथवा वह दृश्य अङ्कित करूँ जहाँ सीताजी घूम कर प्रभु का सहारा लिए हुए खड़ी हों और स्वामी वेदना का भाव लिए उनका काँटा निकाल रहे हों। अथवा स्वामी लता को झुकाए हुए खड़े हों और जीजी उससे फूल तोड़ रही हों, प्रभु रामचन्द्रजी उन्हें वाह वाह कर प्रोत्साहित कर रहे हों।

विशेष—उर्मिला ने अपने इन चित्रों मे लक्ष्मण को राम और सीता की सेवा में निरत ही बतलाया है।

प्रिय ने सहज परीक्षा मेरी। (पृ० २७६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—उर्मिला अपने प्रणय को सम्बोधित करती हुई कहती है "हे प्रेम, प्रियतम ने अपने सहज गुणों से जो मुझे तेरी दीक्षा थी आज वे प्रतीक्षा द्वारा यहाँ उसी की (प्रेम की) परीक्षा ले रहे हैं। (यहा उर्मिला ने लक्ष्मण का प्रेम शब्दो द्वारा नहीं उनके सहज गुणो द्वारा प्राप्त किया था। गुरु अपने शिष्य को जिस बात की दीक्षा देता है उसकी परीक्षा भी लेता है। यहाँ लक्ष्मण उर्मिला की वियोग वेदना के रूप मे अपने द्वारा प्रदान किए गए उर्मिला के प्रेम की परीक्षा ले रहे हैं।)

जीवन के पहिले जब मेरी। (पृ० २७६)

शब्दार्थ—पाप-पात = पत्ते-पत्ते हेरी=देखी। स्वर्ण-रश्मियाँ=सुनहली किरणे। सेकर=सेवा कर के। समीरण = वायु। द्विज = पक्षीगण।

भावार्थ—प्रभातकाल की भाँति अपने जीवन के शैशव मे जब मैंने होश सभाला तब हरी भूमि के पत्ते पत्ते मे मैंने अपनी हृदयगति की झलक ही देखी। हरी भरी भूमि की भाँति ही मेरा मन भी हरा भरा था। उस समय मेरी दृष्टि स्वर्ण रश्मिया लेकर सृष्टि का चित्र खींच रही थी। मेरी दृष्टि में समस्त सृष्टि का स्वरूप सुनहला और सुख पूर्ण था। प्रकृति का पालनकारी रूप ही मेरे सामने था। प्रकृति अपने दयावान हृदय से विश्वरूपी अण्डे को उसी प्रकार से रही थी जैसे पक्षी अपने अण्डे को सेता है। वर्षा जल के रूप मे आकाश बूँद बूँद रस देकर तृण तृण को सींच रहा था। समय रूपी वायु

मेरी सुखी जीवन नौका को आगे बढा रहा था। ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता था त्यों त्यों मेरा सुख उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। उस प्रभात में पक्षीगण भी अपने दल बल सहित शुभ भावों की भेरी सी बजा रहे थे।

वह जीवन मध्यान्ह   जब मेरी। (पृ० २७७)

शब्दार्थ—जीवन मध्यान्ह = जीवन की दुपहरी, यौवन काल। श्रॉति-क्लॉति = विश्राम और थकावट। खेद=दुख। प्रस्वेद=पसीना।

भावार्थ—जिस प्रकार प्रभात के उपरान्त मध्याह्न काल आता है उसी प्रकार मेरे जीवन में शैशव के उपरान्त यौवन का समय आया है। सखि यह तो थकावट और विश्राम से भरा हुआ है। दुख और पसीने से पूर्ण प्रखर ताप इसमें छाया हुआ है। (उर्मिला के जीवन में अब दुख और सताप का प्रवेश होगया है।) अपने प्रारम्भिक जीवन में जो आनन्द हमें प्राप्त हुआ था वह अब जैसे खोगया। हमारे आनन्द के दिवस चले गए। परन्तु आनन्द खोकर भी उसके बदले में हम कुछ भी प्राप्त न कर सके। बदले में व्यथा ही हमे मिली। हम दोनों ओर से गए। न हमें माया ही मिली और न राम ही मिले। वह हर्ष अब कहा चला गया जो पहले मेरे जीवन के साथ बना रहता था। अब तो जीवन में यह विषाद ही छाया है।

वह कोइल   जब मेरी। (पृ० २७७)

शब्दार्थ—हूक = व्यथा। सुरमि=सुगंधि। उबल = गर्म होकर।

भावार्थ— जीवन के पहिले प्रभात में जब मेरी आखें खुली थी उस समय जो कोयल की कूक हृदय को आनन्द देती थी वही आज हृदय को व्यथित बना रही है। पूर्व और पश्चिम की लालिमा ऐसी प्रतीत होती है जैसे नभ अपने क्रोध की बर्षा कर रहा हो। सुख की नौका खेने वाला पवन आज दुख के निश्वास भर रहा है। सुरभि जैसे धूल फाक रही है। प्रखर मध्यान्ह के असीम ताप के कारण जलधारा उबल उबल कर सूखती जा रही है, फलतः पृथ्वी मृत्यु तुल्य होगई है। (विरहाग्नि से उर्मिला की जीवन धारा भी सूखती जा रही है और उसका शरीर मृत्यु तुल्य हो रहा है।) पत्ते तथा फूल सब विखर रहे हैं, अब किसी की भी कुशल नहीं जान पड़ती।

विशेष—यहा कवि ने विरहिणी की मनोदशा के अनुरूप ही सृष्टि के

पदार्थों का चित्रण किया है।

आगे जीवन की जब मेरी। (पृ० २७८)

शब्दार्थ—कोक=चकवा पक्षी।

भावार्थ—हे सखि, इस प्रखर मध्यान्ह के पश्चात् जीवन का सध्याकाल आयगा। देखे उसमे क्या होता है। तू कहती है कि चन्द्रमा का उदय होगा। अँधेरे में भी उजाला छा जायगा। अर्थात मेरा जीवन भी सुख के प्रकाश से भर जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि कुमुदिनी चन्द्रकिरणों को सिर माथे लेगी। चन्द्रमा का प्रकाश पाकर वह सन्तुष्ट बन जायगी। परन्तु मेरे शोक रूपी चक्रवाक की रखवाली तो तारे ही करे गे। (अर्थात् आखों की पुतलिया मेरे दुख का सॅभाले रहेंगी।) चक्रवाक का दुख तो सूर्योदय के होने पर ही मिट सकेगा, उसी प्रकार मेरा दुख भी पुनः जीवन का प्रभात होने पर ही दूर हो सकेगा। सखी उर्मिला को आश्वासन देती है कि सध्या के उपरान्त तो प्रभात का होना अनिवार्य ही है। उर्मिला कहती है "क्या सचमुच प्रभात होगा? तब तो यह दासी अवश्य ही कृतार्थ हो जायगी।

सखि, विहग दारिका मैं। (पृ० २७८)

शब्दार्थ—मुक्तिमानी = स्वतन्त्रता का गर्व। शठ = दुष्ट। सारिका = मैना। दारिका=पुत्री।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे सखि पिजरे के पक्षियों को उड़ा दे, जिससे कि वे सभी स्वतन्त्रता का गौरव अनुभव कर सके। इस दुष्ट तोते की वाणी तो सुन। यह 'हाय रूठो न रानी' की रट लगा रहा है (लक्ष्मण ने रूठो न रानी कहकर उर्मिला को मनाया होगा। तोता आज उसी की नकल कर रहा है। वह समझता है कि उर्मिला रूठ गई है, इसीलिए वह पक्षियों को उड़ा रही है।) फिर उर्मिला तोते को सम्बोधित कर कहती है—हे तोते मै जनक पुरी की मैना से तेरा व्याह करदूँ। तथापि मै स्वय वहाँ की परित्यक्ता पुत्री हूँ। (उर्मिला को दूसरे ही क्षण अपनी स्थिति का भान होता है। वह सोचती है कि कहीं जनकपुरी की मैना की वही दशा न हो जो मेरी हुई। मेरी भाँति उसे भी कहीं परित्यक्ता न होना पड़े)।

कह विहग, गये वे ! (पृ० २७८)

शब्दार्थ- विकच=खिले हुए । कृती=कर्म शील । कात=पति । मृगया=शिकार । अहेरी=शिकारी ।

भावार्थ--उर्मिला तोते से पूछती है--हे पक्षी तुझे शिक्षा देने वाले, तेरे वे प्रसन्न मुख वाले मेरे कर्मण्य पति कहाँ हैं ? तोता उत्तर देता है कि शिकार में । उर्मिला कहती है-क्या सचमुच वे मृगया मे हैं । यदि वास्तविकता यही है तो वे निश्चित ही नए शिकारी हैं । अन्यथा वे इस घायल हरिणी (उर्मिला) को यों ही छोड़कर कैसे चले जाते ? (शिकारी अपने घायल शिकार को छोड़ कर नहीं जाता ।

निहार सखि, हैं धनी । (पृ० २७८)

शब्दार्थ—श्रवण = कान । पिशुन = चुगल खोर । खगि=मैना । धृति=धैर्य । धनी=पति ।

भावार्थ—हे सखि देख, यह मैना बिना कुछ कहे शात बनी हुई है । परन्तु अपने कान मेरी ओर लगा रखे हैं । इधर मैं तो विरह के कारण बावली सी हो रही हूँ जिससे मेरे मुँह से न जाने क्या अनमनी बात निकल जाए जिसे कहीं वह बाद में समय असमय न दुहराया करे । यह कहने को तो मधुर भाषिणी बनती है । परन्तु इसे निश्चित तू चुगल खोर समझ ।

उर्मिला की बात सुनकर सखि कहती है कि धैर्य धारण करो । ''सखि के 'धरो' शब्द को सारिका भी दुहराने लगती है । जिसे सुनकर उर्मिला कहती है, 'हे मैना क्या धारण करूँ । मेरा धैर्य तो स्वामी अपने साथ ले गए ।'

तुझ-पर मुझ क्रूर वहीं ! (पृ० २७९)

शब्दार्थ—शशक=खरगोश ।

भावार्थ—खरगोश को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है ''अरे तुझे मालुम है वे स्वामी आज कहाँ गए जो बड़े प्यार से मुझ पर और तुझ पर हाथ फेरा करते थे । मुझे और तुझे प्यार किया करते थे । वे दूर नहीं हैं, तेरी ही जन्म भूमि वन मे है । जा तू भी उस जगल में जा और उनसे कहना कि निष्ठुर उर्मिला अभी तक अयोध्या मे ही है । वह साथ नहीं आई ।

लेते गए क्यों बनते सहारे। (पृ० ७६)

शब्दार्थ—पोत=जहाज। दुखाब्धि=दुख का समुद्र। कपोत = कबूतर।

भावार्थ—कबूतर को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है-हे कबूतर ारे तो वे सदैव गुण गाया करते थे। फिर वे तुम्हे अपने साथ क्यो न गए। यदि तुम उनके साथ होते तो प्रियतम के पत्र रूपी जहाज को ले आते तके सहारे मैं इस दुःख के समुद्र को पार कर लेती।

औरों की क्या है चखती। (पृ० २७६)

शब्दार्थ—सरल है!

भावार्थ—उर्मिला कहती है औरो की बात क्या कही जाय, अपनी ही व एक सी नहीं रहती है। यह चकोरि कभी चन्द्रामृत का पान करती है, ी अगारे चखती है।

विहग उड़ना भी इनके रहे। (पृ० २७६)

शब्दार्थ—वद्ध=बधनमय होकर।

भावार्थ—हे सखि ये पक्षी तो बधन मे पड़कर उडना भी भूल गए हैं। द अब इन्हें मुक्त करूँ तो यह इनके प्रति और भी निष्ठुरता होगी। (उड़ सकने ने कारण इनका जीवन अरक्षित हो जायगा।) इनके परिवार के स्य इन्हें भूल गए हैं और ये भी उन्हें भूल बैठे हैं। समय के प्रवाह मे इनके नन की सभी स्मृतियाँ बह गई हैं। बस हमीं अब इनके जीवन के साथी र मित्र रह गए हैं।

मेरे उर तुम लाल! (पृ० २७६)

शब्दार्थ—बाल गोपाल= बाल बच्चे किन्तु यहाँ पर अश, छोटे टुकड़े। नियों=मादाओं। लाल = छोटी सी चिड़िया।

भावार्थ—लाल नामक चिड़िया को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती -हे लाल पक्षियों तुम अगारो के समान मेरे हृदय की वेदना के ही अश न पड़ते हो। अतः मेरे हृदय के ताप के प्रतीक बने होने के कारण तुम ों अपनी मादाओं में पले रहो।

वदने, तू भी प्राण धनी। (पृ० २८०)

शब्दार्थ हीरकनी=हीरे का टुकड़ा। विशिख अनी=बाण की नोक।

दिन रुधिर के रग के समान लाल लेख लिख कर डूब गया। उसके डूबने से आकाश रूपी समुद्र में जो बुलबुले उठे हैं वे ही ये तारे हैं।

विशेष–उर्मिला अपनी मनोदशा के अनुकूल ही सध्या कालीन लालिमा को दुख के लेख के रूप में देखती है।

दीपक-संग .... का हमको ? (पृ० २८१)

शब्दार्थ—शलभ=पतग। सत्व=सतोगुण। तम=तमोगुण अन्धकार।

भावार्थ—सखि को दीपक जलाते हुए देखकर उर्मिला कहती है--हे सखि दीपक मत जला क्योंकि इससे दीपक के साथ पतगे भी जलेंगे। हमें तो अन्धकार या तमोगुण को सतोगुण की सहायता से दूर करना चाहिए। फिर दीपक जलाने की आवश्यकता ही नहीं है। प्रियतम के बिना मुझे क्या देखना और दिखाना है। अतः हमें प्रकाश का करना ही क्या है।

दोनों ओर .... प्रेम पलता है। (पृ० २८१)

शब्दार्थ—सीस=सिर, यहाँ दीपक की लौ से तात्पर्य है। दहता=जलता। विह्वलता=व्याकुलता।

भावार्थ—प्रेम दोनों पक्षों में होता है। यदि एक ओर पतग दीपक की लौ पर जलकर मर मिटता है तो दूसरी ओर दीपक की शिखा भी जलती रहती है। दीपक पतग से मना करते हुए कहता है–हे भाई तू व्यर्थ में ही क्यों जलता है। परन्तु पतग दीपक की बात पर ध्यान न देकर जल ही जाता है। पतग के हृदय में प्रेम की कितनी व्याकुलता है। इस प्रकार प्रेम दोनों पक्षों में होता है।

बचकर हाय .... प्रेम पलता है (पृ० २८२)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—क्षुद्र पतग दीप शिखा पर न जले तो क्या करे ? अपने प्रेम को छोड़कर यह किस भाँति जीवित रह सकता है ? जीवित रहना तो उसके लिए मृत्यु से भी कठोर है। क्या वह अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए प्रेम के मार्ग का त्याग कर दे जले नहीं और क्या करे ? क्या दीप शिखा पर मर मिटने की उसकी साध उसके जीवन की असफलता है ? नहीं यह तो उसकी विजय है। प्रेम दोनों ओर से होता है।

कहता है   प्रेम पलता है। (पृ० २८२)

शब्दार्थ—मन मारे=उदासीन होकर।

भावार्थ—पतग दीपक की बातों से उदासीन होकर कहता है-यद्यपि तुम
और मैं छोटा हूँ, किन्तु फिर भी क्या प्रेम की वेदी पर मुझे अपने प्राणों
निछावर करने का अधिकार नहीं है। प्रेम की शरण में जाने पर धोखा
होता। प्रेम तो दोनो ओर समान रूप से पलता है।

दीपक के जलने   प्रेम पलता। है (पृ० २८२)

शब्दार्थ--जीवन की लाली=जीवन की सुन्दरता। पतग-भाग्य-लिपि-
=पतग का भाग्य निराशा और दुर्दैव की कालिमा से युक्त है।

भावार्थ—दीपक के जलने मे हे सखि! फिर भी सुन्दरता और जीने की
है किन्तु पतग का भाग्य निराशा और दुर्दैव की कालिमा से भरा हुआ
इसे भला कौन मिटा सकता है? प्रेम दोनो ओर समानरूप से पलता है।

जगती वणिग्वृत्ति   प्रेम पलता है। (पृ० २८२)

शब्दार्थ--वणिग्वृत्ति=व्यावसायिक भावना।

भावार्थ—मुझे व्यवसायियों की लाभ हानि की सासारिक भावना से
है। यह वृत्ति उसी से प्रेम करती है जिससे कुछ स्वार्थ होता है, कुछ
होने की आशा होती है। (इसलिए दीपक की सब प्रशसा करते हैं
कि उससे लाभ होता है। परन्तु पतगे से कोई लाभ नहीं होता, इसलिए
त्याग की कोई सराहना नहीं करता) वास्तव मे ऐसी भावना मनुष्य के
को नहीं उसके परिणाम को देखती है। मुझे यही बुरा लगता है। प्रेम
प्रकार दोनो ओर समान रूप से होता है।

विशेष—यहाँ दीपक और पतग की इस अपूर्व प्रेम कहानी मे उर्मिला
ने अपने प्रेम के स्वरूप की व्यजना की है। यहाँ लक्ष्मण मानो दीपक
समान जलकर अपने प्रेम का परिचय दे रहे हैं। उनके जलने मे
जीवन की चमक है। ससार उनके त्याग की सराहना करता
इधर उर्मिला भी शलभ के समान लक्ष्मण की प्रेम शिखा पर अपने
को होम रही है। परन्तु उसके भाग्य मे तो निराशा और दुर्भाग्य का
अन्धकार है। फिर भी प्रेम तो दोनो ओर समान रूप से ही विकसित

हो रहा है।

बता अरी, झख मार। (पृ० २८३)

शब्दार्थ—रार=लड़ाई। झख मार = हार कर।

भावार्थ—रात्रि मे व्याकुल होती हुई उर्मिला अपनी सखि से कहती है "हे सखि बता अब मै क्या करू। इस रात्रि ने जैसे मुझसे युद्ध ही ठान लिया है। बता, इससे डर जाऊ अथवा आसू पीकर दीनता की याचना करूँ। या हार मानकर चुपचाप बैठ जाऊँ।

क्या क्षण विफल बनाऊ? (पृ० २८३)

शब्दार्थ—जनाऊँ=प्रगट करूँ। क्षणदा=रात्रि।

भावार्थ—निद्रा में उर्मिला के पल-पल पर चोकने पर सखि इसका बोध उसे कराती है। उर्मिला कहती है "क्या सचमुच मै क्षण क्षण मे चौंक रही हूँ। तू ने मुझसे आज ही यह कहा है। यदि तेरा कथन सत्य है हे सखि बता क्या इस प्रकार पल पल पर चौंककर मैं अपना जीवित रहना सिद्ध न करूँ, क्या इस रात्रि के दुख देने के कार्य को विफल बना दूँ? (यदि मैं सोती रहूँगी तो रात्रि फिर किस प्रकार मुझे विरह की व्यथा दे सकेगी?)

अरी, सुरभि की सेज। (पृ० २८३)

शब्दार्थ—सुरभि=सुगन्धि। सहेज=सँभाल कर।

भावार्थ—उमिला कहती है "हे सुरभि, अपने अगो को समाल कर तू यहाँ से लौट जा। तू तो सदैव फूलों में पली है और यह काँटों की शय्या है। यहाँ तेरा अग इन काँटों से क्षत विक्षत हो जायगा।

विशेष – सयोग काल में सुरभि उर्मिला के लिए वाछनीय थी पर वियोग की अवस्था मे उसका क्या महत्व? स्वय फूलो मे पली उर्मिला आज काँटों की सेज पर सोई हुई है। वह नहीं चाहती कि फूलों में पली सुरभि इन काँटों की सेज पर आए। इसीलिए वह उसे अपने से दूर रखना चाहती है।

यथार्थ था नई-पुरानी। (पृ० २८३)

शब्दार्थ—अलीक=मिथ्या, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

भावार्थ—हे सखि सयोग काल मे प्रियतम के साथ जो हर्ष और उल्लास

भरी घड़ियाँ बिताई थीं वे सपना बन गई हैं। परन्तु जिस वियोग काल का
[मान भी नहीं किया था वह यथार्थ बनकर जीवन का अग बन गया
। हे सखि प्रिय के साथ बाले दिनो की स्मृति अब कहानी बनकर रह गई
तू वही पुरानी होकर भी सदैव नवीन बनी रहने वाली कहानी सुना।
अलकार—नई-पुरानी मे विरोधा भास है।

आओ हो ... हैं बाँट। (पृ० २८३)

शब्दार्थ—विराट=विशाल। अर्घ्य = पूजा में देने योग्य सामिग्री।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि यदि प्रिय न आए तो कोई बात नहीं,
प्रेय के विराट स्वप्न तुम्ही आओ। आँसुओं का अर्घ्य लिए ये आँखे तुम्हारी
[प्रती]क्षा कर रही हैं।

आ जा, मेरी ... निदिया गूँगी! (पृ० २८४)

शब्दार्थ—अर्द्ध चन्द्र = आधे चन्द्रमा, यहाँ पर गर्दन पकड कर बाहर
[नि]कालना। सलोना रस = आँसू।

भावार्थ—नींद को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है अपने मुख से
[कु]छ न कहने वाली हे गूंगी निदिया मेरे पास आ। मै तेरा प्रेम सहित स्वागत
[कर] तुझे चन्द्र खिलौना दूँगी। यदि तू प्रियतम के आने पर आएगी तब तो
[अ]पमान के साथ निकाली जायगी। तब तो प्रिय से प्रेमालाप करते ही
[रा]त्रि व्यतीत हो जायगी। उस समय तेरी भला क्या आवश्यकता होगी?
[प]रन्तु आज तू यदि स्वप्न में मेरे प्रियतम को ले आवेगी तो मैं उन्हे तुझसे ही
[प्रा]प्त कर लूगीं। मै स्वप्न मे ही उन्हें पाकर सतुष्ट हो जाऊँगी, क्योंकि व्रत
[पू]र्ण करने से पूर्व प्रत्यक्ष अवस्था मे उनका मिलना मै नहीं चाहती। इसलिए
मेरी गूगी निदिया आजा।

मेरे पलक रूपी पावड़ो पर पैर रखती हुई हे नींद आ और तनिक नेत्रो
के सलोने रस इन आसुओ का स्वाद चख। मुझ दुखिया की ओर तनिक दृष्टि
[प]ात कर। मै अपने को तुझ पर न्यौछावर कर दूँगी। हे मेरी गूगी निद्रा
आजा।

हाय! हृदय को ... तू वहाँ। (पृ० २८४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—उर्मिला हृदय को थाम कर छाती पर हाथ रखती हुई सोना चाहती है, परन्तु सखि इस प्रकार सोने के लिए मना करती है। उर्मिला कहती है "हे सखि तू छाती पर हाथ रखकर सोने के लिए मना करती है, क्योंकि इस प्रकार बुरे स्वप्न दिखलाई पड़ते हैं। तब तो मैं अपनी इस हृदय वेदना को रोकने के लिए हृदय को थाम कर भी नहीं सो सकती।

स्नेह जलाता है यह बत्ती! (पृ० २८५)

शब्दार्थ—राई रत्ती=सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु। साख=प्रतिष्ठा।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि तेल दीपक की बत्ती को प्रज्वलित करता है। फिर भी उसमें वह शक्ति है जिसके कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी दृष्टि गोचर हो जाती है। इसी प्रकार प्रेम जब हृदय रूपी घर में अपनी लौ जगाता है, तब अन्तःकरण प्रकाश मान हो जाता है। उसकी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म बन जाती है।

दीपक की बत्ती को सम्बोधित कर उर्मिला कहती है हे सखि अंधकार में भी तू अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखती है। प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के समय तू अपने को मिटाकर सूर्य की किरणों में मिल जाती है। सूर्य की किरणों द्वारा तेरे ही त्याग का प्रकाश जैसे पत्ती पत्ती पर प्रकाश मान होता है। स्नेह ही दीपक की बत्ती को जलाता है।

होने दे निज यह बत्ती! (पृ० २८५)

शब्दार्थ—शिखा=चोटी, लौ। अंचल=वस्त्र। तत्ती=गर्म।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे बत्ती भय से कंपित मत बन। मैं तुझे बुझने न दूँगी। तू मेरे वस्त्र की ओट ले ले। जिस प्रकार एक एक ईंट लेकर हम कोसों तक फैलते हुए दुर्ग का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार तेरे सञ्चित थोड़े थोड़े प्रकाश से प्रकाश की विशाल पुंज राशि का निर्माण होगा। इसलिए हे बत्ती तू ठंडी होकर बुझ मत। तप्त होकर जलती रह।

विशेष—उर्मिला की अवस्था भी इस दीपक की बत्ती के समान है। दुख के अन्धकार में वह अपनी प्रतिष्ठा रखते हुए प्रियतम के चरणों में मिल जाना चाहती है। प्रियतम का सहारा लेकर वह अपने जीवन को चंचल नहीं बनाना चाहती। और न वह अपने जीवन के प्रकाश को बुझाना ही

चाहती है।

हाथ ! न आया गिनूँ प्रभात ? (२८५)

शब्दार्थ—उडुगण=तारे।

हे सखि रात्रि तो समाप्त हो गई पर कोई स्वप्न ही नहीं दिखलाई पड़ा। तारे भी विलीन हो गये। और रात्रि। रात्रि तो ये तारे गिन गिन कर काट दी थी, पर अब यह प्रभात का समय क्या गिनकर काटूँगी ?

चचल भी वह गोला। (पृ० २८५)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—चचल होने पर भी इन किरणों का चरित्र कितना भोला और पवित्र है। अपने पवित्र चरित्र की साक्षी देने के लिए ही तो उन्होने अपने हाथ में बालारुण के रूप में लाल लाल दहकता हुआ गोला उठा लिया है।

विशेष—प्राचीन काल में अपने सतीत्व की साक्षी देने के लिए नारिया गोले को अग्नि मे लाल करके हाथ से उठातीं थी। 'राजस्थान' मे इस विधि को 'धीज' कहा जाता है। चचल किरणें भी इसी प्रकार लाल गोला उठाकर अपने चरित्र की साक्षी दे रही हैं।

अलङ्कार—विरोधाभास।

सखि, नील डरता डरता ! (पृ० २८६)

शब्दार्थ—नील नभस्सर आकाश रूपी नील सरोवर। तारक मौक्तिक = तारे रूपी मोती। हिम-विन्दु=ओस की बूँदें। कर=हाथ, किरण।

भावार्थ—प्रभात होने पर उर्मिला कहती है सखि नीले आकाश में यह सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मान सरोवर में कोई हस तैरता हुआ उतर रहा हो। अब तो आकाश में तारे भी दृष्टि गोचर नहीं होते हैं। मालूम होता है जैसे इस सूर्य रूपी हस ने इन तारे रूपी मोतियों को चुग लिया हो जिनको चुगने के लिए वह निकला था। ओस की जो बूँदे शेष रह गई थीं, इसने उनको भी अपने पास रख लिया। (रवि किरणों से ओस की बूँदे सूख जाती हैं।) पृथ्वी पर गिरती हुई इस सूर्य की किरणें अब धीरे-धीरे फैल रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सूर्य रूपी हस अपने हाथ पृथ्वी पर इसलिए डरता हुआ डाल रहा है कि कहीं उसके हाथ में पृथ्वी के काँटे नहीं चुभ जाएँ।

क्योंकि आकाश जहाँ निष्कटक है पृथ्वी कटकाकीर्ण है।

विशेप—श्री कन्हैयालाल सहल के शब्दों में "ऊपर के सवैये में श्लेष लाघव से रूपक तो सिद्ध हो गया (नहीं तो कहना पड़ता सूर्य रूपी हस) पर वेचारे हँस की दुर्दशा हो गई। दूसरी पक्ति मे कहा गया है कि हस तारे रूपी मोतियों को चरता चरता निकला। 'चरना' शब्द बैलों के लिए आता है। हसों के लिए तो मोती चुगना ही प्रयुक्त होता है। 'कर डाल रहा डरता डरता' में भी कर श्लिष्ट शब्द है जो हाथ और किरण दोनो के रूप में प्रयुक्त हुआ है पर यहाँ भी देखने की बात यह है कि हस पजे से मोती नहीं चुग सकता, चोंच से ही चुग सकता है। वैसे नाद सौंदर्य आदि की दृष्टि से यह दुर्मिल सवैया बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।"

अलकार = श्लेष और रूपक।

भीगी या स्वर ताल! (पृ० २८६)

शब्दार्थ—अलिनी=भ्रमरी। नलिनी=कमलिनी।

भावार्थ—हे सखि इस भ्रमरी की पाख मेरी भाति रोने से आसुओं से भीगी है अथवा फूलों के पराग से सनी है। हे सखि जैसे मेरे नेत्र प्रिय मार्ग की प्रतीक्षा करते हुए खुले हुए हैं, उसी प्रकार क्या इस कमलिनी के नेत्र भी अपने आराध्य सूर्य का देखने के लिए खुले हुए हैं अथवा वे नेत्र सूर्य के नेत्र से उलझ गए (लग गए) हैं।

उर्मिला कहती है कि हम कुछ समय तो परिश्रम और उद्यम करके व्यतीत करते हैं और कुछ समय विश्राम करके। परन्तु अब तो हमने रो-रोकर ही अपने जीवन के स्वर-ताल नष्ट कर दिए।

अलकार--श्लेष और विरोधाभास।

ओह! मरा चलने लगी है! (पृ० २८६)

शब्दार्थ—बराक=वेचारा। जरा-जड़ता=वृद्धावस्था की निष्क्रियता।

भावार्थ—उर्मिला कहती है "ओह यह वेचारा बसन्त तो मरा जा रहा है। मृत्यु के अवसर पर जिस प्रकार गला रुँध जाता है, मुँह से शब्द नहीं निकलता उसी प्रकार इस बसन्त का गला रुँध गया है। देखो इसके ज्वर का ताप बढ़ने लगा है और वृद्धावस्था की सी निष्क्रियता इसमे आ गई है

ासन्न व्यक्ति की भाँति अब यह ऊँची-ऊँची साँसें भर रहा है। (बसन्त न्तिम काल में गर्मी का ताप बढ़ने लगता है और गर्म लूएँ चलने ी हैं।)

तपोयोगि, उशीर की आड ? (पृ० २८६-२८७)

शब्दार्थ—उशीर=खस की टट्टी।

भावार्थ—हे ग्रीष्म रूपी योगी आओ, तुम्हारा स्वागत है। तुम्हीं सब के आधार हो। उसकी उर्वराशक्ति को बनाए रखने वाले हो। जिस र योगी वासनाओं और विकारों को जलाकर भस्म कर देता है उसी प्रकार भी जहाँ कहीं कूडा-कर्कट होता है उसे जलाकर भस्म कर देते हो।

सखि द्वारा गर्मी के ताप से बचने के लिए खस की टट्टी का प्रयोग करने सलाह देने पर उर्मिला कहती है "ग्रीष्म रूपी तपस्वी अतिथि बनकर रे द्वार पर आया है। उसका उचित स्वागत करने के स्थान पर तू घर का ही बन्द कर रही है। क्या अपने अतिथि से विमुख हो खस की टट्टी में कर बैठ जाना मेरे लिए उचित होगा ?

विशेष—बसन्त की मधुर ऋतु उर्मिला को सुहावनी नहीं लगती, परन्तु म का वह स्वागत करती है। ग्रीष्म के समान ताप से दग्ध विरहिणी के ए यह उचित ही है।

ठेल मुझे न उजियाली ? (पृ० २८७)

शब्दार्थ—अन्ध-अवनि-गर्भ-गृह=अन्धकार से भरे पृथ्वी के गर्भ-गृह ति तहखाना। हिमांशु मुख=चन्द्रमुख।

भावार्थ—हे सखि ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए तू मुझे अन्धकार से तहखाने में अकेली मत ले जा। आज उस तहखाने को प्रकाशित करने ा प्रियतम का चन्द्रमुख तो वहाँ है ही नहीं, फिर मैं वहाँ जाकर क्या ँगी ? कौन मुझे वहाँ शीतलता और प्रकाश देगा ?

आकाश-जाल रहा मही। (पृ० २८७)

शब्दार्थ—तन्तुवाय=मकडा।

भावार्थ—आज तो यह तना हुआ आकाश सूर्य रूपी मकड़े का जाल गया है। मक्खी की भाँति इस जाल में फँसी हुई पृथ्वी को यह सूर्य रूपी

मकड़ा अपने किरण रूपी पैरों से मार रहा है। पृथ्वी जाल में फसी मक्खी की भाँति अत्यन्त व्याकुल हो रही है।

अलङ्कार—रूपक।

लपट से भट   दीन भरे, भरे। (पृ० २८७)

शब्दार्थ—रूख=वृक्ष।

भावार्थ—ग्रीष्म की लपटों से वृक्ष जले ही जाते हैं। नदी नाले भी सूख रहे हैं। जल के अभाव में हिरण और मछलियाँ विकल होकर मरणासन्न हो रही हैं। परन्तु हरिण और मछलियों के नेत्रों के समान मेरे ये दीन नेत्र व्यर्थ ही आँसुओं से भरे हुए हैं। (इनका जल, जल के अभाव से पीड़ित, विकल, प्राणियों के कुछ काम नहीं आ रहा।)

या तो पेड़   न जायगा। (पृ० २८७)

शब्दार्थ—उष्मानिल=गर्म हवा।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि यह ग्रीष्म की वायु या तो इतनी तीव्र चलेगी कि पेड़ ही उखड़ जायँगे, अथवा यह बिल्कुल ही बन्द हो जायगी जिससे पत्ता भी नहीं हिलेगा। हाय यह ग्रीष्म की वायु बिना धूल उड़ाए नहीं जायगी। (यह उष्मानिल मानो विरह दग्ध उर्मिला को जलाकर उसकी राख उड़ाए बिना नहीं जायगी।)

गृह वापी कहती   मैं दूँगी ? (पृ० २८७)

शब्दार्थ—गृहवापी=महल की बावड़ी। पक=कीचड़।

भावार्थ—ग्रीष्म ऋतु में सूखी हुई महल की बावड़ी मानो उर्मिला से कहती है "जब मे भरी रहती हूँ तब भला खाली क्यों न हूँगी ? जब मैं भरी हुई थी तब मैंने तुम्हें कमल दिए थे अब सूख जाने पर यह कीचड़ किसे दूँगी ? यह भी तुम्हें मुझसे लेना होगा।

दिन जो मुझको   क्यों न भोगूँगी ? (पृ० २८८)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—हे सखि भाग्य जो कुछ मुझे प्रदान करेगा उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी। जब मैंने सुखों का भोग किया है तब मैं भला दुख क्यों न उठाऊँगी।

आलि, इसी वापी भी सिहरे। (पृ० २८८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे सखि इस बावड़ी मे हम दोनों ने (उर्मिला और लक्ष्मण) हंसों के समान बार-बार जल विहार किया है। जल क्रीड़ा के समय शरीर पर पड़ने वाले उन छींटो की याद करके आज भी मेरा शरीर हर्ष से सिहर उठता है।

चन्द्रकान्त मणियाँ सबके शृङ्गार। (पृ० २८८)

शब्दार्थ—चन्द्रकात=लक्ष्मणजी।

भावार्थ—सखि उर्मिला को ग्रीष्म के ताप से बचाने के लिए चन्द्रकात मणियों से युक्त आभूषण पहनाना चाहती है। परन्तु उर्मिला उनका तिरस्कार करती हुई कहती है "हे सखि इन चन्द्रकात मणियो को दूर हटा। ये चन्द्रकात मणियाँ तो मुझे पत्थर मारने के समान हैं। चन्द्रमा के समान काति वाले और सबके शृङ्गार मेरे प्रियतम तो पहिले आवे। उनकी अनुपस्थिति में तो ये मणियाँ पत्थर ही है। क्योंकि बिना चन्द्रकात के चन्द्रकांत मणियो का क्या महत्त्व ?

हृदयस्थित स्वामी क्या चर्चा ? (पृ० २८८)

शब्दार्थ—अर्चा=पूजा।

भावार्थ—विरह ताप से उर्मिला की रक्षा करने के लिए सखि उर्मिला के हृदय पर चन्दन लगाती है और कहती है कि इस प्रकार हृदय में वास करने वाले प्रियतम की पूजा होगी। उर्मिला कहती है "हे सखि इस प्रकार हृदय में निरन्तर वास करने वाले प्रियतम की पूजा उचित ही है। परन्तु उनकी पूजा में एक चन्दन की ही क्या आवश्यकता है, सम्पूर्ण मन ही उन पर क्यों नहीं चढा दिया जाय ?

बँधकर घुलना बस घुलना ! (पृ० २८८)

शब्दार्थ—कर्पूरवर्त्ति=कपूर की बाती।

भावार्थ—कपूर की बत्ती को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है "हे कपूर की वती, बन्द रहकर तू घुल जाती है, प्रकाश नहीं कर पाती। परन्तु खुलने पर एक पल के लिए जल कर तू प्रकाश का दान करती है। मेरे भाग्य

तो प्रियतम के गौरव का प्रसाद ही है। (लक्ष्मण यदि गौरव मार्ग पर न बढते तो उर्मिला को वियोग के दिन क्यों देखने पड़ते ?) हे सखि वियोग की इस कटुता में भी मुझे मधुर स्मृतियों की मिठास ही मिलती है। उस पर मैं न्यौछावर हूँ।

अलकार—यहाँ 'गौरव' और 'लघुता' तथा 'कटुता' और मिठास में विरोधाभास है।

तप, मुझसे ही उपहार। (पृ० २६०)

शब्दार्थ—ताप=तपस्या, ग्रीष्म ऋतु की तपन। परिपक्वता=पूर्णतया पकना।

भावार्थ—हे ग्रीष्म ऋतु तेरे ताप से भली प्रकार पक कर और मीठे बन कर हमारे सभी फल प्रियतम की भेंट बनें। (बन चारी लक्ष्मण के लिए फलों की भेंट ही उचित है।)

तप के श्लिष्ट अर्थ तपस्या से यह अर्थ भी ध्वनित होता है। उर्मिला कहती है कि हे तप, हमारी तपस्या के सारे फल प्रियतम को ही समर्पित हों।

पड़ी है लम्बी नाम जपना। (पृ० २६१)

शब्दार्थ—सारग=एक ऐसा शब्द है जो कोकिल, मयूर चातक आदि कई अर्थों में प्रयुक्त होता है यहाँ चातक के अर्थ में। स्वरित=गूंजता हुआ।

भावार्थ—चातक को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है 'हे चातक मेरे मिलने के मार्ग में तो अभी लम्बी अवधि पड़ी हुई है। मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है। गला सूख कर रूखा बन गया है। मेरे प्रिय मुझसे दूर हैं परन्तु हे सारग तेरे लिए वर्षा ऋतु समीप है जिससे कि तेरी प्यास शीघ्र ही बुझने वाली है। इसीलिए बड़े उत्साह से तू अपने प्रिय घन की रटन लगा रहा है। तनिक मुझे भी तू अपना स्वर देदे जिससे तेरी भाँति मैं भी अपने प्रिय का नाम जोर जोर से जपना शुरू करूँ।

कहती मैं, कल-कल्लोल। (पृ० २६१)

शब्दार्थ—बोल=स्वर। श्रुति-पुट=सुनने के लिए कान खोलना। पट-खोल=उत्सुक होकर। अरुन=लाल। पाडु=पीले। सन्न = सन्नाटे में मग्न। भूगोल-खगोल=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड। हिन्दोल=हिंडोला।

भावार्थ—उर्मिला कह रही है कि हे चातकि यदि मैं अपने आँसुओं की खारी बूँदो से तेरे स्वर का मूल्य चुका सकती तो तुझसे बोलने के लिए कहती। तुम्हारे स्वर की समता मोती भी नहीं कर सकते, फिर भला आसू उनका मूल्य कैसे चुका सकेंगे ? फिर भी अपनी असमर्थता को जानकर भी मैं तुझसे यही अनुरोध करती हूँ कि तू इस झाड़ी के झुरमुट में अपने मधुर स्वर से रस की धारा प्रवाहित कर। तेरा स्वर सुनने के लिए मेरे हृदय की पूर्व स्मृतियाँ कान खोलकर बड़ी उत्सुकता से खड़ी हैं। तेरे स्वर ने उन क्षीण प्राय पूर्व स्मृतियों में नव जीवन का सचार कर दिया है। तभी तो वियोग वेदना से उनके जो कपोल पीले पड़ गए थे वे अब लाल पड़ गए हैं। सैकड़ों स्वप्नों की भांति हृदय की प्रसुप्त भावनाए स्वय चैतन्य होकर जाग उठी हैं। फिर भी यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरे लिए सन्नाटे में ही निमग्न है। हे चातकि (पिउ पिउ स्वर ध्वनि बंद करके) मुझे वेदना सुख से वञ्चित मत कर। अपने हृदय रूपी हिंडोले को बढ़ा। तेरे स्वर में जो प्रिय के प्रति अनुराग की भाव लहरियाँ हैं, वही तेरे हृदय में हैं।

विशेष—श्रुति पुट पाडु कपोल में छायावादी शैली के आधार पर भावनाओं का मानवीकरण द्रष्टव्य है।

चातकि, मुझको ... थी गान ! (पृ० २६१)

शब्दार्थ—भान=ज्ञान।

भावार्थ—हे चातकि मुझे आज विरह के इन दिनों मे ही तेरी वाणी भावों का वास्तविक ज्ञान हुआ। अब तक मै तेरे स्वर को हृदय के उल्लास भरा गीत समझ रही थी वह तो तेरे हृदय का रुदन निकला।

घूम उठे हैं ... सब ओर ! (पृ० २६१)

शब्दार्थ—शून्य=आकाश।

भावार्थ—आकाश में चारों ओर मेघ उमड़ घुमड़ कर छा गए हैं। न जाने किसके गरम उच्छ्वास हैं। (भाव यह है कि इन बादलों के रूप में विरहिणी की गरम निश्वासे ही भाप बन कर छा गई है)।

मेरी ही पृथ्वी ... का पानी। (पृ० २६२)

शब्दार्थ—धूम=धुआ।

भावार्थ—बरसते हुए मेघों को देखकर उर्मिला कहती है कि हे सखि यह आकाश मेरी ही पृथ्वी का पानी ले लेकर बरस रहा है और इस प्रकार आज दानी बनने का गौरव प्राप्त कर रहा है। ये घूमते हुए बादल भी तो मेरी ही धरती के धूए से बने हैं जोकि हाथियो की भाँति गरज कर और अभिमान से झूमते हुए वर्षा जल के रूप में अपने मद को बरसा रहे हैं।

अब विश्राम करें **का पानी।** (पृ० २६२)

शब्दार्थ—निस्तन्द्र=तद्रारहित। मृदुमद=मध्यम से उतरे हुए स्वर को सगीत में मद्र स्वर कहते हैं।

भावार्थ—आकाश पर मेघ छा गए हैं इसलिए सूर्य चन्द्रमा विश्राम करे। अपनी तन्द्रा त्यागकर नए अकुर जग उठे। हे वीर बादलो अपने मृदु मन्द्र स्वर में कोई नई कहानी सुनाओ। यह मेरी ही पृथ्वी का पानी है।

बरस घटा, **का पानी।** (पृ० २६२)

शब्दार्थ—अवनि=पृथ्वी।

भावार्थ—हे घटा तुम बरसो। मैं तुम्हारे साथ अपने आसुओं की जल वर्षा करती हुई बरसूँगी। हम दोनों के वर्षा जल से पृथ्वी के सभी अङ्ग सरस हो जायँ। सब के समान कदाचित मेरे हृदय मे भी हर्ष भरी उमङ्ग छा जायँ। यह मेरी ही पृथ्वी का पानी है।

विशेष—अन्य कवियों की विरहिणी नायिकाएँ जहा बादलों को कोसती हैं वहा गुप्तजी की विरहिणी उर्मिला उनसे सात्वना प्राप्त करती है।

दरसो परसो **जन, बरसो।** (पृ० २६३)

शब्दार्थ—परसो=स्पर्श करो। जीर्ण-शीर्ण=दुर्बल और जर्जर। भाद्र=भाद्रमास। भद्र=हाथी। हस्ति=हाथी। अँजन=काजल। विभजन=नष्ट करने वाले। उदग्र=प्रचड। जगजननी=दुर्गा। अग्रस्तन = स्तन के अग्र भाग। प्रत्यो-वर्त्तन=लौट आना। शिखिनर्त्तन=मोरो को नचाने वाले। चिन्मय=चेतनामय मृण्मय=मिट्टी के बने हुए। घट = घड़ा।

भावार्थ—बादलों को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है "हे बादलों तुम हमें दर्शन दो और हमें स्पर्श करते हुए बरसो। तुम बरस कर ग्रीष्म के ताप से जीर्ण शीर्ण जगत मे नव यौवन की सरसता का सचार करो। हे आ

तुम उमड़ कर घुमड़ उठो और हे पवित्र सावन तुम बरसो। (प्रायः आषाढ़ मास में बादल आकाश पर छाये हुए रहते हैं और सावन में वे बरसते हैं।) हे भाद्र मास के भद्र हाथी, आश्विन के चित्रित हस्ति और स्वाति के घन तुम बरसो। सृष्टि के नेत्रों के लिए हे सुखकारी अंजन, जगती के ताप को विनष्ट करने वाले हे मेघ बरसो। व्यग्र और प्रचण्ड जगज्जननी के अग्रस्तन स्वरूप हे बादलो तुम बरसो। (यहाँ मेघों के श्याम वर्ण की समानता स्तन के अग्र भाग की श्यामता से की गई है।) बीते हुए सुकाल को पुनः लेकर ाने वाले हे शिखि-नर्त्तन बरसो। हे संसार को जाग्रति का संदेश सुनाने ाले, आज सृष्टि के समस्त जड़ और चैतन्य पदार्थों में नयी शक्ति और नई ेतना भर दो। और बरसो। पृथ्वी के पुलक भाव को प्रगट करते हुए मिट्टी उगने वाले जड़ अंकुर तुम्हारे ही कारण चेतना मय बनेंगे। इस प्रकार ड़ पृथ्वी को तुम्हीं चिन्मय बनाने वाले हो। हे बादल अपनी वर्षा की बूंदों े रूप में ऐसे मंत्र पढ़ो, ऐसे छींटे दो जिससे कि संसार का सोया हुआ जीवन ाग उठे। हे मेघ तुम प्रतिपल बरस कर त्रिभुवन के मानसरूपी घट को अपने स से पूर्णतः भर दो। आज जन जन के प्रेमी जन भीगते हुए ही घर पहुँचें। े बादल तुम बरसो।

घटना हो, चाहे ... चन्द्रादित्य। (पृ० २६३)

शब्दार्थ—चन्द्रादित्य=चन्द्र और सूर्य।

भावार्थ—घटना और बादलों की घटा के पारस्परिक साम्य का उल्लेख करती ुई उर्मिला कहती है कि जिस प्रकार घटा नीचे से ऊपर उठकर विस्तार पाती ुई सूर्य और चन्द्र को ढक लेती है उसी प्रकार कारणों के नीचे दबी हुई ाधारण सी बात बड़ी घटना का रूप धारण कर सुख के प्रकाश को ढक ेती है।

अलंकार—दीपक।

तरसूं मुझ-सी ... आयगी बारी। (पृ० २६३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—उर्मिला स्वयं जैसी दुखी है वैसी दुखी अन्य को नहीं चाहती।

इसीलिए वह कहती है कि अपनी भांति मैं ही तरसती रहूँ। मेरे समान अन्य कोई नहीं तरसे। यह प्यारी प्रकृति सरसित होकर हर्ष से फले फूले। इस प्रकार सब के सुखी होने पर उसके भी सुख के दिन आयगें।

विशेष—कवि परिपाटी के अनुसार अन्य कवियों की विरहिणी नायिका जहाँ प्रकृति के उल्लास भरे स्वरूप से ईर्ष्या करती हैं वहीं गुप्त जी की उर्मिला इस से हर्षित होती हैं।

बुँदियों को भी अपने आप। (पृ० २६३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि ये वर्षा की बूँदें भी मेरे शरीर के स्पर्श से तप्त हो गई है। तभी वे नीचे गिरते गिरते भाप के रूप में बदल कर ऊपर उठ जाती हैं।

विशेष—यह विरह जन्य ताप की ऊहात्मक व्यजना है।

न जा उधर एकांत ही। (पृ० २६४)

शब्दार्थ—शिखी=मोर। लास्य लीला=नृत्य क्रीड़ा।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में मोर हर्षित हो नृत्य कर रहे हैं। उर्मिला उनके सुख में बाधा नहीं पहुँचाना चाहती। तभी वह अपनी सखि से कहती है "हे सखी उधर मत जा। मोर को सुख पूर्वक नाचने दे। तेरे जाने से कहीं वह लज्जा वश सकुचा न जाय। प्रसन्न होकर उसे नृत्य क्रीड़ा करने दे। मेरी तो बस यही अब एक मात्र कामना है कि दूसरों के सुख में किसी प्रकार बाधक न बनूँ। वास्तव में वैराग्य और अनुराग में एकात ही इष्ट है। (उर्मिला विचारती है कि जिस प्रकार वियोग की दशा में मुझे एकात सुहाता है उसी प्रकार मोर को भी प्रेम की अवस्था में एकात ही अच्छा लगता है।)

इन्द्र वधू आने यह हाय। (पृ० २६४)

शब्दार्थ—इन्द्र बधू = इन्द्र पत्नी, वीर वहूटी। विहाय=छोड़ कर। दूवा=घास।

भावार्थ—वीर वहूटी को लक्ष्य कर उर्मिला कहती है "कि भला इन्द्र वधू अपने स्वर्ग को छोड़ कर पृथ्वी पर क्यों आने लगी। अतः यह वीर वहूटी नहीं है बल्कि यह तो नन्ही दूब का कोमल हृदय ही निकल पड़ा है।

अलकार—श्लेष और अपह्नुति।

बता मुझे   हरी हरी ? (पृ० २६४)

शब्दार्थ—नख रञ्जनी=मेंहदी।

भावार्थ—मेंहदी को सम्बोधित कर उर्मिला कहती है कि हे मेंहदी मुझे यह रहस्य तो बता कि तू भीतर से लाल लाल होकर भी बाहर से हरी हरी क्यों है ? (उर्मिला सोचती है कि लाल रग के रूप में मेंहदी अपने भीतर वेदना को छिपाए हुए है, फिर भी वह बाहर से हरी हरी है अर्थात् प्रसन्न है। वह भी अपनी वेदना को किसी प्रकार भीतर ही छिपाकर बाहर से प्रसन्न रह सके, यही रहस्य वह मेंहदी से जानना चाहती है।)

अवसर न खो   तू मल्ली। (पृ० २६४)

शब्दार्थ—निठल्ली=वेकार बैठी रहने वाली। विटपि=वृक्ष। बल्ली=लता। लल्ली=प्यार का सम्बोधन। मल्ली=मल्लिका चमेली।

भावार्थ—हे लता अकर्मक बनकर यह सुयोग मत खो। बढकर वृक्ष का संयोग सुख प्राप्त कर। हे लल्ली मल्लिका एक बार कदम्ब का सहारा पाकर उसे न छोड़ना।

त्रिविध पवन ही   उन्हीं सा ! (पृ० २६४)

शब्दार्थ—त्रिविध पवन=शीतल, मंद, सुगन्ध पवन। घन रव=बादलों का शोर। नीप = कदम्ब का फूल। प्रकृत-सुकृत=स्वाभाविक ख्याति।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि लक्ष्मण के स्पर्श के ही समान सुखद शीतल मंद सुगन्धित वायु वास्तव में वायु ही थी, प्रिय नहीं थे। यह गंभीर गर्जना बादलों की ही थी, प्रिय लक्ष्मण का गंभीर स्वर नहीं था। प्रियतम की हसी के समान ही यह कदम्ब का पुष्प वास्तव में कदम्ब का पुष्प ही है, प्रियतम भला यहाँ कहाँ हो सकते हैं। इतना अवश्य है कि प्रिय का स्वाभाविक यश सर्वत्र फैल रहा है। यह यश मुझे उनके समान ही सुख कारी प्रतीत हो रहा है।

अलंकार—भ्रातापह्नुति।

सफल है, उन्हीं   घनों का घोष। (पृ० २६५)

शब्दार्थ—वश वश=बासों के कुल।

भावार्थ—हे सखि इस अयोध्या में तो मेरे आशा के अंकुर भी न पनप सके। वह जो आशा लेकर अयोध्या आई थी वह पूर्ण न हो सकी। मेरे हृदय में किसी फल की कामना न थी, मैं तो अपने मन भाए फूल ही पति चरणों में समर्पित करना चाहती थी, परन्तु वह भी न कर सकी।

कुलिश किसी .... भड़क रहे हैं। (पृ० २६६)

शब्दार्थ—कुलिश=बिजली। तोयद=बादल।

भावार्थ—वर्षा ऋतु की कड़कती हुई बिजली और गरजते हुए बादलों को देखकर उर्मिला कहती है कि न जाने बिजली किस पर कड़क रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बिजली नहीं है किसी का हृदय धड़क रहा है। हे सखि ये जो बादल तड़क तड़क कर गर्जना कर रहे हैं वे किसी की भावनाएँ हैं जो इधर उधर भटकती हुई कुछ रुक-रुक कर भड़क रही हैं। वायु से लता के जो पत्ते काँप रहे हैं वे मानो लता के लाल होंठ हैं जो कुछ कहने के लिए हिल रहे हैं।

अलंकार—अपह्नुति।

मैं निज अलिंद .... छिपाई थी। (पृ० २६६)

शब्दार्थ—अलिन्द=भवन का बाहरी भाग। गमक रहा=सुगन्धित हो रहा। झिल्ली झनकार=झींगुरों की आवाज। चञ्चला=बिजली। वनाली=बादल।

भावार्थ—पूर्व स्मृतियों के एक प्रसंग का उल्लेख करती हुई उर्मिला अपनी सखि से कहती है "एक रात मैं अलिंद में खड़ी हुई थी। बादल छाए हुए थे और वर्षा की बूँदें रिमझिम बरस रही थीं। केतकी की मधुर गंध से चारों ओर सुगन्धि भर रही थी। झींगुरों की झनकार मुझे बड़ी भली मालूम दे रही थी। मैं उसी झंकार का अनुकरण अपने नूपुरों से करती हुई नाचने लगी। उस समय मेघ छाने से अंधकार था। इतने में बिजली चमकी और मैंने उसके प्रकाश में प्रियतम को कोने में शांत भाव से खड़ा देखा। मैं विस्मय से चौंक उठी और लज्जा में डूबकर मैंने अपना मुख उनकी छाती में ही छिपा लिया।

तम मे तू भी   वन में जाग। (पृ० २६६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—जुगनू को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है "हे जुग
अधकार में प्रकाश बिखरने के कारण तेरा महत्व कम नहीं है। इसलिए
सौभाग्य शाली जुगनू तू चिरजीवी हो। परन्तु इस अयोध्या में तो अधका
को नष्ट करने के लिए घर घर में दीपको का प्रकाश है। इसलिए तू वन
जाकर प्रकाश कर।

हा! वह   घनालिंगिता तड़िता। (पृ० २६७)

शब्दार्थ—सुहृदयता=रसिकता। क्रीड़ा=विनोद। घनालिगिता=बादल
के आलिंगन में बद्ध। तड़िता=बिजली।

भावार्थ—हे सखि कभी कभी रसिकता पूर्ण विनोद भी बड़ा कठोर औ
निष्ठुर होता है। बादलों के कठोर आलिंगन के कारण वेचारी बिजल
दुख से तड़प तड़प उठती है।

गाढ़ तिमिर   है दृष्टि। (पृ० २६७)

शब्दार्थ—गाढ़ तिमिर=गहरा अधकार।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि सारा ससार गहन अधकार की बाढ़
डूबा हुआ है। मानो दृष्टि चक्कर में पड़कर चकरा रही है।

लाई सखि, मालिनें   विषाद है। (पृ० २६७)

शब्दार्थ—जम्बू फल=जामुनें। रसाल=आम। देवर=शत्रुघ्न। प्रमाद-
भूल।

भावार्थ—"हे सखि तुझे वह घटना याद है जब मालिनें फलों की डाल
लाई थीं। जीजी ने जामुन लिए थे और मैंने आम। देवर शत्रुघ्न वहीं
हुए थे। हसकर बोल उठे अपना अपना स्वाद है। मैंने उनसे पूछा "
रसिक तुम्हें जामुन पसद है अथवा आम। उन्होंने उत्तर दिया "हे देवि मेरी
रुचि तो दोनों ओर है। दोनों के भोग लगे भोजन का मैं अधिकारी हूँ,
दूसरा अर्थ—(मैं तो दोनों का ही कृपा पात्र हू)। हे सखि विधाता की भूल
से आज उस विनोद की स्मृति भी कष्ट प्रद बन गई है।

निचोड़ पृथ्वी　　　　　　　　　　　सिक्त मेरा (पृ० २९७)

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश, वस्त्र। मानस=मन, मानसरोवर।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि सृष्टि रानी, तुमने अपने आकाश रूपी रंग विरंगे वस्त्र का पानी वर्षा के रूप में पृथ्वी पर निचोड़ कर अपना वह वस्त्र सुखा लिया है। इससे क्या तुम्हारा मन रूपी मानसरोवर खाली हो गया है। परन्तु मेरा अचल तो आँसुओ के जल से भीगा हुआ है।

अलकार = रूपक और श्लेष।

सखि, छिन　　　　　　　　　　　की माया! (पृ० २९८)

शब्दार्थ—चौमासा=वर्षा के चार मास। कृश=दुबला। योग=अवसर।

भावार्थ—हे सखि कभी धूप निकल आती है और कभी छाया हो जाती है। यह सब बर्षाकाल की माया है।

यदि श्वास प्रश्वास की क्रिया चलती रहे, उसकी गति न रुके तो यह शरीर दुर्बल होकर भी जीवित तो बना ही रहता है। परन्तु यदि हम श्वास को न रोक सके तो फिर प्रियतम के दर्शन का अवसर भी खोना पड़ेगा। मृत्यु होने पर प्रियतम के दर्शन न हो सकेंगे। अतः भाग्य जो कुछ दे उसे स्वीकार कर लो।

विशेष—'हमने उसको रोक न पाया तो निज दर्शन योग गमाया' में योग की क्रिया की ओर भी सकेत है जिसमें प्राणायाम के द्वारा आत्म साक्षात्कार किया जाता है।

पथ तक जकड़े　　　　　　　　　　क्या कहेंगे? (पृ० २९८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लक्ष्मण के चले जाने पर उर्मिला ने अपने उपवन की ओर ध्यान नहीं दिया। वर्षा ऋतु में उसमें अनेक झाड़ियाँ उग आई हैं। यह देख कर उर्मिला कहती है-झाड़ियों ने घेरा डाल कर उपवन के मार्ग को भी बन्द कर दिया है। मेरा उपवन तो आज बन के समान ही बन गया है। बन में रहने वाले प्रियतम कभी तो लौट कर अयोध्या में आवेंगे ही। हे सखि जब प्रियतम लौटकर आने पर देखेंगे तो मुझसे क्या कहेंगे? वन से लौटने पर भी वे घर को अपने लिए बन के समान पायेंगे।

करे परिष्कृत ज्यों गेह (पृ० २६८)

शब्दार्थ—परिष्कृत=सुधार । गहन = बन ।

भावार्थ—हे सखि मालिनी से कह दो कि वे इस उद्यान को सुधार दें। वन में भी प्रियतम इस उपवन का ध्यान रखते होंगे (इस पर सखी कहती है कि मालिन के स्थान पर वह स्वयं इसके लिए प्रस्तुत है । यह सुनकर उर्मिला कहती है ।) हे सखि तेरा कहना उचित ही है कि मेरी देह इस कार्य के लिए अर्पित है । अत. इस उपवन को घर की भांति ही सभाल कर रख ।

रह चिरदिन का तुझे (पृ० २६६)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—हे सृष्टि सुन्दरी प्रकृति तू सदैव सुख से वृद्धि को प्राप्त होती हुई हरी भरी बनी रह जिससे तेरी शोभा मे मुझे अपने प्रियतम की सुध मिलती रहे । इस प्रकार इस सेविका को जीवन प्रदान करने का श्रेय तुझे मिलता रहे।

हँसो, हँसो पिये हूँ । (पृ० २६६)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—हे चन्द्रमा तुम सदैव हँसते रहो । हे फूल तुम भी खिलो और शाखा रूपी डाल पर प्रसन्नता पूर्वक झूलो । रोने के लिए तो मै ही हूँ । मैंने इतनी वेदना अपने अन्तर में छिपाली है कि मै आँसुओ की झड़ी लगा कर निरन्तर रो सकती हूँ ।

प्रकृति, तू उनकी कथा (पृ० २६६)

शब्दार्थ—जड़ित चेतन=जड़ हुए चेतन ।

भावार्थ—प्रकृति के मनोरम रूप में उर्मिला को लक्ष्मण का भान होता है । प्रकृति को सम्बोधित करती हुई वह कहती है -हे प्रकृति तू तो प्रकृति की स्मृति मूर्त्ति है । जड़ बने चेतन पदार्थो को तू सजीव करने वाली है । (वर्षा मे निर्जीव पृथ्वी हरी भरी हो जाती है ।) उसी प्रकार प्रिय का स्मरण भी मेरे मृत्यु तुल्य शरीर मे नव जीवन का सचार कर देता है । हे मन की व्यथा तू मुझे सदा जीवित बनाए रख । हे सखि तू मुझे सदा प्रियतम की ही कथा सुना ।

निरख सखी भर लाए। (पृ० २९९)

शब्दार्थ—खजन=एक पक्षी विशेष। रजन=प्रसन्न करने वाले लक्ष्मण से अभिप्राय है। आतप=धूप, गर्मी। सर=तालाब। बन्धूक=दुपहरिया के फूल।

भावार्थ—(वर्षा ऋतु के पश्चात शरत, का वर्णन प्रारम्भ होता उर्मिला कहती है हे सखि देख ये खजन पक्षी आए हैं। इन खजनो को कर,मुझे तो मन भाने वाले प्रिय के नेत्रो का अनुमान होता है जो मेरी ओर फेरे हैं। हे सखि उनके शरीर का तप जन्य आतप ही धूप ब फैल रहा है। उनके मन की सरसता से ही सरोवर सरसित हो गए हैं अयोध्या की ओर आज अवश्य ही वे घूमें होगे तभी तो उनकी गति के रूप हस इधर उड़ आए हैं। वे इस सेविका का ध्यान करके निश्च मुस्कराए-होंगे। इसीलिए ये कमल फूल उठे हैं और उनके होठों की दुपहरिया के लाल फूल शोभायमान हो रहे हैं। हे शरद् ऋतु तेरा स्‌ है। क्योकि बड़े भाग्य से ही मैंने तेरे रूप में अपने प्रियतम के दर्शन किए हैं। आकाश ने ओस की बूंदों के रूप में तुझ पर मोती न्यौछावर हैं। मै भी आँसुओं का अर्घ्य लेकर तेरे स्वागतार्थ प्रस्तुत हूं।

विशेष—ऊपर की पक्तियो से जायसी की निम्न पक्तियो का साम

> नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर।
> हसत जो देखा हस भा दसन ज्योति नग हीर॥

अपने प्रेम हिमाश्रु पद भार!" (पृ० ३००)

शब्दार्थ—हिमाश्रु=हिम के आँसू, ओस की बूंदे। पद्म हार=कम फूलों का हार। पद-भार=गौरव।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि तुच्छ दूब ने ओस की बूंदों के अपने प्रेमाश्रु सूर्य को भेंट मे दिए। सूर्य ने उन्हें रत्न कणो की भाति वान बना कर अपने पास समेट लिया। (सूर्य की किरणों से ओस व रत्नों की तरह चमकती हैं, और ताप से सूख जाती हैं। कवि की व्यञ्‌ कि सूर्य उन्हें समेट कर अपने पास रख लेता है।) मैंने भी प्रिय को से बने फूलो का एक हार भेंट में दिया था। जिसे पाकर उन्होंने कहा

यह उपहार पाकर मैं अत्यन्त गौरवशाली हुआ।

अम्बु, अवनि पित्त पीड़ा सी! (३००)

शब्दार्थ - अम्बु=जल। अवनि=पृथ्वी। पित्त पीड़ा=ताप की पीड़ा।

भावार्थ—जल, पृथ्वी, आकाश सर्वत्र स्वच्छता छायी हुई है जैसे शरत ऋतु अपनी पवित्र क्रीड़ा में रत है। परन्तु हे सखि हमारे पीछे तो चौदह वर्ष की अवधि पित्त की वेदना के समान पड़ी हुई है।

हुआ विदीर्ण सा विस्तीर्ण! (पृ० ३००)

शब्दार्थ—विदीर्ण=भग्न होना। आवरण=वस्त्र। जीर्ण=पुराना। शीर्ण=सड़ा गला। कचुक=केंचुली। विषधर=सर्प।

भावार्थ—शरद ऋतु में आकाश प्रायः स्वच्छ रहता है। कहीं कहीं बादलों के खड मात्र दिखलाई पड़ते हैं। उर्मिला कहती है--आकाश का श्वेत वस्त्र मानो पुराना पड़कर फट गया है। ऐसा प्रतीत होता हैं जैसे आकाश फटी हुई केंचुली धारण कर विशाल सर्प की तरह फैला हुआ है। (बादलों के सफेद टुकड़ों के बीच आकाश का नीला रङ्ग सर्प के समान ज्ञात होता है।)

शफरी स्वयं सागर में! (पृ० ३००)

शब्दार्थ—शफरी=मछली। गागर=घड़ा।

भावार्थ—हे मछली तू इस तालाब में निमग्न होकर भी क्यों तड़प रही है? तेरा तड़फना वास्तव में उचित हैं क्यों कि जो रस अपनी गागर में है वह रस गोरस तो सागर में भी नहीं होता। अपने घर में जो सुख प्राप्त है वह बाहर नहीं मिलता है।

भ्रमरी, इस मोहन कभी! (पृ० ३००)

शब्दार्थ—मानस=मान सरोवर। मादक=मस्त करने वाले। रस=कमल के फूलो के रस, प्रलोभन। क्षेम=कुशल।

भावार्थ--हे भ्रमरी इस मोहित करने वाले मान सरोवर के फूलों का रस भाव बड़ा मादक है। तूने इनका जितना रस पी लिया है उतने से ही सन्तुष्ट हो जा। अधिक पीकर मदान्ध मत बन। उड़ जा इसी में तेरी कुशल है। यद्यपि रात्रि दूर है तथापि कहीं ऐसा न हो कि तू कमल के बधनों

में पड़ जाय क्योंकि यह समय किसी को सुख का उपभोग करते हुए नहीं
ख सकता ।

विशेष—अन्योक्ति द्वारा मानव के लिये सदेश भी निहित है कि यह
ात प्रलोभनो से पूर्ण है जो मानव को अपने में फँसा लेने वाले हैं ।

अलकार=अर्थान्तरन्यास ।

इस उत्पल से ... दृग त्राण ! (पृ० ३०१)

शब्दार्थ—उत्पल=कमल । उपल=पत्थर । बक=बगुला ।

भावार्थ---शरद् ऋतु मे बगुला ध्यान लगाए हुए मछलियो की ताक में
ठा हुआ है । उर्मिला बगुला की निष्ठुरता को सम्बोधित करती हुई कहती हैं--
वेत कमल के समान तेरे कोमल शरीर में ये पत्थर के समान निष्ठुर प्राण कहाँ
ा आगए ? हे बगुले, यह ध्यान करने का ढोंग छोड़ दे, जिससे कि मेरे नेत्रों
ो सुख मिल सके । क्योंकि तेरे द्वारा धोखे से मछलियाँ खाते हुए देख कर
रे नेत्रों को अपार दुख हो रहा है ।

हंस, छोड़ ... क्या संदेश ? (पृ० ३०१)

शब्दार्थ—मुक्ताओं का देश=मान सरोवर, मुक्त आत्माओं का देश ।

भावार्थ—हे हस तुम मोतियों के देश अपने मान सरोवर को कहाँ छोड़
आए ? यहाँ इस वदिनी उर्मिला के लिए क्या सदेश लाए हो ।

(मुक्ताओं से अभिप्राय यदि स्वाधीन लोगों के वास से लें तो इसका
यह अर्थ भी ध्वनित होता है) हे हंस मुक्त या स्वाधीन जनों के देश को
छोड़ कर इस वदिनी के पास तुम क्या मुक्ति का सदेश लेकर आए हो । इस
का यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि हे आत्मा मुक्त आत्माओं के आध्यात्मिक
जगत को छोड़कर मुझ वन्दनी के पास क्या करने आये हो ।

हंस, हहा ! ... जन के ! (पृ० ३०१)

शब्दार्थ—बन बन के=सभल संभल के ।

भावार्थ—हे हस (नीर क्षीर के पारखी के रूप मे) तू तो बहुत विवेक
वान था । परन्तु बहुत अधिक चतुराई दिखलाने से तुम्हारा भी विवेक बिगड़
गया । तभी तो तुम इस सेविका उर्मिला की अश्रु बूंदों को मोती समझ कर
चुग रहे हो ।

अलकार—रूपक, श्लेष ।

आलि, काल सतप्त सभीत । (पृ० ३०४)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—हे सखि चाहे गरम रहे अथवा शीत प्रधान, चाहे दुखपूर्ण हो अथवा सुख भरा, समय तो अन्त में समय ही है । वह सदैव परिवर्त्तनशील है । हमें गर्मी के ताप से दुखी और भयभीत जानकर यह हेमन्त दया कर आया है ।

आगत का स्वागत सतप्त-सभीत । (पृ० ३०४)

शब्दार्थ—आगत=आए हुए । घी गुड़ देकर=अत्यन्त सम्मान पूर्वक । लेती = स्वागत करती ।

भावार्थ—आए हुए अतिथि का स्वागत करना तो अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु क्या मैं अपने नेत्रों में आँसू लेकर उसका स्वागत करूँ? यदि आज प्रियतम होते तो मैं घी गुड़ से बड़े हर्ष के साथ उसका सत्कार करती । परन्तु अब प्रियतम की अनुपस्थिति में पाक और पकवान आदि स्वादिष्ट भोजन सब व्यर्थ हैं । स्वाद का अवसर ही बीत गया । हमें सतप्त और भयभीत जानकर हेमन्त दया करके हमारे पास आया है ।

हे ऋतुवर्य सतप्त-सभीत । (पृ० ३०४-३०५)

शदार्थ—सरल है ।

भावार्थ—हे ऋतुश्रेष्ठ हेमन्त मैं तेरा उचित प्रकार से स्वागत न कर सकी, मेरी असमर्थता को देखते हुए इसके लिए मुझे क्षमा कर । प्रतिवर्ष बारबार तू यहाँ चक्कर लगाता रहे । हे मित्र प्रियतम के आने पर मैं व्याज सहित तेरे ऋण को चुका दूँगी । दुगने उत्साह से तेरा स्वागत करूँगी । हमें सतप्त और भयभीत जान दया करके हेमन्त की ऋतु आई है ।

सी-सी करती हुई सतप्त-सभीत । (पृ० ३०५)

शब्दार्थ – सी सी करती हुई = शीत से ठिठुरती हुई । पार्श्व = निकट । बगली से । सम्बल=सहारा ।

भावार्थ—शीत के आधिक्य के कारण जब मैं सी-सी करती हुई प्रियतम के बगल मे जा छिपती थी तब हे हेमन्त, तुझे मेरे प्रियतम अपना बड़ा

उपकारी मानते थे। परन्तु अब शीत से रक्षा करने के लिए प्रियतम कहाँ ?
एक गर्म कम्बल ही सहारा है। इसलिए हे हेमन्त, तू भी आज पवित्र
सन ही स्वीकार कर ले। (वियोगिनी उर्मिला के पास अपने अतिथि के
ए आसनमात्र ही है।) यह हेमन्त हमें सतप्त और भयभीत जान दया
के आया है।

कालागुरु की ... सतप्त-सभीत। (पृ० ३०५)

शब्दार्थ —कालागुरु=एक पदार्थ जिसे सुगन्धि के लिए विशेषतः हेमन्त
तु मे आग में डाला जाता है। हसन्ती = अँगीठी। अनल-कुसुम = आग
फूल।

भावार्थ—लाल-लाल मगल के तारे के समान आग के फूलों की भाँति
तारे अँगीठी मे खिल-खिलकर कालागुरु की सुगन्धि उड़ाते हुए हँस रहे
। ऐसे ही मेरे हृदय की धड़कन मे इन अगारों की भाति मेरा अतीत धधक
है। यह हेमन्त हमें सतप्त और भयभीत जानकर ही दया कर आया है।

अब आतप-सेवन ... चल तू। (पृ० ३०५)

शब्दार्थ—आतप=धूप। तप=तपस्या।

भावार्थ—सरदी से उर्मिला की रक्षा करने के लिए सखी उसे धूप में
ने के लिए कहती है तथा तप और धूप की समानता पर प्रकाश डालती
। उर्मिला उत्तर मे कहती है "हे सखि, हेमन्त ऋतु मे धूप का सेवन करने
कौन सी तपस्या होती है तपस्या मे तो कष्ट सहन करना पड़ता है। हेमन्त
धूप तो आराम पहुँचाती है ? मुझे इस प्रकार तू धोखे में मत डाल। इस
तु मे तो तपस्या ने पानी मे प्रवेश कर लिया है। अर्थात वास्तविक तपस्या
जल सेवन मे है। इसलिए हे सखि यदि तू वास्तव में मुझसे तपस्या ही
ाना चाहती है तो वहीं जल में चल।

नाइन, रहने दे ... है मेरा। (पृ० ३०६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे नाइन मेरे शरीर पर तेल मत मल। मुझे यह नहीं चाहिए
। शरीर चाहे रूखा रहे, पर मन तो स्नेह मे स्निग्ध है। स्नेह शब्द श्लिष्ट
-तेल और प्रेम।

मेरी दुर्बलता   क्षण में। (पृ० ३०६)

शब्दार्थ--सरल हैं।

भावार्थ- --उर्मिला बहुत दुर्बल हो गई है यह बात जब सखी उसे बतलाती है तो उत्तर मे उर्मिला कहती है--अरी इस दर्पण में तू मुझे मेरी दुर्बलता क्या दिखा रही है ? मेरा मुख देखकर मेरी सतप्त साँसों के कारण तो यह दर्पण पल भर में ही धु धला पड़ गया है।

एक अनोखी   निज सर में (पृ० ३०६)

शब्दार्थ--नाल शेष=मृणाल मात्र।

भावार्थ—हे सखि क्या मैं ही अनोखी अपने घर मे दुर्बल हो गई हूँ। देख कमलिनी भी तो अपने तालाब मे नाल मात्र शेष रह गई है। (हेमन्त में कमलिनी की डडी मात्र रह जाती है।)

पूछी थी सुकाल   किसान की। (पृ० ३०६)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ- उर्मिला कहती है -मैंने आज देवर शत्रुघ्न से सुकाल दशा जानने के अभिप्राय से पूछा था कि इस वर्ष ईख, कपास, धान आदि की फसल कैसी हुई ? उत्तर में उन्होंने कहा -इस बार तो पृथ्वी पर इन्द्र भगवान की दया तो दुगने रूप से देखने में आई। भाव यह है कि इस वर्ष उपज अच्छी वर्षा से अत्यन्त उत्तम हुई है। यही बात जब मैंने एक गाँव के किसानों से पूछा तो उन्होंने भी यही बतलाया कि अन्न, गुड़ और दूध की खूब वृद्धि हुई है। परतु एक किसान अबला ने रोकर कहा--न मालूम इन पदार्थों का स्वाद कैसा है (राम बनवास के पश्चात् अयोध्या का सारा सुख उजड़ गया है। फसल के के उत्तम होने पर भी उसका स्वाद उनके लिए कोई महत्व नहीं रखता।

हम राज्य लिए   लिए मरते हैं। (पृ० ३०७)

शब्दार्थ—कर्षक=किसान।

भावार्थ—हम राज्य के अधिकारी बन अभिमान से फूले फिरते हैं परन्तु सच्चा राज्य तो हमारे किसान ही करते हैं। वे ही अपनी खेतों में अन्न उत्पन्न करते हैं, फिर भला उनसे अधिक कौन सुखी और सपन्न होगा ? वे पत्नी सहित अपना सारा कार्य करते हुए विचरण करते हैं तथा ससार में वैभव

की वृद्धि करते हैं। (उर्मिला आज पति से अलग है) हम व्यर्थ मे राज्य के लिए मरते हैं।

वे गोधन के मरते हैं (पृ० ३०७)

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। आगर=घर।

भावार्थ—उन उदार किसानों के लिए गोधन ही सबसे बड़ा धन है। अमृत के समान दूध की धारा उन्हें सहज ही प्राप्त है। आपदाओ को सहन करने की उनमे अत्यन्त क्षमता है। इसीलिए वे परिश्रम रूपी समुद्र को सरलता से पार कर लेते हैं। हम व्यर्थ मे राज्य लेकर दुःख उठाते हैं।

यदि वे करें मरते हैं! (पृ० ३०७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—उनका अपने ऊपर गर्व करना उचित ही है। वे अपने जीवन में पग पग पर उत्सवों और पर्वों का आयोजन करते हैं। हमारे जैसे रखवाले उनकी रक्षा करने वाले हैं, फिर भला उन्हें किसका भय हो सकता है। हम व्यर्थ ही राज्य के लिए मरते हैं।

करके मीन-मेख मरते हैं (पृ० ३०७)

शब्दार्थ—मीन मेख=व्यर्थ का तर्क वितर्क करना। बुध=विद्वान जन।

भावार्थ—विद्वान जन अनावश्यक तर्क वितर्क करके व्यर्थ का वाद-विवाद करते हैं। परन्तु ये किसान लोग इधर उधर की भटकने वाली शाखामयी बुद्धि को छोड़कर धर्म के वास्तविक तत्व को ही ग्रहण करते हैं। हम राज्य के लिए व्यर्थ ही मरते हैं।

होते कहीं मरते हैं। (पृ० ३०८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हम भी यदि राजा न होकर उनकी ही भाँति कृषक होते तो भाग्य के ये दुख हमें नहीं भोगने पड़ते (कैकयी की राज्य लिप्सा के ही कारण तो उर्मिला को वियोग वेदना से व्यथित होना पड़ा) उन्हीं अन्न का दान करने वाले किसान लोगो का सुखी जीवन अंगीकार करने पर ही हमारे दुख दूर हो सकते हैं। इस राज्य के लिए तो हम व्यर्थ में ही मरते हैं।

प्रभु को निष्कासन धिक्कार! (पृ० ३०८)

शब्दार्थ – सरल है।

भावार्थ – हे राज्य तुझे धिक्कार है। तेरे ही कारण प्रभु रामचन्द्र जी को बनवास मिला तात दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए। और मुझे वियोग की वेदना में घुलने के लिए यह वटी गृह प्राप्त हुआ।

चौदह चक्कर चौदह चक्कर! (पृ० ३०८)

शब्दार्थ—अभग=अखडित।

भावार्थ—जब यह भूमि अखड भाव से चौदह चक्कर खायगी तब कहीं जाकर प्रियतम प्रभु रामचन्द्र जी के साथ लौटेंगे। हे सखी तभी प्रियतम प्रभु के साथ आयेंगे। अभी तो प्रत्येक दिन और रात्रि को गिनते रहो। परन्तु यहाँ तो प्रत्येक क्षण प्राणों पर आघात कर रहा है, फिर भला दिन और रात की गणना कैसे की जा सकती है? कलह की जड़ यह पृथ्वी जब चौदह चक्कर लगाएगी तभी इस वेदना का अत होगा।

सिकुड़ा सिकुड़ा पाले से! (पृ० ३०८)

शब्दार्थ—कसाले से=कठोरता से।

भावार्थ-शीत काल के दिन छोटे होते हैं, रात्रिकाल बड़ा होता है। इसी ओर सकेत करती हुई उर्मिला कहती है--यह दिन तो शीत की कठोरता से भयभीत होकर सिकुड़ सा रहा है। परन्तु हे सखी अत्यधिक पाले से मानो यह रात्रि तो पानी की तरह जमकर बैठ गई है। यहाँ से टलती ही नहीं है।

अलकार=हेतूत्प्रेक्षा।

आए सखि मोद में (पृ० ३०८-३०९)

शब्दार्थ—द्वार पटी=द्वार पर पर पड़ा हुआ परदा। वचक=ठगने वाला। वचित=ठगे गए। रोम पट=ऊनी कम्बल। प्रावरण=ऊपर ओढ़ा हुआ वस्त्र। प्रतोद=अकुश। कपित=करते हुए।

भावार्थ—अपनी सयोग कालीन मधुर स्मृतियों के एक प्रसङ्ग का उल्लेख करती हुई उर्मिला कहती है--हे सखि एक बार प्रियतम द्वार का पर्दा उठाकर मेरे पास आए। यद्यपि मुझे छलने आए थे पर स्वय छलते हुए व्यक्ति की भाँति जान पड़ते थे। विनोद की अवस्था में वे काप से रहे थे। मेरी इस गोद

में ऊनी वस्त्र डालकर उन्होंने कहा तनिक इस वस्त्र को ओढ़ कर तो देखो। फिर क्या हुआ मैं चट अपने ऊपर ओढे हुए वस्त्र को छोडकर उठी ? उस समय हवा चाबुक सी शरीर को लग रही थी। तब भी बाहु बंधन के मोद में हूबे हुये हम दम्पति के शरीर के रोम रोम हर्ष से उत्फुल्ल थे।

करती है तू ... यह देख। (पृ० ३०६)

शब्दार्थ—धु वाधार=धुए के समान कोहरा।

भावार्थ—उर्मिला को शीत न लग जाय, इसलिए सखि उसे बार बार शीत का स्मरण दिलाती है। उर्मिला कहती है हे सखि तू बार बार कह रही है कि शीत पड़ रहा है। परन्तु हे सखि मैं जली जारही हूं और यह कोहरा उसी जलन का तो धुआ है।

सचमुच यह ... इस बार। (पृ० ३०६)

शब्दार्थ—नीहार=कोहरा।

भावार्थ—हे सखि इस कोहरे की ओर देख, सचमुच ऐसा लगता है जैसे शीत के आधिक्य के कारण अन्धकार भी श्वेत पड गया है।

कभी गमकता ... मनोमृग अंध। (पृ० ३०६)

शब्दार्थ—मनोमृग=मनरूपी मृग। गमकना = महकना।

भावार्थ—हे सखि जो स्थान कस्तूरी की गन्ध से गमकता रहता था वही आज मेरा मनरूपी अन्धा मृग प्रिय के उठने बैठने के स्थानों पर जाने से चौंक उठता है।

शिशिर, न ... भाव-भुवन में। (पृ० ३०६).

शब्दार्थ—शिशिर=शिशिर ऋतु। पाण्डुरता=पीलापन। मानस-भाजन= मन रूपी बर्तन। अकिंचता=निर्धन। भाव भुवना=भावनाओं रूपी सागर।

भावार्थ—उर्मिला कहती है "हे शिशिर ऋतु पर्वतों और जगलो में तेरे विचरण करने की आवश्यकता नहीं। मैं अपने मे ही नन्दन वन के समान उपवन में तुझे जितना पतझड़ चाहिए उतना प्रदान करूँगी। कम्पन तो मेरे शरीर में सदैव ही बना रहता है, तुझे जितना चाहिए उतना ले ले। हे शिशिर (तू वृक्षों के पत्तो से पीला पन लिये फिरता है) परन्तु मेरी सखी कहती है कि मेरे मुख पर पीले पन का तनिक भी अभाव नहीं है। हे भाई

शिशिर यदि तू मेरे हृदय रूपी भाजन में मेरे नेत्र जल को जमा दे तो मैं निर्धन उन जमी हुई अश्रु बूँदों को मोती के समान मन में सहेज कर रखूंगी (जिससे पति के आने पर उन्हें समर्पित कर सकूँ।) हँसी तो मुझसे छूट ही गई, (आँसुओं की बूदों के जम जाने पर) अपने इस जीवन में मै फिर भी भी न सकूँगी। मेरे हृदय में यही जानने की उत्कण्ठा है कि हास्य और रूदन के अभाव मे मेरे भाव जगत की क्या अवस्था होगी ?

सखि, न हटा **समान दशा।** (पृ० ३१०)

शब्दार्थ—जाल में गता=जाल मे जकड़ी हुई।

भावार्थ—हे सखि इस मकड़ी को मत हटा, यहीं बनी रहने दे। यह मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए ही आई है। हम दोनों की समान ही दशा है, क्योंकि मैं भी तो मकड़ी की भाँति दुख के जाल में फँसी हुई हूँ।

भूल पड़ी **किरण, कहाँ ?** (पृ० ३१०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—खिड़की मे से झाँकती हुई शिशर कालीन सूर्य की किरणों को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है "हे किरण तू यहाँ कैसे भूल पड़ी ! मेरे इस झरोखे से मत झाँक। लौटकर वहीं जा जहाँ तेरी भाँति तार गूँजते हों। अर्थात् जहाँ मधुर स्वर से वीणा बज रही हो। मेरी जीवन वीणा तो नेत्रो के आँसुओं से गीली बन गई है। इसीलिए उसके तार नहीं बजते। वह ढीली ढीली हो रही है। उसके तार कसे हुए नहीं हैं। हे सूर्य किरण तू तो लाल पीली, नीली आदि विविध रगों की बनी रगीली है परन्तु यहाँ मेरे जीवन में तो कोई राग और रग नहीं है। अरी किरण तू यहाँ भूल कर कैसे आगई ?

शीतकाल है **किरण, कहाँ !** (पृ० ३१०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—शीतकाल की ऋतु है और प्रभात का समय है। मेरा मनरूपी मानसरोवर उछल रहा है। तेरा शरीर इन उछलते हुए दुख के छींटों से न भर जाय। हे किरण जहाँ रुदन है वहाँ गान कैसे मिल सकेगा ? तू यहाँ भूल कर कैसे आगई।

मेरी दशा   किरण, कहाँ ?(पृ० ३१०)

शब्दार्थ--मीड़=गमक ।

भावार्थ---मेरी अवस्था तो वीणा के तारो पर नाचती हुई अगुलियों के सदृश हो रहा है । वीणा बजाते समय जैसे एक तार से दूसरे तार पर अगुली जाती रहती है वैसे ही मै सुख की दशा से दुःख मे आ पड़ी हूँ । कसक तो है परन्तु न जाने यह गमक भी कैसी विचित्र है, कि उसके लिए मैं नहीं अथवा हाँ कुछ भी नहीं कह सकती । अरी किरण तू यहाँ कहाँ से भूल कर आगई ?

न तो अगति   एक झकझोर ! (पृ० ३११)

शब्दार्थ—अगति=स्थायित्व, गतिहीनता ।

भावार्थ—उर्मिला कहती है जिस प्रकार पवन के झोंको से वृक्ष हिलता हुआ भी अपने स्थान पर स्थिर रहता है, उसी प्रकार मेरे जीवन रूपी झाड़ में न तो गति ही है और न स्थिरता ही । इसमे तो एक झकझोर अर्थात झटका शेष रह गया है । इस जीविन रूपी वृक्ष की विचित्र गति हो रही है ।

पाऊँ मैं तुम्हें   पीतपत्र, आओ । (पृ० ३११)

शब्दार्थ—पीतपत्र=पीले पत्ते । स्वरस-वित्त=अपना रस रूपी धन ।

भावार्थ—हे पीले पत्तो आओ । आज मै तुम्हे प्राप्त कर अपना बनालूँ और तुम भी मुझे पाकर अपना बनालो दोनों निराधार एक दूसरे के सहारे हो जायँ । आओ मै अपना अचल फैलाकर उसमे तुम्हे लेलूँ ।

फूल और फल के लिएतुमने अपने रस रूपी धन को समर्पित कर दिया है । खुद पीले पीले पडकर तुमने इतना त्याग किया है । अब इस तरह निश्चिन्त हृदय से मत उड़ो सहारा देने के लिये रुक जाओ । हे पीले पत्ते मै अपना अचल फैला रही हूँ, आओ ।

तुम हो नीरस   पीतपत्र, आओ । (पृ० ३११)

शब्दार्थ—सरल हैं ।

भावार्थ—हे पीले पत्तो तुम्हारा शरीर जल के अभाव मे शुष्क हो गया है । मेरे पास नेत्रों का जल है । हे भाई इस अश्रु जल का उचित उपयोग बतलाओ । क्या ये आँसू तुम्हारे किसी काम आ सकते हैं ? आओ, मै अचल फैलाकर तुम्हें लूँगी ।

जो प्राप्ति हो　　　　　　　　　　भी निगोडी। (पृ० ३११)

शब्दार्थ—मधूक=महुए का वृक्ष। दलों=पत्तों। निगोड़ी=बुरी, नीच।

भावार्थ—हे मधूक के वृक्ष यदि पत्तों के गिर जाने पर फूल और फल की प्राप्ति होती हो तो पत्तों की हानि की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि हानि थोड़ी हो और लाभ अधिक हो तो वह निगोड़ी हानि हुआ करे।

श्लाघनीय हैं　　　　　　　　　　का अन्त। (पृ० ३१२)

शब्दार्थ—द्युतिमन्त=जिसमें चमक या आभा हो।

भावार्थ—उर्मिला कहती है शिशिर और बसंत दोनों ही शोभाशाली ऋतु समान रूप से प्रशंसनीय हैं। क्योंकि प्रकृति की जो अवस्था बसंत के प्रारम्भ में होती है वही शिशिर का अन्त है।

ज्वलित जीवन　　　　　　　　　　दिखा रहा। (पृ० ३१२)

शब्दार्थ—धूम=धुँआ। कुंद=एक फूल विशेष।

भावार्थ—धूप को लक्ष्य कर उर्मिला कहती है "यह जलते हुए जीवन का धुँआ है अथवा धूप है (शिशिर में कुहरा छाया रहता है। बसन्त में कुहरा नहीं होता साफ धूप होती है) । वास्तव मे संसार की अवस्था अपने मन के अनुरूप ही होती है। मन यदि सुखी है तो संसार सुखद प्रतीत होता है, मन यदि दुखी है तो संसार दुखपूर्ण जान पड़ता है। इसीलिए कविगण भले ही कुंद को हँसता हुआ कहें परन्तु मुझे तो वह दांत दिखाता हुआ अपने ही समान दीन जान पड़ता है।

हाय! अर्थ　　　　　　　　　　भी आप। (पृ० ३१२)

शब्दार्थ—अर्थ=धन। धनद=धन देने वाली, उत्तर दिशा। आतपपति = सूर्य।

भावार्थ—धन की गर्मी का प्रभाव किस पर नहीं पड़ता ? स्वयं आतपपति सूर्य भी उत्तर दिशा में तप उठे हैं। (ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के उत्तरायण होने पर गर्मी बढ़ जाती है।)

अपना सुमन　　　　　　　　　　जो ते। (पृ० ३१२)

शब्दार्थ—सुमन=फूल, श्रेष्ठ मन।

भावार्थ—लता ने स्वयं चुपचाप ही फूल के रूप में अपना श्रेष्ठ मन

जैसे निकालकर रख दिया है। परन्तु हे सखि बनमाली कहाँ है जो उस फूल के झड़ने से पूर्व ही उसे तनिक देखले। (उर्मिला ने भी अपना श्रेष्ठ मन अपने बनमाली लक्ष्मण के लिए निकाल कर रख दिया है,परन्तु बनमाली को इसे देखने का अवकाश कहाँ ?)

कोली काली होली होली। (पृ० ३१२-३१३)

शब्दार्थ—रागी = प्रेमी, रँगने वाला। स्फुट-सम्पुट = खिली हुई कलियों रूपी पात्र।

भावार्थ—बसत ऋतु की शोभा का वर्णन करती हुई उर्मिला कहती है "काली कोयल मधुर स्वर मे बोल रही है कि होली हो गई, मानो कोयल ने प्रकृति को होली के आगमन का सदेश सुना दिया। हरी-भरी डालियाँ अपनी कोपलो और फूलों की पंखुडियो के रूप मे लाल-लाल होटों से हँसकर आनन्द से हिल डुल रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रकृति का नवयौवन प्रकृति की पीली चोली मे नहीं समा रहा। वह उसे फाडकर फूट रहा है। अलसित कमलिनी ने चारो ओर का मधुर-स्वर सुनकर अपनी उन्मद आँखें खोल ली हैं। उधर उषा ने प्रातःकाल की लालिमा के रूप में दिन के मुँह पर रोली मलदी है। होली के अवसर पर जैसे लोग अबीर से झोली भरते हैं वैसे ही प्रेमी फूलों ने दूसरों को रँगने के लिए पराग से अपनी झोली भर ली है, और ओस ने केसर को उनकी खिली हुई कलियों के पात्र मे घोल दिया है। बसत ऋतु ने सूर्य और चन्द्रमा के पलड़ों पर प्रकृति को तोल लिया है। अब न अधिक गर्मी है न अधिक शीत, दोनो बराबर हैं। परन्तु मेरे हृदय की भोली भावनाओं मे यह सिहरन क्यों हो उठी ? प्रिय की बातों के स्मरण ने कम्पन क्यों उत्पन्न कर दिया ? (कम्पन तो शिशिर मे होना चाहिए, बसत मे यह क्यों हो रहा है ?) खिलती हुई कलियों पर मधुर गुंजार करती हुई भ्रमरों की टोलियाँ उड़ने लगीं। मलय पवन के रूप में प्रियतम के श्वास की अनमोल सुरभि आ रही है। होली—होली—होली।

जा, मलियानिल को आप। (पृ० ३१३)

शब्दार्थ—मलयानिल=दक्षिणी पवन।

भावार्थ—हे मलयपवन तू भी पास मत आ। यहाँ से लौट जा। यहाँ तो अवधि के शाप से विरहिणी वियोग की ज्वाला मे जल रही है। अतः उस ज्वाला से कहीं तू अपनी शीतलता खोकर लू के रूप मे न बदल जाय।

भ्रमर, इधर मत दूर ही दूर। (पृ० ३१३)

शब्दार्थ—चम्पक गन्ध = चम्पक के फूल की सुगन्ध, भौरे चम्पा के फूलों पर नहीं बैठते।

भावार्थ—हे भ्रमर इन चम्पक फूलो की ओर मत आना। ये तो तुम्हारे लिए खट्टे अगूरों के समान हैं। तुम दूर से ही इनकी सुगन्ध को ग्रहण करना।

सहज मातृगुण यह त्याग ! (पृ० ३१३)

शब्दार्थ—मातृगुण=पृथ्वी का गुण अर्थात गध। कर्निकार = कनेर का फूल। विगुण=बिना गुण का। रूप दृष्टात=रूप का उदाहरण।

भावार्थ—पृथ्वी के गुण गध पर तो कनेर के फूल का सहज ही अधिकार था। परन्तु यह अधिकार उसने छोड़ दिया। कदाचित यह सिद्ध करने के लिये उसने गध को त्याग दिया हो कि बिना गुण के भी रूप सम्भव है। रूप और गुण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध नहीं। (कनेर का फूल देखने में सुन्दर होता है परन्तु वह सुगन्धि रहित होता है।)

मुझे फूल मत पर धारो। (पृ० ३१४)

शब्दार्थ—मधु=बसत। मदन=कामदेव। गरल=विष। परिहारो=दूर करो। हर नेत्र=शिवनेत्र, जिसने कामदेव को भस्म किया था। कन्दर्प=कामदेव। रति=कामदेव की पत्नी।

भावार्थ—बसत मे खिलते हुए फूलो से अपूर्व मादकता छा जाती है, मानो कामदेव सब को अपने वश मे कर रहा हो। उर्मिला कामदेव को लक्ष्य कर कहती है "हे कामदेव मुझे पुष्पबाणों से घायल कर अपने वश में करने का प्रयत्न मत करो। मैं तो अबला बाला हूँ और फिर वियोगिनी, कुछ तो मेरे ऊपर दया करो। मदन तुम तो मधुर बसत ऋतु के मित्र होकर मुझ पर यह विष तो मत गिराओ। मेरे प्रति तुम्हारी यह निष्ठुरता उचित नहीं। तुम्हारे इस कार्य व्यापार से मुझे व्याकुलता तो होगी, परन्तु तुम्हें भी

सफलता नहीं मिलेगी। विफलता ही हाथ लगेगी। अतः यह व्यर्थ का श्रम छोड़ दो। मैं कोई विलासिनी नहीं हूँ जिसे तुम अपने जाल मे फँसाने का प्रयत्न कर रहे हो। यदि तुममें शक्ति है तो मेरे इस सिन्दूर विन्दु की ओर देखो। यह तुम्हें भस्म करने वाला साक्षात शिवनेत्र ही है। हे कामदेव, यदि तुम्हें अपने रूप का गर्व है तो तुम्हारा यह रूप मेरे पति के चरणो पर न्यौछावर है। मेरे पति तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है। यदि तुम्हें रति के प्रेम का गर्व है तो मेरी चरण-धूलि उस रति के मस्तक पर अधीष्ठित कर दो। उसकी प्रीति तो मेरी चरण-धूलि के बराबर भी नहीं है।

फूल ! खिलो   देखकर रोष। (पृ० ३१४)

शब्दार्थ—मनसिज=कामदेव।

भावार्थ—हे फूल तुम आनन्द से खिलते रहो। तुमसे तो मै सतुष्ट हूँ। मुझे तो कामदेव को ही दोषी देखकर उस पर क्रोध आ रहा है।

आई हूँ सशोक   पद जलजात की !" (पृ० ३१४)

शब्दार्थ—अशोक=एक वृक्ष विशेष। भीति=भय। पदाघात=पैरो की चोट। शाता=लक्ष्मण की बहिन। पद-जल-जात=चरण कमल।

भावार्थ—अशोक के वृक्ष को देखकर उर्मिला को अपने विगत जीवन की एक मधुर घटना का स्मरण हो उठता है। उर्मिला उसी सम्बन्ध मे कहती है "हे अशोक के वृक्ष आज तो मैं दुखी बनकर तेरी छाया के तले आई हूँ। हाय तुझे क्या उस बात का स्मरण है जब प्रियतम ने कहा था "हे प्रिय यह अशोक तुम्हारे पैरो की चोट के भय से पहिले से ही फूल गया है। तभी मैंने उनकी बहिन देवी शाता को लक्ष्य कर जी भर हँसी करते हुए सहसा कहा था "हे नाथ आप भूल रहे हैं, यदि ननद शाता अपने चरण कमलों की प्रीति न देती तो ये फूल कैसे फूलते ? अतः यह अशोक के फूल मेरे पदाघात के भय से नहीं फूले, ननद शाता के चरण कमलो के प्रति प्रेम होने के कारण फूले हैं।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि अशोक स्त्रियो के पद-प्रहार से ही फूलता है।

सूखा है यह   वकुल-समाज। (पृ० ३१५)

शब्दार्थ—सकुल=परिपूर्ण। वकुल=मौलसिरी का फूल।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि वियोग की इस अवस्था मे मेरा मुँह तो मलिन हो गया है, और मन भी प्रसन्न नहीं है। परन्तु मै यह चाहती हूँ कि प्रियतम का यह मौलसिरी के फूलों का समूह सदैव भरापूरा रहे।

करूँ बड़ाई यहाँ रसाल! (पृ० ३१५)

शब्दार्थ—रसाल = आम।

भावार्थ—आम के वृक्ष को लक्ष्य कर उर्मिला कहती है कि मै तेरे फूल की प्रशसा करूँ अथवा फल को। हे आम के वृक्ष वास्तविक रूप से तू ही फला फूला है।

देखूँ मैं तुझको सरस-सुवास। (पृ० ३१५)

शब्दार्थ—सविलास=प्रसन्नता सहित। अम्बुकुल=जल का कुल। अमल= निर्मल। विभव=वैभव। जन्य=पुत्र।

भावार्थ कमल को सम्बोधित कर उर्मिला कह रही है "हे सहस्र कलियों वाले सरस और सुगन्धित कमल के फूल खिल। मैं तुझको सदैव आनन्दयुक्त देखूँ। जलकुल के समान निर्मल भला अन्य कौन है? हे अम्बुज, तू उसी की सतान होकर धन्य है, धन्य है। हे श्रेष्ठ कमल के फूल तू ही सरोवरों की विभूति के विकास का कारण है। हे सरस और सुगन्धित सहस्त्रदल कमल सदैव खिलता रह।

कब फूलों के सरस-सुवास। (पृ० ३१५)

शब्दार्थ—मधु=शहद।

भावार्थ—फूलों के साथ फल कब लगते हैं, और फलों के साथ क्या कभी किसी ने फूलों को लगते देखा है। सभी वृक्षों पर पहले फूल लगते हैं और वे ही फलों का स्थान ले लेते हैं। परन्तु हे कमल तू ही एक ऐसा फूल है जिसमें फल, फूल साथ रहते हैं। (कमल के फूल मे कमल गट्टा का फल उसके साथ ही रहता है।) हे मकरन्द के अनुपम भण्डार सहस्त्रदल कमल, सरस और सुगन्धित होकर खिल।

एकमात्र उपमान सुवास। (पृ० ३१५)

शाब्दार्थ—गुरुतम=श्रेष्ट। गेय=गाने योग्य।

भावार्थ—तेरे उपमेय तो अनेक हैं परन्तु उनका उपमान तू एक ही है।

सभी सुन्दर वस्तुओं से तेरी उपमा दी जाती है। रूप, शोभा, गुण, और सुगन्धि में तू ही सब फूलों में श्रेष्ठ है। तेरी प्रशसा के गीत सर्वत्र गाए जाते हैं। तुझमें ही मुझे अपने प्रियतम के अङ्गों का आभास मिलता है। हे सरस और सुवासित सहस्रदल कमल खिल।

तू सुषमा का सुवास। (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—सुषमा=सौन्दर्य। कर=हाथ। रति=कामदेव की पत्नी। मुखाब्ज=मुख कमल। उद्ग्रीव=उठा हुआ। लीला लोचन=क्रीड़ा का नेत्र। राजीव=कमल।

भावार्थ—हे कमल तू सौन्दर्य का हाथ है। रति का उठा हुआ मुख है। क्रीड़ा का नेत्र है और प्रभु का चरण है। तू लहरों के साथ रास रच। हे सरस सुवासित सहस्त्रदल कमल खिल।

विशेष—कमल से हाथ, मुख, नेत्र और चरण की उपमा देते हैं।

सहज सजल सुवास। (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—सद्म=घर।

भावार्थ—हे कमल तू स्वाभाविक सौन्दर्य का जीवन धन है। आर्य जाति के जगत की लक्ष्मी का तू शुभ वास स्थान है। क्या यह विश्वास यथार्थ में सत्य है। हे सहस्र दल कमल सरस और सुभासित बन खिलते रहो।

विशेष—लक्ष्मी का निवास कमल में माना जाता है।

रह कर भी जल-जाल सुवास। (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—जल जाल=जल की लहरों का जाल। अलिप्त=विरत, जो लीन न हो। अरविंद=कमल। मिलिंद=भ्रमर।

भावार्थ—जल की लहरों के जाल में ग्रस्त रह कर भी तू उससे विरत ही रहता है। कमल का फूल सदैव जल से ऊपर उठा रहता है। इसलिए कवि-जनों के मन रूपी भ्रमर प्रसन्न होकर तुझ पर गूँजते हैं। वे तेरी प्रशसा करते हैं। सत्य तो यह है तुझ जैसे दानी का महत्व भला कौन नहीं स्वीकार करेगा ? हे सरस सुवासित सहस्त्र दल कमल खिल।

तेरे पद सरस सुवास। (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सूर्य स्वय आकर अपने हाथों से तेरी कलियों के द्वार खोलता है। (कमल का फूल सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर खिलता है।) स्वय पाप रहित होकर तू सब के दुखो को हरता है। हे मेरे मन रूपी मानसरोवर के हास्य, सरस और सुवासित सहस्त्र दल, तू सदैव खिलता रह।

पैठी है तू .... गतिहीन! (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—षट्पदी = भ्रमरी। सरसिज=कमल। सप्तपदी=विवाह की एक रीति जिसमें वर-वधू अग्नि के चारों साथ साथ चलकर सात चक्कर लगाते हैं।

भावार्थ—उर्मिला भ्रमरी को लक्ष्य करते हुए कहती है कि हे भ्रमरी तू षट्पदी होकर भी अपने कमल मे लीन होकर सयोग सुख प्राप्त कर रही है। परन्तु मैं सप्तपदी देकर भी अपने प्रियतम के साथ विवाही जाने पर भी प्रियतम से अलग हो निश्चेष्ट बनी हुई हूँ।

बिखर कली .... यही रोना। (पृ० ३१७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—कली प्रस्फुटित होकर धूल में झड़ जाती है परन्तु वह कभी सकुचित नहीं होती। मैंने सकोच किया। प्रियतम के चलते समय सकोचवश अपने हृदय की बात उनसे न कह सकी, इसीलिए मेरे मन में कुछ अतृप्ति का भाव शेष रह गया। अब यही समस्त रोना है।

अरी, गूँजती .... मधु मक्खी। (पृ० ३१७)

शब्दार्थ—व्याध = शहद निकालने वाली जगली जाति। लक्खी = लाखों का।

भावार्थ—हे प्रसन्नता से गु जन करती हुई मधुमक्खी बता तू ने अपने छत्ते में यह मधु का रस किसके लिए एकत्र किया है। यह दुर्भाग्य किसी के सचय को सहन नहीं करता। काल भी अपनी घात लगाए रहेगा। व्याध आदि जगली जातियों के लोग जब तेरा यह लाखों का घर लूटेंगे, तब तेरी बात भी न पूछेंगे।

इसे त्याग का .... मधुमक्खी। (पृ० ३१७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हे गूजती हुई मधु मक्खी, व्याध की इस लूट को तुम अपना

त्याग मत बतलाना। क्योंकि त्याग तो स्वेच्छापूर्वक किया जाता है। हाँ इसके सचय में तुमने जो श्रम किया है उसका फल अवश्य लेना। उन कुसुमो का जय जयकार करते हुए उनकी कृतज्ञता अवश्य स्वीकार करना जिनके अमृत के समान मकरन्द रस को तुमने चखा है।

सखि, मैं छोड़ छली ? (३१७-३१८)

शब्दार्थ—भव कानन=ससार रूपी उपवन। हेमअली=स्वर्ण भ्रमर।

भावार्थ—उर्मिला कहती है हे सखि इस ससार रूपी उपवन में मैं एक कली बनकर आई थी। मै खिली ही थी कि मुझसे मिलने एक स्वर्ण भ्रमर उड़ता हुआ आ पहुँचा। हे सखि मैंने मुसकराकर उसका स्वागत किया। तभी न जाने कौन सी हवा चली कि वह छली भ्रमर यह गूँज छोड़ता हुआ न जाने किधर चला गया कि "मेरे आने की प्रतीक्षा मे जीती रहो।"

विशेष—प्रस्तुत अन्योक्ति में उर्मिला ने अपने हृदय के बड़े मर्मस्पर्शी उद्‌गार प्रगट किए हैं। उर्मिला ने कली की भाति विश्व कानन मे प्रवेश किया ही था कि एक स्वर्ण भ्रमर आ पहुँचा। उर्मिला ने लक्ष्मण को हेमअली कहा है। गोर वर्ण के लक्ष्मण के लिए यह कथन उचित भी है। उन्हें श्याम वर्ण का भौंरा कैसे बताया जाता। अभी वह कली से हिला ही था कि कैकेयी के कुचक्र की भयानक आँधी चली और अपनी प्रतीक्षा में कली को छोड़ भ्रमर को उड़ना पड़ा।

छोड, छोड़ लिए जाए हैं। (पृ० ३१८)

शब्दार्थ—लाल=पुत्र।

भावार्थ—सखि फूल तोड़ रही है। उर्मिला इसका निषेध करती हुई कहती है "हे सखि इन फूलो को छोड दे। इन्हें मत तोड। मेरे हाथों के छूने से ही देख ये मुरझा गए हैं ? हमारे इस क्षणिक विनोद के कारण इन फूलों का व्यर्थ ही कितना विनाश होना है। ये जो इन फूलों पर ओस की बूंदें छाई हुई हैं ये वास्तव मे इन लता के पुत्रों फूलो के आँसू हैं। परन्तु नहीं ! तू उन सब खिले हुए फूलों को सहर्ष चुन ले जो रूप, गुण और गध के कारण तेरे मन को भाए हैं। लता ने अपने इन पुत्रों को धूल मे मिलने के लिए

उत्पन्न नहीं किया अपितु गौरव के साथ किसी पर चढने के लिए उन्हें जन्म दिया है।

कैसी हिलती ... मिलने की। (पृ० ३१८)

शब्दार्थ— सरल है।

भावार्थ—हे कली जैसे तेरे हृदय मे खिलने की चचल और व्याकुल अभिलाषा है, वैसी ही पूर्ण आशा मुझे अपने प्रियतम से मिलने की है।

विशेष—अभिलाषा के हिलती डुलती विशेषण का लाक्षणिक प्रयोग विशेषण विपर्यय कहलाता है। छायावादी कवियों की रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं।

इस पद्य के प्रत्येक शब्द में तुक साम्य दृष्टव्य है। तुक का इतना सफल प्रयोग अन्यत्र कठिनता से मिलेगा।

मान छोड दे, मान ... धूलि भरी! (पृ० ३१८)

शब्दार्थ --धूलि=पराग, धूल। मान=गर्व। मान=स्वीकार कर। बेला=समय।

भावार्थ- हे कली मेरी बात मान, अरे यह मान करना छोड़ दे। देख भ्रमर आया है। हँसकर उसका स्वागत कर। फिर यह अवसर नहीं आएगा। वायु की बातों में आकर सिर मत हिला अर्थात् भ्रमर की बातों को अस्वीकार मत कर। (वायु के झोकों से कलियाँ हिलने लगती हैं, कवि की व्यजना है कि कलियाँ वायु के कहने से सिर हिला रही हैं।) सहृदयता से सदैव अपने हृदय को परिपूर्ण रख। तेरे भीतर जो पराग हैं उसको अपने प्रियतम से मत छिपा। यदि तुझ में धूल भी भरी है, कुछ दोष है तब उसे भी अपने प्रियतम के सम्मुख स्पष्ट कर दे।

भिन्न भी भाव-भगी ... आसन छोड़। (पृ० ३१९)

शब्दार्थ---सरल है।

भावार्थ- --रूप सम्पन्न की भाँति भाँति की चेष्टाए भी प्रिय मालूम देती है। इसीलिए फूल धूल उड़ाकर भी आनन्द प्रद प्रतीत होता है। हे फूल इसमें सन्देह नहीं कि रूप और गुण में तेरी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। फिर भी तुझे फल के महत्व को स्वीकार करते हुए उसके लिए

अपना स्थान छोड़ना ही पड़ेगा ।

विशेष--कवि ने इन पक्तियों में सौंदर्य से अधिक उसकी उपयोगिता को अधिक महत्व दिया है ।

सखि, बिखर रङ्गस्थलियाँ । (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—भुकामुकी=भुटपुटा, प्रातःकाल अथवा सध्या का वह सन्धि काल जिस समय अन्धकार के कारण किसी वस्तु को पहिचानने में कठिनता हो । रगस्थलियों=आमोद-प्रमोद के स्थान ।

भावार्थ—हे सखि देख ये कलियाँ बिखर गई हैं । भुटपुटे समय में इनके साथ विलास-क्रीड़ा करके इनका प्रिय कहाँ चला गया ? उपवन की इन वीथियों की ओर आकृष्ट होकर पवन क्या लौट सकेगा ? अब तो यदि ये अपनी रगस्थलियों की स्मृति में लीन रहें, तो इनके लिए यही पर्याप्त है । उर्मिला की वयः सधि में लक्ष्मण ने प्रवेश किया । कुछ दिन रग रेलियों मे बीते । लक्ष्मण चले गये । उर्मिला के जीवनोद्यान की कलियाँ बिखर गईं । अब तो उसकी एक मात्र इच्छा यही है कि जिस स्थान पर प्रियतम के साथ रग रेलियाँ की थीं । वहीं उसके प्राण, उसका जीवन समा जाय ।

कह कथा त्राण से । (पृ० ३१६)

शब्दार्थ—घ्राण=नाक । त्राण से=कुशल से ।

भावार्थ—हे सखि फूलों की मधुमय सुगन्ध नाक से अपनी कथा कहकर प्राणों की भाँति चली गई । (सुगन्धि का अनुभव नाक से किया जाता है ।) हे सखि हम सब को वृक्षों से फल की प्राप्ति तो होनी चाहिए परन्तु बीजों की रक्षा अवश्य होनी चाहिए जिससे कि वृक्षो की वश वृद्धि में बाधा न हो ।

उठती है उर कौन कूक ? (पृ० ३१६)

शब्दार्थ-- लय=स्वर । लूक=लपट ।

भावार्थ---कोयल को लक्ष्य करके उर्मिला कहती है "हे कोयल बतला तो सही यह तेरी कैसी कूक है जिसे सुनकर हृदय मे हूक सी उठती है ? तेरी यह कूक कितनी आर्त्त वेदना से भरी और गभीर है । ऐसा प्रतीत होता है

जैसे वह आकाश का हृदय चीरकर निकली है। तेरा स्वर तो ज्वाला के समान है जिसके लगते ही दोनों नेत्र आँसुओं से भर उठते हैं। हे कोयल बतला तो सही यह तेरी कैसी कूक है?

तेरे क्रन्दन तक कौन कूक? (पृ० ३२०)

शब्दार्थ--सरल है।

भावार्थ--हे कोयल, तू तो वेदना से भरा आर्त्तक्रदन करती है, परन्तु ससार के निष्ठुर कानों को उसी में सुन्दर सङ्गीत प्रतीत होता है। दुनिया के हम व्यवहार निपुण व्यक्ति दूसरों के दुख से ऐसा महान रस प्राप्त करने का अवसर क्यों छोड़ें? हे कोयल यह तो बता, यह तेरी कैसी कूक है?

री, आवेगा कौन कूक? (पृ०३२०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ-- उर्मिला कहती हैं कि हे कोयल दुखी मत हो धैर्य धारण कर! जैसे मेरे पति अवधि समाप्त होने पर लौटकर आएँगे उसी प्रकार तेरा बसन्त भी पुनः आएगा। दुख का समय सदैव नहीं बना रहता। उसका भी अन्त होता है। बुरे दिनों को देखकर चुप ही रहिए। हे कोयल बता यह तेरी कैसी कूक है।

अरे एक मन रो दिया। (पृ० ३२०)

शब्दार्थ—भरम=रहस्य।

भावार्थ—हे मेरे एकमात्र मन तुझे तो किसी प्रकार रोकथाम कर मैंने अपने वश में कर लिया, परन्तु इन दो नेत्रो ने तो आँसू बहाकर मेरे सारे दुख के रहस्य को ही खोल दिया।

विशेष—उर्मिला अपने दुख को ससार के सामने व्यक्त नहीं करना चाहती। एक मन को तो उन्होंने अपने वश में कर लिया, परन्तु दो नेत्रों को न रोक सकी। एक की अपेक्षा दो को समझाना कठिन भी होता है।

हे मानस के मोती तुम्हें पहचाने? (पृ० ३२०)

शब्दार्थ—मानस=मन, मानसरोवर।

भावार्थ—अपने आँसुओं को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है "हे मन रूपी मानसरोवर के मोती तुम बिना सोचे-समझे कहाँ ढलक रहे हो?

प्रियतम तो दूर गहन जगल में हैं। वे ही तेरे दुख का मूल्यांकन कर पाते। और कौन व्यक्ति है जो तेरी वेदना को पहिचान सके ?

न जा अधीर दुकूल में। (पृ० ३२०)

शब्दार्थ—दृगम्बु=नेत्रों का जल। दुकूल=वस्त्र।

भावार्थ—हे मेरे नेत्रों के जल इस व्याकुलता के साथ धूल में जाकर मत मिल। मेरे अन्चल में आ। यह जल जो लता को सींचकर उसे पल्लवित करता है, वही जल आँसुओं के रूप मे मेरी वेदना को व्यजित करता है। इसलिए हम दोनों (लता और उर्मिला) के मूल में यह एक जल ही विद्यमान रहे, जो कि मेरे आँसुओं के रूप मे व्यक्त होता रहे और लता के फूलों के रूप में। हे मेरे नेत्रों के जल मेरे अंचल में आ जा।

फूल और आँसू दुकूल में। (पृ० ३२१)

शब्दार्थ—हूल=हूक, पीड़ा। सूत्र=डोरा। सूची=सुई। अनी=नोक।

भावार्थ—फूल और आँसू दोनों ही हृदय की वेदना से उत्पन्न होते हैं। परन्तु क्या फूलों को एक धागे मे पिरो देने वाली सुई से विरह के शूल की नोक कम है ? अर्थात् जैसे सुई और धागे के द्वारा फूल एक लडी में गूँथे जाते हैं, उर्मिला कहती है कि उसी प्रकार मैं अपने विरह रूपी शूल की नोक से आँसुओं की माला नहीं पिरो सकती ? हे मेरे नेत्रो के जल मेरे अंचल मे आ।

मधु हँसने में दुकूल में। (पृ० ३२१)

शब्दार्थ—लवण=नमक।

भावार्थ—हँसना मधुर है और रोना लवण की भाँति खारीपन लिए होता है। इस सम्बन्ध में किसी को कोई भ्रम न हो। परन्तु वास्तविक आनन्द तो बीच मँझधार मे हैं या किनारे पर या तो रुदन और हास्य के बीच की स्थिति मे है अथवा रुदन और हास्य दोनों से विरक्त की भाति तटस्थ रहने में है। हे मेरे नेत्रो के आँसू मेरे अचल मे आओ।

नयनों को रोने यहाँ पैठे है। (पृ० ३२१)

भावार्थ—मन को लक्ष्य कर उर्मिला कहती है "हे मन इन नेत्रो को रोने दो। परन्तु तू अपने को सकीर्ण मत बना। क्योंकि प्रियतम नेत्रों से अवश्य

श्रोझल हो गए हैं, परन्तु वे तुझसे विलग नहीं हुए हैं। यहीं कहीं तुझमें प्रविष्ठ हैं। इसलिए नेत्रों की भाँति तू उदास मत हो।

आँख, बता दे ढोती है ? (पृ० ३२१)

शब्दार्थ—अधर-दशन = होठों और दाँत।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे नेत्र बतला तो सही कि वास्तव में तुम रो रहे हो अथवा हँस रहे हो। क्योंकि ये तुम्हारे आँसू हँसने के कारण दिखाई देने वाले दाँत हैं, क्या लाल आँखें लाल होंठ हैं अथवा तुम इस प्रकार रोते हुए अपने में आँसुओं को भरकर उनका भार ढो रहे हो।

बने रहो मेरे क्रीड़ा मीन। (पृ० ३२१)

शब्दार्थ—मीन=मछली। क्रीड़ा=आनन्द।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे मेरे नेत्र तुम मेरे मन रूपी मानसरोवर के जल अर्थात् आँसुओं मे सदा लीन रहो। क्योंकि प्रियतम ने चपल मछली के समान तुम्हें सदैव अपनी क्रीड़ा का साधन माना है।

विशेष—उर्मिला के मछली के समान नेत्र लक्ष्मण के लिए सदैव आनंद प्रदान करने वाले रहे हैं। मछली जल बिना जीवित नहीं रह सकती। इसलिए उर्मिला के मीन नेत्रों को भी जीवित रहने के लिए मन की वेदना से उत्पन्न अश्रु जल की आवश्यकता है।

सखे, जाओ रोने में मोती। (पृ० ३२१)

शब्दार्थ—सखे=मित्र, यहाँ लक्ष्मण से अभिप्राय है। अहर्निशि=रात-दिन। अबाध्य=बिना किसी बाधा के।

भावार्थ—अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए उर्मिला कहती है—'हे प्रियतम तुम मुझे भले ही हँसकर भूल जाओ, परन्तु मैं तो सदैव तुम्हारा स्मरण कर रोती रहती हूँ। परन्तु मेरे रुदन का मूल्य तुम्हारे हँसने से किसी भी प्रकार कम नहीं है। तुम्हारा हास्य यदि फूलों के समान है तो मेरे आँसू भी मोती के समान हैं। मै यह स्वीकार करती हूँ कि तुम्हीं मेरे एकमात्र इष्ट हो। रात-दिन मैं तुम्हारी ही आराधना किया करती हूँ। चाहे जागती रहूँ अथवा सुप्तावस्था में होऊँ निरन्तर तुम्हारी ही साधिका हूँ। तुम्हारी हँसी में यदि फूल हैं तो मेरे रोने मे भी मोती हैं।

सफल हो रोने में मोती। (पृ० ३२२)

शब्दार्थ—सिद्धि = तपस्या का फल। साधना = तपस्या। सुधा=अमृत। क्षुधा = भूख।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे प्रियतम तुम्हारा सहज त्याग सफल हो। मेरा यह प्रेम भी निष्फल नहीं है। मेरे लिए तो यह वियोग-साधना ही स्वय सिद्धि के समान है। अमृत का महत्त्व भी उसके प्रति लोगो की तीव्र उत्कण्ठा मे निहित है। इसीलिए बिना साधना के सिद्धि का कोई मूल्य नहीं। तुम्हारा हास्य यदि फूलों के समान है, तो मेरे आँसू भी मोती के समान हैं।

काल की रुके रोने मे मोती। (पृ० ३२२)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—यह समय का प्रवाह चाहे न रुके और समय की गतिशीलता के कारण वियोग का समय प्रतिपल घटता रहे, फिर भी सयोग से विरह का समय बड़ा है। सयोग से वियोग अधिक महत्त्वशाली है। सयोग में तो प्रिय का केवल तादात्म्य ही होता है, परन्तु विरह में तो लय से भी कहीं अधिक लय की स्थिति होती है। अपने आँसू बहाकर मै तुम्हारे दर्शनों के लिए अपने नेत्रों को स्वच्छ कर रही हूँ। तुम्हारा हास्य यदि फूलों के समान है तो मेरे आँसू मोतियों के समान हैं।

अर्थ, तुझे भी और निर्वाह ?(पृ० ३२२)

शब्दार्थ—अर्थ=अभिप्राय। पद=शब्द।

भावार्थ—उर्मिला के मनोवेग शब्दो द्वारा व्यक्त होना चाहते हैं। उर्मिला इस सम्बन्ध में कहती है "हे मेरे हृदय की बात क्या तू भी शब्दो द्वारा व्यक्त होना चाहती है? क्या इस वेदना से रुद्ध हृदय मे तू और अधिक समय तक नहीं रहना चाहती? (उर्मिला की वेदना वस्तुतः उस स्थिति तक पहुँच गई है कि उसे प्रगट न करना उसके लिए असम्भव सा हो गया है।)

स्वजनि, रोता है मेरा गान। (पृ० ३२२)

शब्दार्थ—स्वजनि=सखि। जजाल=दुख। झड़ पड़ते हैं=बिखर जाते हैं। आलाप=गाना। विलाप=रुदन।

भावार्थ—हे सखि, मेरा गान भी रुदन से परिपूर्ण है। मेरा गाना ही

रोना बन गया है। दुख से भरे इस गान की कोई तान प्रियतम तक भी तो नहीं पहुँच पाती। मेरे हृदय के दुख का बोझ तो समीर से भी नहीं उठाया जाता, इसीलिए तो मेरे गान के सभी स्वर ताल शून्य में बिखर जाते हैं। मेरा गान तो रुदन के समान ही व्यर्थ बन रहा है। हे सखि, मेरे गाने में भी विषाद का स्वर मिला हुआ है।

उड़ने को है मेरा गान। (पृ० ३२३)

शब्दार्थ—भावानन्द=हृदय की उमग भरी भावनाएँ। छन्द=काव्य में व्यवहृत छन्द, बन्धन, मर्यादा। पदगौरव=शब्द सौष्ठव, राजबधू के नाते उर्मिला की उच्चस्थिति।

भावार्थ—मेरे हृदय की उमग भरी भावनाएँ स्वच्छन्द गति से उड़ने के लिए तड़प रही हैं। परन्तु मर्यादा का बन्धन मेरे पदगौरव का ध्यान दिलाकर व्यर्थ हृदय की अभिलाषा को बड़े प्रेम से फुसलाकर रोक रहा है।

'छन्द' और 'पदगौरव' के शब्द श्लेष से इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी है "हे सखि, मेरे हृदय की भावनाएँ तो स्वच्छन्द रूप से अभिव्यक्त होने के लिए तड़प रही हैं। वाणी का बन्धन उन्हें नहीं चाहिए। परन्तु ये छन्द शब्द सौष्ठव का लोभ देकर व्यर्थ ही उन भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। उर्मिला के भाव प्रिय तक पहुँचना चाहते हैं लेकिन छन्द उन भावों के लिए ये बन्धन बन जाते हैं वे भाव पख पसार कर उड़ नहीं पाते। इस से यह भी ध्वनित होता है कि कवि पर भी छन्दों का प्रतिबन्ध रहता है जिससे भावों में स्वच्छन्द प्रवाह नहीं आने पाता है।

हे सखि मेरे गान में विषाद का स्वर मिला हुआ है।

अपना पानी मेरा गान। (पृ० ३२३)

शब्दार्थ—पानी=आँसू।

भावार्थ—हे सखि, ये आँसू अपनी वेदना के रहस्य को भी नहीं छिपा पाते। दिन रात आँखें ही इन आँसुओं को बहा रही हैं। हे सखि न प्रकट करने वाली बातों को भी ये आँसू ही प्रगट कर देते हैं। मेरा गान भी इन से पूर्ण है।

विशेष—आँख का पानी ढल जाना मुहावरा है जिसका अभिप्राय है

लाज-शर्म का जाना। उपर्युक्त पक्तियों में इस मुहावरे का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। नेत्रों के आँसुओं के रूप में जैसे विरहिणी की प्रतिष्ठा उसका साथ छोड़ रही है।

दुख भी मुझ से .... मेरा गान। (पृ० ३२३)

शब्दार्थ—प्रयाण=प्रस्थान।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि कहीं मेरे दुख भी मुझसे मुँह मोड़कर न चले जायें। सुख तो पहले ही उससे विमुख हो गए, अब तो दुख ही उसके प्राणों को अटकाये हुये हैं। हे दुख मेरी बात को मान, विरह में मुझे मत छोड़, मेरे निकट आजा।

हे सखि आज मेरा गान भी रुदन ही कर रहा है।

यही आता है .... इस मन मे। (पृ० ३२३)

शब्दार्थ—समाधान=निराकरण।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि मरे हृदय मे बारबार यही इच्छा उत्पन्न होती है कि ये राज-प्रासाद और इनका सारा वैभव छोड़कर बन मे ही जाकर रहूँ। मै वहाँ जाकर प्रियतम के कार्य मे बाधक नहीं बनना चाहती, इसीलिए उनके निकट होकर भी शारीरिक रूप से उनसे दूर ही रहना चाहती हूँ। प्रिय का समागम न होने से मुझे दुख तो होगा, परन्तु उनके दर्शनो का लाभ प्राप्त कर मुझे सतोष और सुख भी प्राप्त होगा। अतः मेरा रुदन वहाँ हर्ष मे डूबा रहेगा। यहाँ रह कर तो हर्ष है ही नहीं। मेरे मन में यही इच्छा उत्पन्न हो रही है।

बीच बीच में .... इस मन मे। (पृ० ३२४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—वन में रहकर मै कभी-कभी अपने प्रियतम को झुरमुट की ओट से देख लिया करूँ। जब वे उस मार्ग से निकल जाएँ तो उनके चरणो की धूल मे लोट जाऊँ। प्रियतम अपनी साधना मे ही निमग्न रहें। मेरे हृदय में आज यही अभिलाषा जाग रही है।

जाती जाती .... इस मन में। (पृ० ३२४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—जनमात्र को जाते जाते और गाते गाते में यह बात सुना देना चाहती हूँ कि इस ससार में धन के पीछे इतना उत्पात करना उचित नहीं है। प्रेम ही जीवन में श्रेष्ठ है। इसी की विजय होती है। मेरे हृदय में आज यही इच्छा उत्पन्न हो रही है।

अब जो प्रियतम   हा हा खाऊ ? (पृ० ३२४)

शब्दार्थ—रमाऊँ=लीन रहूँ। श्रात=थके हुए। अनल=आग। वाष्प= भाप। घट=घड़ा, शरीर।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि यदि अब मुझे प्रियतम मिल जायँ तो यही अभिलाषा है कि उनके चरणों की धूल में अपने को लीन करलूँ। यदि मेरे लिए अवधि बनना सम्भव हो सके तब तो मैं एक पल की भी देर नहीं लगाऊँ। फिर तो मैं अपने को मिटाकर शीघ्र ही बनमें जाकर उनको ले आऊँ। (अवधि समाप्त होने से पूर्व तो लक्ष्मण आ ही नहीं सकते, उस स्थिति में उर्मिला यदि अवधि बन सके तो वह स्वय को मिटाकर भी प्रियतम को लौटा लावे) मैंने उषा की भाँति इस जीवन में प्रवेश किया था, क्या सध्या के समान अब अपना जीवन समाप्त करलूँ ? मेरे लिये यह उचित नहीं। मैं तो यह चाहती हूँ कि प्रियतम यदि थके हुए पवन के समान बन से आएँ तो मैं फूलों की सुगन्धि की भाँति उसमें विलीन हो जाऊँ। मेरे हृदय की अपार वेदना रुदन पूर्ण गान का रूप लेकर अपने को प्रगट करने के लिए व्यग्र हो रही है। उधर गान कहता है कि रोना आवे तभी तो मैं हृदय से निकलू। इधर तो हृदय मे विरह की अग्नि है और उधर नेत्रों में अश्रु जल है। कहीं आग और जल के सयोग से बनने वाली प्रवल वाष्प के कारण मेरा यह शरीर रूपी घड़ा फूट न जाय। विरह की अपार वेदना से मैं मर न जाऊ। हाय अब मैं किधर बचूँ ? हे सखि बता क्या मैं जीवन के लिए हा हा खाकर गिड़गिड़ाऊ ?

उठ अवार न   भी नई। (पृ० ३२५)

शब्दार्थ—अवार = नदी के इस पार का किनारा। उर्मि = लहर। भवार्णव = ससार सागर।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि मैं इस ससार सागर की वह नवीन [illegible]त्र लहर हू जो इस किनारे से उठकर भी उस पार तक नहीं पहुंच सकी।

इस ससार सागर को पार न कर सकी।

अटक जीवन के   की नई। (पृ० ३२५)

शब्दार्थ—कर्षण=खींचना, आकर्षण। जीवन=जल, जिन्दगी। चक्कर=जल भँवर, बाधायें।

भावार्थ- जल की विशेष क्रिया के समान जीवन की विषम परिस्थितियों के कारण मैं बीच मे ही अटक कर रह गई और अब मझधार में ही भटकती फिर रही हूँ। जिस प्रकार वायु की प्रतिकूलना के कारण लहर इच्छा होते हुए भी कूल, कु ज और कछारो तक नहीं पहुँच पाती उसी प्रकार कूल लता गृह और कछारो मे आकर्षण होने पर भी समय की प्रतिकूलता के कारण मेरे जीवन की तरगें वहाँ तक नहीं पहुँच पातीं। चारों ओर जल भवर के समान अनेक बाधाए हैं। मैं तो इस ससार सागर की एक विचित्र लहर हूँ।

विशेष—जीवन और चक्कर श्लिष्ट शब्द हैं।

पर विलीन नही   की नई! (पृ० ३२५)

शब्दार्थ—दई=विधाता, देव।

भावार्थ-मै गतिहीन हू, फिर भी मैंने समुद्र में अपने को विलीन नहीं कर दिया। निरुपाय होने पर भी ससार मे अपने को भुला नहीं दिया। परिस्थितियो के कारण मै दीन अवश्य हो गई हूँ, परन्तु दीनता के भार से मैंने अपने गौरव को नहीं छोड़ा है। विवश होने पर भी मैंने किसी की अधीनता स्वीकार नहीं की है। मै अपने अधीन हूँ अथवा अपनी आत्मा को भी मैंने अपने वश में कर लिया। हे सखि मिलन से पूर्व ही मै तो अपने प्रियतम में लीन होगई हूँ। भाग्य जो कुछ कर सकता था वह कर चुका अब वह मेरा अधिक क्या कर सकेगा? मै तो ससार सागर की ऐसी विचित्र तरग हू।

आए एक बार   उस मुसकान मे! (३२५--३२६)

शब्दार्थ—गोपनीय=छिपाने योग्य। कर्ण मूल=कानों का नीचा भाग। छद्म-दान=गुप्त दान। कृती=क्षमतावान।

भावार्थ—संयोगवस्था की एक मधुर स्मृति का उल्लेख करती हुई उर्मिला कहती है कि हे सखी एक बार प्रियतम मेरे पास आकर बोले-एक बात कहूँ, परन्तु उसका विषय बड़ा गोपनीय है। अतः उसे कान में ही सुनो। मैंने उत्तर

मे कहा था—यहाँ और कौन है ? तब प्रियतम बोले हे प्रिये, ये चित्र तो हैं। राजनीति के नियमानुसार तो चित्र भी सुनते हैं, अर्थात् दीवालों के भी कान होते हैं। तब फिर उन्होंने अपने होठों से मेरे कर्ण मूल को लाल कर कहा क्या कहूँ मैं भी इस गुप्तदान से गद्‌गद् हूँ। क्षमतावान व्यक्ति वस्तुतः कहते नही हैं अपितु करते हैं। हे सखि उनकी मुस्कान से मैं खीझ कर भी प्रसन्न हो उठी थी।

-मेरे चपल तू ही लाल ! (पृ० ३०६)

शब्दार्थ—यौवन-बाल=यौवन रूपी शिशु। साल=दुख देना। मणि-माल=मनोरथ रूपी मोतियों की माला। लाल=माणिक, यौवन।

भावार्थ—उर्मिला नवयुवती है और उसके हृदय मे यौवन जनित उमगों का उठना स्वाभाविक ही है। वियोग के दिनों में कभी कभी उसका यौवन मचलने लगता है। तब उर्मिला बड़े स्नेह पूर्वक उसे समझाती हुई कहती है—हे मेरे चचल यौवन रूपी शिशु मेरे अचल में निश्चल होकर सोया रह। मचल कर मेरे हृदय को दुखी मत बना। वियोग की रात्रि को समाप्त होने दे, फिर मिलन का चिरकालीन सुप्रभात होगा। उस समय मनोरथों के पूर्ण होने पर मोतियों की माला पहिन कर मन के खेल खेलना। हृदय भर कर आनन्द मनाना। अब शीघ्र ही तेरा भाग्य रूपी मधुर फल पकने वाला है। अर्थात् तेरे सुन्दर भाग्य का उदय होने वाला है। अब तेरे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। दुख का समय व्यतीत हो रहा है और सुख का अवसर आ रहा है। इस दुःखनी का शरीर पूजा का थाल है और मन पुजारी है। मन ने पुजारी बनकर हे मेरे प्रिय यौवन रूपी रत्न तुझे ही थाल में रखकर प्रियतम को भेट में देना चाहा है।

विशेष—अन्तिम दो पक्तियों में बड़ा सुन्दर रूपक है।

यही वाटिका थी की मन्मयी (पृ० ३२६–३२७)

शब्दार्थ—वल्लकी=वीणा। टेक=गति का पहला पद। कात=प्रियतम। जयी=लक्ष्मण। मन्मयी=अन्तर्मुखी, लीन होना।

भावार्थ-अपने बीते दिनों का स्मरण करती हुई उर्मिला कहती है कि यही उपवन था, भूमि भी यही थी। चन्द्रमा रात्रि में आज ही की भाति चाँदनी

बिखेर रहा था। इसी वीणा को गोद में लेकर मैं अत्यन्त आनन्द के साथ बजा रही थी। अपने इस कंठ से भला मैं कौनसा गीत गा रही थी ? वह गीत था– ... था दुर्ग तू मानिनी मान था। अर्थात् नायक जैसे कह रहा हो कि दुर्ग के तोड़ने से भी मानिनी का मान भंग करना कठिन है। मैं आत्म विभोर होकर गीत के इस पहले पद के रूप में प्रियतम की ही भावना को वीणा द्वारा झंकृत कर रही थी। इतने में ही बिना कोई शब्द किए अकस्मात प्रियतम वहाँ आ पहुँचे। उस समय उनकी वृत्ति जैसे मुझमें ही लीन हो रही थी।

सखी, आपही   कोटिया से झिला (पृ० ३२७–३२८)

शब्दार्थ—चाप टंकार=धनुष को टंकार। चाप कोटियो=धनुष की नौकों।

भावार्थ—हे सखी गीत सुनकर प्रियतम स्वयं ही यह कह हँसने लगे कि हम तो अपने को बड़ा वीर समझते थे, परन्तु आज तो हम भी बुरे फँसे। हे सखी तब मैं भी हँस पड़ी और मैंने उत्तर दिया–अजी मानिनी तो चली गई क्योंकि इस समय मैं मान किए नहीं बैठी हूँ। आपकी इस अकस्मात मिली विजय पर आपको बधाई है। उन्होंने कहा–हे प्रिये यहाँ तो हार भी जीत हैं। परन्तु तुमने अपना यह नया गीत बन्द क्यों कर दिया ? उत्तर में मैंने कहा—जहाँ धनुष की टंकार आगई वहाँ वीणा की झंकार तो व्यर्थ ही है। प्रियतम बोले--हे प्रिये, धनुष की टंकार तो इस समय शांत है। उसने तो स्वयं अपने को वीणा की झंकार में लीन कर दिया है। मैंने पूछा- इस संसार में वीणा झंकार और धनुष की टंकार में कौन अधिक उपयुक्त है ? प्रियतम ने उत्तर दिया था-- हे शुभे अपने अपने स्थान पर दोनो उचित हैं। वीणा की झंकार घर में और धनुष को टंकार युद्ध में धन्य हैं। धनुष की टंकार का अस्तित्व ही इसी लिए है कि वह वीणा की झंकार को कभी टूटने न दे। वह सुख और शांति की प्रतीक कला और सङ्गीत की रक्षा में सदैव तत्पर रहे। वैसे तो यही उचित है कि धनुष की टंकार शांत ही बनी रहे। कभी उसकी आवश्यकता ही न पड़े। चारों ओर सुख और शांति की आनन्द ध्वनि गूंजती रहे। परन्तु सुनो, यह संसार लोभ और स्वार्थ के वशीभूत है। इसीलिए संसार में इतना दुख और क्लेश है। अतः हमें क्षत्रियों के नाते संसार में जो शांति स्थापन का दायित्व मिला है उसका निर्वाह हम इन्हीं धनुष की नौकों से करते हैं।

हुआ, किन्तु मेरा रहें (पृ० ३२८)

शब्दार्थ—कोदण्ड विद्या = धनुर्विद्या । तांत्रिकी = मन्त्र फूँकने वाली, मोहिनी विद्या सिखाने वाली ।

भावार्थ—उर्मिला ने कहा—अस्तु, मेरे लिए तो तुम्हारी यह धनुर्विद्या की कला व्यर्थ ही है। भला मैं इसे क्यों सीखूँ ? मेरे लिए यह सङ्गीत ही श्रेष्ठ है। इससे मेरे कान कलह और अशांति के विरोधी स्वरों से बचते रहेंगे। अत. धनुर्विद्या सीखने के लिए मैं तुम्हारी शिष्यता क्यों स्वीकार करूँ। हाँ यदि तुम सङ्गीत सीखना चाहो तो मैं तुम्हारी शिक्षिका या तांत्रिकी जैसा तुम कहो, बन सकती हूँ। तुम अपने धनुष के बल से मृगों को पकड़कर दिखाओ तो सही। अर्थात् तुम उनका बध कर सकते हो, परन्तु उन्हें पकड़ नहीं सकते। परन्तु यदि तुम कहो तो मैं अपने सङ्गीत से उन्हें अपने पास खींचकर बुला सकती हूँ। इस पर प्रियतम ने कहा था - बस तुमने मुझ जैसे हरिण को तो अपने पास खींच ही लिया है, फिर तुम शिष्या से शिक्षिका बनना क्यों न चाहोगी ? तुम अपने संगीत की धारा को प्रवाहित होने दो, मेरा धनुष तो एक कोने में पड़ा विश्राम करता रहेगा।

इसी भाँति अलाप रही मैं शिला (पृ० ३२६)

शब्दार्थ—आलाप सलाप=वार्तालाप । कोश=खजाना । सिद्ध शिला= वह शिला जिस पर योगी सिद्धि प्राप्त करता है।

भावार्थ—हे सखी हमारा समय इसी प्रकार विनोद पूर्ण मधुर वार्तालाप में व्यतीत हुआ करता था। आज का यह अभिशाप जनित वेदना का ताप तब नहीं था। उस समय हमारा जीवन पूर्ण सन्तोष और सुख से परिपूर्ण था। सन्तोष का खजाना तो कभी रिक्त ही नहीं होता था। परन्तु आज यहाँ क्या से क्या हो गया ? वे दिन अब कहाँ चले गए ? मथरा ने तो हमारे हाथों का तोता ही उड़ा दिया। हमारे सभी सुख स्वप्नों पर पानी फेर दिया। माँ कैकेयी को शून्य से भरा हृदय रूपी पिंजड़ा ही मिला। मेरे जीवन की सिद्ध शिला का योगी तो चला गया, अब तो मैं कोरी शिला बन कर रह गया हूँ।

स्वप्न का वह कहाँ अभी ? (पृ० ३२६)

शब्दार्थ—परित्राण=रक्षा ।

भावार्थ—बीते दिनों का स्मरण करती हुई उर्मिला कहती है कि वे सुख के दिन अब स्वप्न के समान बन गए हैं। क्या मैं उनको फिर देख सकूँगी। वह सुखी जीवन क्या फिर लौटकर आएगा ? किन्तु इस वर्त्तमान दुख से अभी मुझे कहाँ मुक्ति मिल सकती है ?

कूड़े से भी हैं फिरते ! (पृ० ३२६)

शब्दार्थ—अदृष्ट=भाग्य। घूड़े=वह स्थान जहाँ कूड़ा कर्कट इकट्ठा किया जाता है।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हमारा भाग्य तो कूड़े से भी गया बीता न गया है। सुना जाता है कि बारह वर्षों में घूरे के दिन भी फिरते हैं, परन्तु उर्मिला का भाग्य तो चौदह वर्ष बाद बदलने को है।)

रस पिया सखि स्वप्न समाधि ही। (३२६--३३०)

शब्दार्थ—अलभ्य=दुष्प्राप्य। आधि=मानसिक रोग।

भावार्थ—उर्मिला अपने सुख भरे अतीत और वेदना पूर्ण वर्त्तमान की विषमता पर प्रकाश डालती हुई कहती है—हे सखि जहाँ हमने नित्य नए सुख का भोग किया था, अब वहाँ विष भी मुझे दुष्प्राप्य हो गया है। अब मरने का भी मुझे अधिकार नहीं रहा। जीवन और मरण मे सदैव प्रियतम के साथ बनी रहने वाली मैं वन मे पक्षिणी के समान उनके साथ न रह सकी। सखि वर्त्तमान की इस दुख भरी अवस्था को तू पूर्ण रूप से देखले, और अतीत के आनन्द विहार के विषय में सोच दोनो में कितना अन्तर है ? जो आनन्द, सुख के प्रसाधन पहले प्रत्यक्ष प्रकाशित थे वे ही अब दुखी होकर रो रहे हैं। हे सखि यदि मैं पागल हो जाऊँ तो मेरी कुशलता ही है। क्योंकि इस स्थिति में मैं अपनापन भूल जाऊँगी। वेदना का अनुभव मुझे न होगा। हे सखि तुझे शपथ है, मेरे पागलपन का उपचार मत करना। तुमतो उनके अवधि समाप्त होने के ध्यान में ही लीन रहना अवधि शीघ्र समाप्त होने का ही प्रयत्न करना। मेरे पागल होने पर मुझे तो प्रियतम के इस कानन कुंज में जहाँ हमारे मिलन और वार्त्तालाप की स्मृति राशि छिपी हुई है—निर्भय होकर छोड़ देना। मेरे हँसने और रोने पर तनिक दुखित मत होना। तुम मेरे इस पागलपन को मृत्यु अथवा किसी भी प्रकार का शारीरिक या

मानसिक रोग मत समझना। इसे केवल स्वप्न समाधि मात्र ही जानना।

हहह! पागल .... भोग सखी ! (पृ० ३३०–३३१)

शब्दार्थ—किला=कीला हुआ, वश में किया हुआ।

भावार्थ—हहा! यदि उर्मिला पागल हो जाय तो यह विरह रूपी सर्प शक्तिहीन होकर स्वय वश मे हो जायगा। प्रियतम जब बन से लौटकर आएँगे तब यह उन्माद और पागलपन के रोग सभी नष्ट हो जायँगे। तब मेरे स्वप्न, स्वप्नमात्र न रहकर प्रत्यक्ष बन जायँगे।

उन्मादवश उर्मिला सोचने लगती है कि प्रिय उसके समक्ष ही खड़े हैं, परन्तु उनसे मिलने के लिए जब वह हाथ बढाती है तब उसके हाथ खाली ही रह जाते हैं। उर्मिला कहती है कि न तो यह वियोग ही है क्योंकि प्रिय सामने ही खड़े दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु इसे सयोग भी नहीं कह सकते क्योंकि मिलन के लिए बढ़ाए गए हाथ खाली ही रहते हैं। हे सखि बताओ तो सही, मै कौन से भाग्य का फल भोग रही हूँ ?

विचारती हूँ .... दीख जाते! (पृ० ३३०)

शब्दार्थ—अरण्य=जगल।

भावार्थ—हे सखि कभी कभी मैं यह कल्पना करती हूँ कि प्रिय जगल से लौट आए हैं और छिपकर हम सब की दशा देख रहे हैं। कभी-कभी स्वय भी कुछ दिखलाई दे जाते हैं।

आते यहाँ नाथ .... पी रहे। (पृ० ३३१)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—हे सखि प्रियतम यहाँ हमारी अवस्था देखने आते हैं अथवा हमारा इस स्थिति से उद्धार कर हमें तारने के लिए आते हैं। अथवा वे यह देखने के लिए आते हैं कि हम किस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यदि ऐसी ही बात है तो वे यह जान लें कि हम रो-रोकर दिन काट रहे हैं।

सखि, विचार .... नए-नए ! (पृ० ३३१)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—उर्मिला कहती है कि हे सखि, कभी मन में यह विचार उठता है कि अवधि समाप्त हो गई है और प्रिय लौट कर आ गए हैं। तब

भी मैं उनसे मिलते हुए सकुचा रही हूँ। प्रियतम तो वही हैं, पर आज कुछ नए-नए से जान पड़ रहे हैं।

निरखती सखी माधवी मिली। (पृ० ३३२)

शब्दार्थ—द्युति-दीप्ति=कांति, शोभा। भ्रांत=उन्माद ग्रस्त। केलिकुंज=केलिकुंज।

भावार्थ—हे सखि, आज मैं जिधर देखती हूँ उधर ही प्रियतम की कांति मुझे दिखलाई देती है। (इस पर सखि जब उर्मिला को उन्मादिनी कहती है तब उत्तर में उर्मिला कहती है)। "हहा! यदि मैं भ्रांत हो गई हूँ तो भ्रांत ही बनी रहूँ। यदि यह सत्य है तो यह सत्य ही बना रहे और यदि यह असत्य है तो मुझे फिर किसी अन्य सत्य की आवश्यकता नहीं।

हे सखि प्रियतम आ गए, स्वामी आ गए। जलते हुए प्राणों को नव-जीवन मिल गया। हंस के समान शुभ्र वर्ण वाले मेरे प्रियतम केलिकुंज से निकलकर प्रेमपुंज के समान खड़े हैं। उन्हें देख। चारु चन्द्रमा की सुन्दर चाँदनी सर्वत्र छिटक रही है और माधवी लता अपने अशोक वृक्ष से भेंट रही है।

अवधि हो गई कौन अन्य है। (पृ० ३३२-३३३)

शब्दार्थ—त्वरित=शीघ्र। दगम्बु=नेत्रजल। युग्म=दोनों। चाप=धनुष। वदन=मुख। गलितचन्द्र=शोभाहीन चन्द्रमा। श्री-विलास=शोभा विलास। कंधरा=कंधा। कम्बु=शंख। ओज=कांति। हेम=सोना। कृती=सौभाग्यवान।

भावार्थ—अन्त में अवधि समाप्त हो ही गई। प्रियतम के त्याग का सुयश सर्वत्र छा रहा है। हे सखि आज की यह घड़ी तो धन्य है, फिर भी तू उदास भाव से खड़ी हुई है। शीघ्र आरती ला, मैं प्रिय की आरती उतारूँगी, उनके चरणों को अपने नेत्र जल से धोऊँगी। वे धूल से भरे हुए हैं पर मेरे लिए तो विरह सागर में प्राप्त हुए डूबते के लिए किनारे जैसे हैं। उनके सिर का जटाजूट कैसा विकट बना हुआ है। उनकी दोनों भृकुटियाँ धनुष के समान तनी हुई हैं। मुख पर मधुर आभा है और उसकी शोभा चन्द्र की कांति को भी फीका करने वाली है। उनका सुन्दर कंधा है, शंख के समान कंठ है। कमल से नेत्र हैं और जल के समान निर्मल कान्ति है। शरीर तपे हुए स्वर्ण के समान

शुद्ध है। प्रियतम के रूप मे योग और क्षेम दोनों ही मेरे लिए सहज सुलभ हो गए हैं। उर्मिला का यह भाग्योदय धन्य है। उसके समान सौभाग्यशाली भला अब कौन है ?

विजय नाथ की मिला सभी। (पृ० ३३३-३३४)

शब्दार्थ—अंघ्रिलीन=चरणों में लीन। दयित = स्वामिन्।

भावार्थ—हे नाथ तुम्हारी सर्वत्र विजय हो। परन्तु तुम वहीं क्यों खड़े हो गये हो ? हे प्रिय ! द्वार खुला हुआ है, प्रवेश करो। पति पत्नी होने के कारण हमारा मिलन तो सर्वथा उचित ही है। यद्यपि तुम महान हो और मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ, तथापि धूल की तरह मैं आपके ही चरणों में लीन हूँ। हे स्वामी देवता व्यक्ति को नहीं उसके भक्ति भाव को देखते हैं। तुम पहले ही महान थे अब और भी महान बन गए, फिर भी तुम पर उर्मिला का ही अधिकार है। उसके ही भाग में तुम आए हो। अब मैं दीन नहीं रही क्यों कि तुम्हारे प्राप्त होने पर मुझे सभी कुछ प्राप्त हो गया।

प्रभु कहाँ सती गहूँ। (पृ० ३३४-३३५)

शब्दार्थ—अग्रजा=बड़ी बहिन। आर्त=दुखी। अधिप=महाराज। अनुक्रोश=दया। घूम=घूमने की क्रिया। नष्ट पर्विणी=धर्म नष्टनी।

भावार्थ—हे स्वामी, तुम आ गए परन्तु तुम्हारे साथ प्रभु रामचन्द्रजी और जीजी सीता कहाँ हैं ? जिनके लिए ही आप मुझे तजकर बन गए थे। वे नहीं लौटे, क्या तुम अकेले ही लौटे हो, ओह, हमारा बड़ा भारी पतन हुआ। हे दयालु स्वामी, महाराजा रामचन्द्रजी ने क्या मुझे दुखी जान मुझ पर दया करते हुए स्वयं ही तुम्हें घर भेज दिया है। तब तो यह मेरा ताप और भी दुखदायी होगा। (क्योंकि मेरे दुख के कारण प्रभु की सेवा से तुम वंचित रहे।) हे प्रिय इसलिए लौट जाओ, लौट जाओ। मेरे मोह के कारण इधर मत घूमो। यद्यपि तुम्हारे न होने से मैं व्याकुल अवश्य हूँ, फिर भी मुझे अपनी इस वेदना पर गर्व है। क्योंकि मेरा यह कष्ट अपने पति की आदर्श साधना के ही कारण है। तुम लौटकर मेरे इस पुण्य कार्य को नष्ट मत करो। यदि तुम इस प्रकार मोह में पड़कर घर लौटे हो तो क्या यह तुम्हारा तप से भ्रष्ट होना नहीं है। हे नाथ ! यदि इस प्रकार तुम अपनी

साधना से नीचे गिरे तो मेरी यह सारी वेदना व्यर्थ ही गई। व्यर्थ ही मैंने ये सारे कष्ट सहन किए। अब भी समय है लौट जाओ। इस प्रकार यश के स्वर्ग से मत गिरो। प्रभु दयावान हैं, वे तुम्हें अवश्य क्षमा प्रदान करेंगे। लौटकर उनसे मिलो। उनके कुटी द्वार पर ही अटल भाव से खड़े रहो। वहाँ से तनिक भी इधर उधर मत हिलो। मेरे अतिरिक्त तुम्हें किसी ने भी नहीं देखा है। मेरा देखना भी क्या, क्योंकि मैं तो तुमसे भिन्न नहीं हूँ। तुम्हारी ही अर्द्धाङ्गिनी हूँ। अतः इससे पूर्व कि सब लोग तुम्हें आया हुआ देखें तुम वापिस लौट जाओ। यह सखी मुझे पागल समझती है। यह मेरे लिए कल्याणकारी ही है। क्योंकि यदि यह मुझे पागल न समझती तो इसे तुम्हारा आना विदित हो जाता और यह हमारे लिये कलंक की बात होती। हे प्रियतम तुम्हारे लौट आने पर तो मेरे प्राण विवश होकर रो रहे हैं, तथापि इस दशा में मुझे देखकर कोई हँस नहीं सकता। वह तो यही समझेगा कि मैं अपनी वियोग वेदना के कारण रो रही हूँ। मैं अब और क्या कहूँ ? हे स्वामी अब ऐसा कोई काम न हो जिससे हमारी हँसी हो। तुम बन में रह कर अपने व्रत का पालन करो, और मैं सती की भाँति तुम्हारी आराधना में लीन रहूँ।

धिक ! तथापि हो   दे मुझे। (पृ० ३३४)

शब्दार्थ—अलज्ज=लज्जाहीन होकर। दीठ=दृष्टि। मुड=मूँड़।

भावार्थ—उर्मिला कहती है, हे प्रियतम तुम वापिस लौटकर नहीं गए। धिक्कार है तुम्हें, जो अब भी मेरे सामने खड़े हुए हो। इस प्रकार निर्लज्ज भाव से अड़े हुए हो। मैं तुमसे मुँह मोड़कर जिधर भी दृष्टि डालती हूँ, उधर मेरी आँखो को तुम्हीं दिखलाई पड़ते हो। यदि तुम अपना कर्त्तव्य पथ त्याग कर मुझसे मिलने आए हो तो मैं अपना सिर फोड़कर क्यो न अपने प्राण त्याग दूँ। मेरे लिए तो अब आत्महत्या ही उचित है। मेरे इस शरीर को ले लो, इन निर्जीव प्राणों को भी ले लो। (उर्मिला के आत्महत्या करने के लिए उद्यत होने पर सखि उसे रोकती है। उर्मिला कहती है।) हे सखि मुझे मत पकड़, मुझे छोड़ दे।

स्वजनि क्या कहा जायगी भला। (पृ० ३३५)

शब्दार्थ—प्रतीति = विश्वास । प्रतिविधान = प्रायश्चित । सदाशया = उच्च विचार वाली ।

भावार्थ—हे सखि तू ने क्या कहा "क्या स्वामी यहाँ नहीं हैं?" फिर वे सर्वत्र क्यों दिखलाई दे रहे हैं? तब क्या यह वास्तव में पागलपन और भ्रांति है? तब ठहर, इस प्रकार तो मेरे दुख का अन्त हो गया और मुझे शान्ति की प्राप्ति हुई। मुझे धिक्कार है जो मैंने प्रियतम पर भी विश्वास नहीं किया। परन्तु हे सखी यह मेरे वश की बात नहीं थी। तू ही बता इसके लिए मैं क्या प्रायश्चित करूँ? इस अनर्थ का भी कोई ठिकाना है? वक्रोक्ति का सहारा लेती हुई उर्मिला कह रही है, हे निष्ठुर और अधम उर्मिले, क्या स्वामी पतित हैं और तू उच्च विचार वाली है? क्या एकमात्र तूने ही व्रत पालन किया है, क्या और सब अयोग्य हैं और तू ही एकमात्र योग्य है? अब प्रियतम को किस प्रकार तू अपना मुँह दिखाएगी? अरी पति पर सन्देह करने वाली तू मर क्यों नहीं जाती? पति दयावान हैं, वे तेरा अपराध क्षमा कर देंगे, परन्तु हे चचला, क्या तू उस क्षमा को सहन कर सकेगी?

बिसरता नहीं क्या कहा? (पृ० ३३५-३३६)

शब्दार्थ—बिसरता=भूलता । स्वेद = पसीना । तप=वास्तविकता, अच्छे गुणों की ओर प्रवृत्त करने वाली साधना। सत्व=सतोगुण। नेक=थोड़ा। मिष्ट=मीठा। लक्=लक्ष्मण के नाम के अधूरे शब्द।

भावार्थ—(उर्मिला कल्पना करती है मानों लक्ष्मण उससे कह रहे हैं) हे प्रिये, न्याय भी दया को नहीं भूलता। बस शाँत हो जाओ। मैं सब कुछ समझ गया। इस साधारण सी वेदना से व्याकुल होकर तुम अपने वश में न रह सकी। सताप और दुख से अपनी सुध बुध खो बैठी। तुम्हें वर्षा और धूप में नहीं रहना पड़ा। राज प्रासादों मे तुम पली हो। हे देवि तुम्हें क्या मालूम वन में मुझे किन कष्टों का सामना करना पड़ा है? यहाँ खून पसीना बन कर बहा है। विपिन में रह कर कभी मैं सो भी न सका। और अधिक क्या कहूँ, तुम्हारी भाँति रोकर भी अपने हृदय के भार को हलका नहीं बना [illegible]। अपनी इस साधना के पुरस्कार में हाय उर्मिले, तुम्हारी ओर से मुझे

ये तिरस्कार भरे वचन सुनने को मिले। यदि तुम गिन सको तो उन काँटों को गिनो जो वन प्रवास मे मेरे पैरो में चुभे हैं। हे शुभे, दूसरो की आलोचना करना तो सरल है, परन्तु स्वय अच्छे गुणों की ओर प्रवृत्त होने की साधना बडी कठिन है। तत्व की साधना करने के लिये सबसे पहले रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सतोगुण की सिद्धि करनी पड़ती है। वन का कर्म क्षेत्र तो अत्यन्त कठिन था, परन्तु हे देवि तुम्हें यहाँ क्या कष्ट था। अधिक से अधिक विधाता को कोस लिया। और बहुत किया तो दुख से व्यथित हो थोड़ा रो लिया। मैं तो तुम्हें सदैव ही पुण्य और पाप दोनो से ही अपनी जीवन सङ्गिनी समझता रहा हूँ। तुम्हें तो अपने पति का पुण्य ही इष्ट था। क्या जो मेरे लिए बुरा है वह तुम्हारे लिए भला हो सकता है, क्या मेरा पाप तुम्हारा पुण्य बन सकता है? हे प्रियतमे क्या मैं सचमुच तप से भ्रष्ट होगया? यदि ऐसी बात है तो मुझे स्पर्श मत करो। लो मैं वापिस लौट चला। हे वैराग्य पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली तुम सुखी रहो, हे पुण्य भागिनी मुझे बस बिदा दो। हे सुलक्षणे, अलग रहो, मुझे इस प्रकार मत रोको। मैं तो पतित हूँ, मुझे रोकना तो व्यर्थ है।

विवश लक् (पति के नाम का उच्चारण करते-करते उर्मिला सहसा रुक जाती है उसी समय सखि कहती है।) वहाँ लक्ष्मण नहीं, वह तो स्वयं उर्मिला ही थी! यह सुनकर उर्मिला ने चौंककर कहा "उर्मिला किधर है! हे सखि तूने यह क्या कहा?

फिर हुई अहा   उर्मिला रहे। (पृ० ३३७)

शब्दार्थ—प्रियत्व=प्रिय का अस्तित्व।

भावार्थ—उर्मिला कहती है "अहा उर्मिला फिर मतवाली बन गई। हे सखि क्या प्रिय का ध्यान करते हुए क्या मैं स्वय ही प्रिय बन गई जो उन्हीं के सामन बोलने लगी। अब यह चाहे मेरे पागल पन का रोग हो अथवा वियोग के कारण मेरी यह अवस्था बनी हो, बस मैं तो यह चाहती हूँ कि मैं सदा प्रियमयी ही बनी रहूं।

उन्मादिनी अभी   अहं भी कब है! (पृ० ३३७)

शब्दार्थ—सोऽहं=जब आत्मा और परमात्मा मे भेद नहीं रहता तब जीव

सोऽहं की स्थिति को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हे सखि यह उर्मिला कभी उन्मादिनी थी परन्तु अब तो वह विवेकवान होगई है। हे सखि तूने उसे वास्तविकता का ज्ञान तो कराया परन्तु इस ज्ञान से तो अज्ञान ही भला था जिसमें सोहम् तो क्या अह भी नहीं था। प्रिय से भिन्न अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

लाला लाना   सखि तूली। (पृ० ३३८)

शब्दार्थ—छवि=शोभा। निष्कृति=छुटकारा।

भावार्थ—हे सखि तनिक तूलिका तो लाना, आँखों मे एक चित्र की छवि घूम रही है। आ, उस चित्र की छवि को चित्रित कर तुझे दिखलाऊँ। मुझे भय है कि कहीं वह छवि मेरी आँखों से ओझल न बन जाए वैसे भी मैं आजकल कुछ भूली-भूली सी रहती हूँ। इसलिए चित्र बनाकर विरह जन्य इस चिन्ता से भी छुटकारा पाऊँ। हे सखि तनिक मेरी तूलिका तो लाना।

जब जल चुकी   सखि तूली। (पृ० ३३८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ- जब वियोग की अग्नि में विरहिणी बाला जलकर भस्म होगई, चिता की ज्वाला भी जब बुझने लगी तब मतवाला विरही वहाँ उसी प्रकार आ पहुँचा जैसे दक्ष के यज्ञकुण्ड में सती के भस्म होने के बाद शिव पहुंचे थे। उर्मिला के कथन का अभिप्राय यही है कि प्रियतम मेरे वियोग की ज्वाला में भस्म होने के उपरान्त आकर क्या करेंगे?

झुलसा तरु   सखि तूली। (पृ० ३३८)

शब्दार्थ—हत=घायल।

भावार्थ—आग से झुलसा हुआ वृक्ष मर्मर ध्वनि कर रहा था अथवा लता के जल जाने पर झुलसा हुआ पेड़ जैसे अपने लिये मर मर कह रहा है। बहता हुआ निर्झर झर झर कर रो रहा था। अभागा विरही भी शोक के अतिरेक से हर हर कर रहा था। उस समय पृथ्वी भी धूल उड़ा रही थी। हे सखि तुरन्त मेरी तूलिका तो लाना।

ज्योंही अश्रु   सखि तूली। (पृ० ३३९)

शब्दार्थ—वदनाकृति=मुखाकृति।

भावार्थ—जैसे ही विरही का आँसू चिता पर गिरा तभी उसमें से अकुर उग आया और वह पत्तों से आच्छादित होगया। उसी अकुर ने पल्लवित होकर प्रिय के मुख के आकार का रूप ले लिया। इस प्रकार लता पुनः हरी भरी होकर वृक्ष से लिपट गई। (भाव यह है कि विरहिणी विरह की ज्वाला में चाहे कितनी ही जल जाए परन्तु प्रिय के मिलन योग को पाकर वह पुनः हरी भरी हो जाती है।) हे सखि तुरन्त मेरी तूलिका ले आ।

सिर माथे तेरा भगवान। (पृ० ३४०)

शब्दार्थ—विभुवन=विश्वरूपी वन।

भावार्थ—उर्मिला कहती है "हे मुझे प्रेरणा प्रदान करने वाले मेरे भगवान वियोग के रूप में तेरा यह दान मुझे शिरोधार्य है। इससे अधिक मैं तुझसे हाथ फैलाकर और क्या याचना करूँ। स्वामी मुझे भूलकर ही विश्वरूपी वन में विचरण करे। परन्तु हे मेरे प्रेरक भगवान मुझे सदैव उन्हीं का ध्यान रहे।

डूब बची भगवान। (पृ० ३४०)

शब्दार्थ—सती=दक्ष प्रजापति की पुत्री और शङ्कर की स्त्री। एक समय दक्ष ने यज्ञ किया परन्तु उसमें सती और शिवजी को नहीं बुलाया। सती अपने को न रोक सकी और बिना बुलाए ही तथा शकर की बिना आज्ञा लिए पिता के घर चली गई। वहाँ उन्होंने जब देखा कि यज्ञ में सभी देवताओं का अंश रखा गया है, परन्तु शकर का नहीं तो उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ और यज्ञ-कुण्ड में गिरकर उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। अगले जन्म मे ये पार्वती बनीं।

भावार्थ—"लक्ष्मी ने जल (समुद्र) मे प्रवेश कर नारद के शाप से अपनी रक्षा की, सती ने अपने पति के सम्मान के लिए अग्नि मे प्रवेश किया। परन्तु उर्मिला अपनी विषम परिस्थिति से व्याकुल बन प्राण त्यागने के लिए प्रस्तुत नहीं है। वह तो घर मे बैठकर सब कष्ट सहकर भी उनकी प्रतीक्षा करती हुई जीवित रहना चाहती है। हे मेरे प्रेरक भगवान मेरे लिए यह विधि का विधान इसी प्रकार चलता रहे।

दहन दिया भगवान। (पृ० ३३९-३४०)

शब्दार्थ—दहन=जलना। अदेय=जो न दिया जाय। श्रेय=कल्याण।

भावार्थ—हे मेरे प्रेरक भगवान जब तूने मुझे दहने के लिए वियोग की ज्वाला प्रदान की है तो क्या उसे सहन करने की शक्ति मुझे प्रदान न करेगा? हे प्रभु तेरी ही इच्छा पूर्ण हो। इसी मे सब का कल्याण है। आज यह वियोग का रुदन ही मेरे जीवन का सगीत है।

अवधि-शिला दृग-जल-धार। (पृ० ३४१)

शब्दार्थ– गुरु=भारी।

भावार्थ—उर्मिला के हृदय पर अवधि रूपी शिला का गुरुतर भार था। उर्मिला के नेत्रों की जलधार उस शिला को तिल-तिल करके काट रही थी।

इन मर्म स्पर्शी पक्तियो के सम्बन्ध में श्री कन्हैयालाल जी सहल का कथन द्रष्टव्य है "शिला और जलधार का यह रूपक भावाभिव्यक्ति में अत्यन्त सहायक हैं। प्रिय के वियोग के आँसू बहाकर उर्मिला अपने पहाड़ से भारी दिनो को किसी प्रकार काट रही है। नेत्रों से अजस्र जलधारा बहती रहे तो भी वह एक भारी शिला को कब तक काट सकेगी? निष्ठुर नियति के आगे किसका वश चलता है? कवि की यह उक्ति पाठकों के हृदय पर एक यही अवसाद की रेखा छोड़ जाती है"।

दशम सर्ग

चिरकाल रसाल .... विलास की। (पृ० ३४२)

शब्दार्थ—रसाल = मधुर। भावज्ञ = भावों के ज्ञाता। कवीन्द्र = कवियों में श्रेष्ठ।

भावार्थ—जिस भावों के मर्मज्ञ और कवियों में श्रेष्ठ कालिदास की वेता सदैव ही मधुर रही है, उस कविता केलि कला विलास महाकवि ालिदस की सदैव जय हो।

रजनी, उस पार .... अदृष्ट जाल से। (पृ० ३४२-३४३)

शब्दार्थ—कोक=चकवा पक्षी। सारव=कोलाहल करती हुई। बीचियाँ=हरें। हा-रव=शोर पूर्ण स्वर। नक्षत्र=तारे। अदृष्ट जाल से=भाग्य जाल से।

भावार्थ—हे रात्रि, नदी के उस पार चकवा पक्षी है, और इस पार ाड़िता चकवी। दोनों बिछुड़ गए हैं। यह कितनी दुखपूर्ण बात है। उन ोनों के हाहाकार करते हुए स्वर मिलते हैं, वहीं क्रन्दन करती हुई सैकड़ों ाहरें उठती हैं। यह उठती हुई लहरें चकवा और चकवी के क्रन्दन को अपने ोलाहल भरे स्वर में डुबोकर नष्ट कर रही हैं। ऊपर आकाश में नक्षत्र भाग्य ाल की भाँति इन सब बातों से सर्वथा उदासीन भाव धारण किए ज्यों की यों स्थित हैं।

विशेष—यहाँ चकवा और चकवी के माध्यम से उर्मिला और लक्ष्मण की वियोगजन्य अवस्था का चित्रण किया गया है। अवधि रूपी रात्रिकाल ने चकवा चकवी की भाँति लक्ष्मण और उर्मिला को अलग कर दिया है। दोनों के हृदय के क्रन्दन को काल रूपी सरिता की लहरें बीच में ही नष्ट कर देती हैं। निष्ठुर भाग्य भी उनसे सर्वथा उदासीन है।

तम में क्षिति .... वियोग है। (पृ० ३४३)

शब्दार्थ—क्षितिलोक=पृथ्वी लोक। अलि = भ्रमर। नीलोत्पल = नील

कमल । प्रसुप्त=सोया हुआ । तन्द्रित=उनींदा ।

भावार्थ—इस समय समस्त भू-मण्डल अन्धकार में इस प्रकार निमग्न है जैसे भ्रमर नील कमल में सोया हुआ हो। ऊपर हिम की बूँदों के समान तारों से भरा द्रवित आकाश है। (यहाँ पृथ्वी को भ्रमर और आकाश को नील कमल का रूप देकर बड़ा सुन्दर रूपक बाँधा गया है। कमल पर जैसे ओस की बूँदें होती हैं उसी प्रकार आकाश में गलते ढलते हिम विन्दुओं की भाँति झिलमिलाते हुए तारे हैं।)

इस समय भोग अपने सुख सपनों में निमग्न है। भोग शान्ति की गहन-निद्रा में लीन है। प्रेमी और रोगी जन थके हुए शरीर को लेकर उनींदे हो रहे हैं। अब तो केवल वियोग ही जाग्रत अवस्था में है।

विशेष—प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं—जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। यहाँ कवि के शब्दों में वियोग की दशा में ही प्राणी जन जाग्रत अवस्था में रहते हैं। ६

जल से तट .... द्विधा हुई। (पृ० ३४३-३४४)

शब्दार्थ—अटा=अटारी। विभा=दीप्ति, प्रकाश। धृति=धैर्य। अलकें=केश। जटार्जनी=जटाओं की भाँति घनी। प्रियपाद-मार्जनी=प्रिय के चरणों का मार्जन करने वाली झाड़ू। द्विधा=दो खण्डों में।

भावार्थ—सरयू नदी के जल से उसका तट संलग्न है। तट के ऊपर अटारी बनी हुई है। अटारी की खिड़की पर उर्मिला खड़ी हुई है। उसका मुख छोटा है परन्तु (पति की प्रतीक्षा करने वाली) आँखें बड़ी-बड़ी हैं। वियोग के कारण शरीर दुर्बल हो गया है, परन्तु वह संयम की दीप्ति से भरा हुआ है। उसके हृदय का धैर्य नष्ट हो गया है परन्तु पति की स्मृति चिर नवीन है। जटाओं की भाँति घनी उसकी अलकें जैसे प्रियतम के चरणों का मार्जन करने के लिए उड़ रही हैं। उर्मिला के बगल में ही उसकी सखी चुपचाप खड़ी हुई है, अथवा स्वयं उर्मिला की देह ही सखी के रूप में दो खण्डों में विभक्त हो गई है।

तब बोल उठी   न जायगे। (पृ० ३४४)

शब्दार्थ—अटा=समूह, राशि। कानन कोण=वन का कोना। दिगन्त=आकाश। बासर बीज=दिन के बीज। तारे=आँखो की पुतलियाँ।

भावार्थ—तब वियोगिनी उर्मिला जिसके सम्मुख योगिनी भी तुच्छ है कहने लगी' यह अधकार का घना समूह बनकर न रह सका बिखर पड़ा। प्रकाश को पाकर यह ब्रह्माण्ड अब फटा अब फटा हो रहा है। हे सखि हमारे प्रकाश की निश्चल समाधि बनके किस कोने मे लगी है ? मेरे जीवन के प्रकाश की भाँति प्रियतम बन के किस कोने मे तपस्या निरत हैं। हे सखि देख आकाश खुल गया है। थोड़ा सा अंधकार शेष है परन्तु वह भी प्रकाश से आच्छन्न है। यह जो तारे दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे भी रात्रि में दिन के प्रकाश के बीजो की भाति बच रहे हैं। हमारे सुख के दिन क्या लौटकर नहीं आयेंगे। ये नेत्र उन दिनो और प्रियतम को क्या नहीं देख पायेंगे ? जब प्रियतम लक्षसिद्धि कर लौटेंगे तब तक कहीं ये आँखों की पुतलियाँ मुँद तो नहीं जायगीं। मेरा जीवन समाप्त तो नहीं हो जायगा ?

अलि, म बलि,   ऊबना यहो। (पृ० ३४४–३४५)

शब्दार्थ—उडु बीज=तारों रूपी बीज। सविता = सूर्य।

भावार्थ—उर्मिला को सखि ने सात्वना दी कि दिन के बाद रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन होगा। इस पर उर्मिला कहने लगी "हे सखि तू ने उचित ही कहा है। मै तुझ पर बलिहारी जाती हूँ। आज रात्रिकाल है तो कल अवश्य ही दिन होगा। तब मै अपनी दृष्टि ऊपर क्यों करूँ। जिससे कि कहीं मेरी दृष्टियाँ तारे रूपी बीजो को न चुगलें, अन्यथा इन दिन के बीजो के नष्ट होने पर दिन कहाँ से होगा ? अत. सूर्य और चन्द्र अवश्य उगें। ऊपर न देखकर मै नीचे की सरयू ही क्यो न धारण करूँ ? इसकी मधुर ध्वनि को अपने कानों मे क्यों न भरूँ ? सरयू का जल क्या है- बस हृदय को ऐसा लगता है कि इसमे ही डूब मरूँ। (इस भय से कि कहीं उर्मिला सरयू से जल में डूब कर आत्महत्या न कर ले सखि पकड़ लेती है।) तब उर्मिला कहती है "हे सखि मुझे इस प्रकार मत पकड़। यह तो केवल

एक बात थी। मेरी तो वैसे ही मृत्यु की सी अवस्था हो रही है। मुझे इस प्रकार मरने की क्या आवश्यकता है? मुझे डूबना नहीं है, मेरे भाग्य में तो बस जीवित रहकर इसी प्रकार ऊबना लिखा है।

शिशु ज्यों विधि नेंक बैठ जा। (पृ० ३४५-३४६)

शब्दार्थ--विधि=भाग्य। अराल=कुटिल। दाहक=जलाने वाली। चर्वण=चबाना। नेंक=थोड़ा।

भावार्थ—भाग्य मुझे बालक की भाँति खिला रहा है। प्रियतम के प्रति अटल विश्वास का अमृत वह मुझे पिला रहा है। (इस कारण मरण की अवस्था को प्राप्त होने पर भी मैं मर नहीं पाती।) प्रियतम के दर्शन का लोभ ही मुझे चेतनामय बनाए हुए है और उनका ध्यान ही मुझे जीवन-प्रदान कर रहा है। उनके गुणरूपी जाल में, जिसकी एक एक कड़ी स्मृति से आबद्ध है, मेरी प्रेमरूपी पक्षिणी फँसकर चाहे कितनी ही तड़पती रहे, परन्तु हे सखि विश्वास उसका रक्षक है। काल यद्यपि बड़ा भयङ्कर और कुटिल है। वह हाथ में विशाल डंडा लिए हुए है। परन्तु मेरे पास भी तो जलाने वाली आह और चबाने वाली चाह है। इसलिए हे सखी तू भय में प्रवेश मत कर। आ तनिक देर बैठ जा।

यह गंध नहीं लोक-दृष्टि है। (पृ० ३४६)

शब्दार्थ—वनसोता=बन का निर्झर। लघु=सीमित, सकुचित।

भावार्थ—बन में निर्झर का जल अब सुगंधि नहीं बिखेरता। वह बन की ओर ही करवट ले रहा है। सभी मार्ग और घाट सुनसान, निर्जन और सपाट हैं। जड़ और चेतन एक हो रहे हैं। जो चेतन हैं वे भी जड़ तुल्य बन गए हैं। अन्य सब लोग सो रहे हैं। केवल हमीं जाग रहे हैं। यह सृष्टि एकांत में अपने वैभव को देखकर अपने ऊपर तारों के रूप में हीरे मोती आदि रत्न न्योछावर कर रही है। (धनी पुरुष एकांत में ही अपनी सम्पदा को देखते हैं।) यह सृष्टि कितनी विशाल है, परन्तु इतनी ही सीमित दृष्टि इस संसार में रहने वाले लोगों की है।

तम भूतल-वस्त्र है यही। (पृ० ३४६-३४७)

शब्दार्थ—वितान=चँदोवा। पावक=अग्नि। साख=साक्षी। क्रान्ति=

थकावट । अभिसार=प्रि[illegible] मिलने के लिए नायक या नायिका का सकेत स्थल पर जाना ।

भावार्थ—अधकार पृथ्वी का आवरण बन गया है । आकाश पृथ्वी पर चँदोवे की तरह तना हुआ है । अग्नि राख मे सोई हुई है । बस अब तो जल और वायु ये दो तत्व ही साक्षी रूप मे विद्यमान हैं ।

परन्तु यह सरयू कब थकी है ? वह अब भी अपने प्रियतम सागर से मिलने जा रही है । हे सखि यह अभिसार ही तो मनुष्य जीवन का सार है ।

सरयू, रघुराज मनु कीर्ति मंगला । (पृ० ३४७)

शब्दार्थ—ससागरा=राजा सगर सहित, सगर प्रभु रामचन्द्रजी के पूर्वज । ध्रुव=अटल ।

भावार्थ—सरयू नदी को सबोधित करती हुई उर्मिला कहती है "हे [साक]ेत के राज्य परिवार की सदस्या सरयू सुन तू सूर्यकुल के उच्च और [उ]ज्वल अग रघुवश की सदैव से ही साथ देने वाली रही है । तू उस श्रेष्ठ [कुल] की परम्परा को अटल और वास्तविक साक्षिणी है जिससे कि यह पृथ्वी [रा]जा सगर सहित तक धन्य बनी है और देवलोक भी जिसका ऋणी हुआ [है] । तेरे तीर पर ही मानव धर्म का विकास हुआ है । वह सर्व प्रथम यहाँ [हु]आ है । सरयू, तू सचमुच मानव धर्म के संस्थापक मनु की मगल कीर्ति है ।

रण-वाहन इन्द्र सुभविष्य सौ गुना । (३४७--३४८)

शब्दार्थ—वासव=इन्द्र । जाह्नवी=गगा । मख=यज्ञ । विश्व जित=विश्व विजय प्राप्त करने वाला । मृत्पात्र=मिट्टी का बर्त्तन । गत=बीता आ काल ।

भावार्थ—रघुवशके पूर्वजो के महान चरित्रो का स्मरण करती हुई उर्मिला [क]हती है "हे सरयू देख हमारे उन पूर्वजो का कितना तेज और प्रताप था । [वे] स्वय ही देवताओ के सैन्य का सचालन करते थे । इन्द्र के कार्य को पूरा [कि]या करते थे । देव पत्निया उनका यशोगान करती हुई उन पर बलि जाती [थ]ीं । राजा सगर के अतिरिक्त बता किसने अपने पुत्र को त्याग कर प्रजा को [हि]त कृत्य किया । हमारे महाराजा दिलीप के अतिरिक्त किसने इन्द्र का पद प्राप्त [क]रने की लालसा बिना ही सौ यज्ञ किए । हे सरयू सुन पुण्य वान कवियो का

यही कथन है कि यदि हमारे महाराजा भगीरथ प्रयत्न नहीं करते तो गंगा नदी, पृथ्वी पर बहकर समुद्र में कभी नहीं मिल पाती। महाराज रघु ही ऐसा विश्वजित यज्ञ कर सके, जिसमें उन्होंने अपने पास केवल मिट्टी का एक बर्तन रखकर सब कुछ दान कर दिया। यही नहीं राजा हरिश्चन्द्र ने तो दान व्रत का गौरव रख चांडाल के हाथों अपना शरीर ही बेच दिया था। जिस रघुवंश का विगत काल इतना महान है, वर्तमान में महाराज दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत आदि के कार्य सबों के सामने हैं। इस प्रकार जिसका वर्तमान भूतकाल से भी चौगुना यशस्वी है उसका भविष्य वर्तमान से भी सौ गुना गौरवशाली हो।

वश में जिसका .... न क्यों सहूँ। (पृ० ३४८- ३४९)

शब्दार्थ—श्रुति द्रष्टा=वेदों के ज्ञाता। जनकारक=जनक नाम से प्रसिद्ध। दुहिता=पुत्री। दुर्विध=भाग्यहीन।

भावार्थ—जिन्होंने भविष्य को भी अपने वश में कर लिया है। वेदों के ज्ञाता ऋषियों का समूह जिनका शिष्य है। जो जनक नाम से विख्यात हैं। उन्हीं विदेह की मैं पुत्री हूँ और घर में सबकी प्रिय हू। इस रघुवंश की मैं वधू बनी हूँ। अहा यह सम्बन्ध कितना मधुर है। इस पद को पाकर मुझे जो गौरव मिला उससे विधाता और उर्मिला दोनों ही अपने को कृतार्थ मानते थे। परन्तु हाय यह सब सुनकर भी सृष्टि मौन बनी हुई है। मुझ सा भाग्य हीन आज कौन है। हे सरयू उस दुख के लिए क्या कहूँ? यह तो अपनी ही करनी का फल है, फिर भला इसे क्यों न सहन करू?

कहला कर दिश्य .... दुर्मिला हुई। (पृ० ३४९)

शब्दार्थ—दिश्य=दिशा सम्बन्धी, दिशाए चार हैं, उसी प्रकार सीता उर्मिला, माडवी, श्रुतकीर्त्ति, राजा जनक की चार पुत्रिया थीं। इन चार पुत्रियों के रूप में जैसे उन्हें चारों दिशाओं की सम्पत्ति प्राप्त हो गई थी। इसीलिए चारों बहिनें माता पिता द्वारा दिश्य सम्पत्ति कहलाती थीं। सामसंहिता=सामवेद की संहिता, सामवेद मे उन स्तोत्रों आदि का संग्रह है जो यज्ञों के अवसर पर गाए जाते हैं। उर्मिला की नृत्य और गान मे विशेष रुचि थी, इसीलिए राजा जनक प्यार से उसे 'सामसंहिता' कहते थे। दुर्मिला=

जो प्राप्त न हो, अलभ्य।

भावार्थ—माता पिता द्वारा दिव्य सम्पदा कहला कर हम चारों अत्यन्त लाड़ प्यार में पली। मुझको पिता अत्यन्त प्यार से अपनी सामसहिता कहा करते थे। मै अन्य बहिनो की अपेक्षा कुछ चचल अधिक थी। इधर उधर प्रवाह के समान बहती फिरती थी। गति में भी मे अत्यन्त दुर्मिला थी। इसी चञ्चलता के कारण मेरा नाम उर्मिला रखा गया।

नचती श्रुतिकीर्ति बाँटले। (पृ० ३५०)

शब्दार्थ—नदि=सरयू नदी। करताल = तालियाँ। जीव=प्राण। स्वपदो= अपने पैरों से।

भावार्थ—श्रुतिकीर्ति उछल कूद करती हुई ताण्डव नृत्य सा करती थी। हे सरयू नदी, माण्डवी तब तालिया बजाती थी। मैं तब स्वर सजाकर गाती थी। बड़ी बहिन सीता गभीर गीतों की रचना किया करतीं थीं। हे सरयू, मुझे उन गीतों की पूर्ण याद तो नहीं है, फिर भी तू सुन ले, बाल्यावस्था के उन गीतों में से एक गीत इस प्रकार है :—

"हे पुतली मेरे प्राणो को दो भागों में बाँटकर अपनी इच्छानुकूल एक सम भाग ले ले और सजीव हो जा। जीवित होकर अपना मूल्य तू स्वयं ही कह। अपने पैरो से उठकर खेलकूद, और इधर डोल। कुछ बोलकर अपने मन की बात कह। अपनी इस निर्जीव समाधि को खोल। चाहे तो तू मुझे डाँट अथवा मुझे प्यार कर, परन्तु मेरे प्राणों को बाँटकर तू सजीव हो जा।

सुन देख स्वकर्ण बाँटले। (पृ० ३५०)

शब्दार्थ—स्वकर्ण दृष्टि=अपने कान आँख। कूजित=मधुर ध्वनि करती हुई। कान = शोभायमान। हार्द = हृदय का। हृष्टि = हर्षित। आट ले= निमग्न होना।

भावार्थ—हे पुतली तेरे पास तो अपने कान और नेत्र हैं। इनकी सहायता से इस ससार के मधुर नाद को सुन और इसकी शोभा को देख। मेरा हृदय आज अत्यन्त उल्लसित है। मेरे आगन मे सुख की वर्षा हो रही है। तू भी अपने रस में समा जा। हे पुतली मेरे प्राणों को बाँट कर सजीव हो जा।

फिरती सब नाट्य मंडली। (पृ० ३५१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सब बहने इधर उधर घूमती हुई चौक में फिरती थीं। वे झुकती और झूमती हुई चौक में गिर गिर पड़ती थीं। चौक में ऐसी धूम मचती थी कि माता भी हमें प्यार से चूमकर हमारे साथ नाचने लगती थीं। वे अपने में मग्न स्वामी से हाथ के सकेत से यह दृश्य दिखला कर कहती थीं "लो अब तो यह घर की ही नाट्य मडली बन गई।"

कर छोड़, शरीर पूर्ति है। (पृ० ३५१)

शब्दार्थ—मिचकी=छलाग। धात्रियाँ=माताएँ। पात्रियाँ=अभिनेत्रियाँ। तटिनी=सरयू नदी। पयोधि=समुद्र। घट=हृदय रूपी पात्र।

भावार्थ—जब हम हाथ छोड़कर और शरीर साधकर हम खेल करती हुई छलाग भरती थीं। यह देखकर भयभीत माताए कहती थीं—अपने गुणों को छोड़कर इस प्रकार अभिनेत्रियों सी मत बनो। हे सरयू नदी हम अपने हाथों और कट की कला और विद्या के सम्बन्ध में भला क्या कहें? वह ज्ञान तो साक्षात समुद्र के समान है। फिर भी क्या उससे हृदय रूपी पात्र की पूर्ण तृप्ति हो पाती है। उससे तो यह छोटा सा हृदय रूपी पात्र भी नहीं भर पाता। अर्थात् ज्ञान का अथाह समुद्र भी मनुष्य की जिज्ञासा को शान्त नहीं कर पाता।

मिथलापुर धन्य सुसराल जा रहीं (पृ० ३५१-३५२)

शब्दार्थ—वारिचक्र=भवर। नक्र=मगर। लघुमीना=छोटी छोटी मछलियों वाली। बीचि मालिका=लहरों का समूह। मराल=हस। प्रत्यय=विश्वास। सैकत=बालू। शिल्प युक्तियाँ=कला कौशल के नमूने। मुक्ताधिक=मोतियों से अधिक। शुक्तिया=सीपिया।

शब्दार्थ—मिथिलापुर के श्रेष्ठ प्रदेश में भी कमला नाम की सुन्दर नदी है। वह भी हमारे ही अनुकूल थी। वह सदैव ही हमारी प्रसन्नता के मूल को सींचती रहती थी। हे सरयू तुझ में तो बहुत बड़े बड़े भवर हैं। कितने कच्छप और मगर हैं। परन्तु वह तो सदैव से ही बालिका के समान हैं। उसमें छोटी छोटी मछलियाँ और छोटी छोटी लहरों का समूह है। जब हम नदी के तट

पर जाते थे तो बहुत सी मछलिया हमारे निकट डोलती थीं और हम हमें घेर कर बोला करते थे। सचमुच पक्षी हों, अथवा मृग या मछलियाँ सब विश्वास के ही अधीन हैं यदि उन्हें विश्वास हो जाय तो वे मनुष्यों के पास निर्भय हो कर विचरते हैं। बालू पर बनाए गए कला के नमूने और मोतियों से भी अधिक मूल्यवान शख और सीपियाँ सब वहीं मिथला नगरी मे छूट गई। साथ की सखियाँ भी सुसराल चली गई।

कमला-तट पार था कहीं (पृ० ३५२-३५३)

शब्दार्थ—गिरजा=पार्वती। हेमवती=हिम की पुत्री पार्वती। योग= मिलन। वर्ण=रग।

भावार्थ—कमला नदी के किनारे एक बड़ी बाटिका थी। जिसमें तालाब कुएँ, और बावड़ी थीं। इसी वाटिका मे मणियो से बना एक मन्दिर था जिस में हिम पुत्री महासती पार्वती विराजमान थी। वाटिका में पक्षियों का समूह नित्य मधुर ध्वनि किया करता था। माता उस पावन मूर्त्ति की पूजा किया करती थी। पूजन के पश्चात हम सबको प्रसाद मिलता था। वही वास्तव में सच्चा सुख और स्वाद था। यह यौवन तो स्वय ही भोग है। सुख का सग तो शैशव के साथ ही है। वह सुख भरा शैशव हाय चला गया। उसके स्थान पर अब तो यौवन का यह नया भोग प्राप्त हुआ है। तितलिया उड़ उड़ कर नाचती हैं और नित्य ही फूलो के रगों की परख करती हैं। गतिहीन फूल उसे निहार कर अपना सर्वस्व उस पर न्यौछावर करते हैं। हे खिलती हुई कली जहाँ भौंरा उड़ कर जाता है, यदि तू भी वहाँ उड़कर जा सकती तो फिर तेरे सुख की सीमा का कहना ही क्या था।

अब भी वह मूर्ति घूरती (पृ० ३५३-३५४)

शब्दार्थ—विसूरती=शोक मनाना।

भावार्थ—वह बाटिका अब भी वहाँ है। परन्तु उर्मिला यहाँ बैठी हुई है। दया की मूर्त्ति माँ वहाँ दुखी हो रही है, और गिरिजा भी मूर्त्ति मात्र होकर घूर सी रही है।

सुनती कितने भाव-वन्दिनी (पृ० ३५४-३५५)

शब्दार्थ—नर वृत्त = मानव चरित्र। शिवि=राजा उशीनर के पुत्र जो

अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। कबूतर और बाज के रूप मे अग्नि और इन्द्र द्वारा परीक्षा लिए जाने पर इन्होने अपने शरीर को ही भेंट कर दिया था। दधीचि=एक वैदिक ऋषि जिन्होने वृत्रासुर के रोकने के लिए देवताओ को अपनी हड्डियाँ दान मे दे दी थी, जिनसे कि वज्र बनाया गया था। शक्र= इन्द्र। झिला=प्रभावहीन होना। अमरों=देवताओं। प्रजा व्रजा=अपनी सन्तति का पालन करने वाली। सुरारि=देवताओं के शत्रु। विधि=ब्रह्मा। माधव= विष्णु। पुरारि=शिव। राजनंदिनी=राज पुत्री।

भावार्थ—अपने बाल्य काल मे मै अपनी माता से कितनी ही कथाएँ सुनती थी। परन्तु मै उन कथाओ के क्रम को बीच मे ही तोड़कर रग में भग कर देती थी। मानव चरित्रो को तो मै बड़े आनन्द पूर्वक अपनाया करती थी परन्तु देव कथाओ को मै विनोद मात्र से ही सुना करती थी। मै माँ से कहा करती थी कि तुम शिवि और दधीचि की व्यथा न सुनाकर किस देवराज इन्द्र की कथा कहा करती हो। एक भी राक्षस का साक्षात्कार होने पर देवताओ के मन ही प्रभाव हीन हो जाते हैं। उनकी सारी शक्ति फीकी पड़ जाती है। देवताओ पर यह टीका टिप्पणी सुनकर माँ क्षोभ मे भर कर मुझसे कहती—तुम तो नास्तिक हो। तब मै हँसकर उत्तर दिया करती थी—यदि तुम मुझे प्रसाद दे दो तो मै इस नास्तिकता का त्याग कर दूँ। हे माँ वैसे तो तुम पिता की ही पूजा किया करती हो, फिर भी देवताओं को ही पूज्य मानती हो। तब माँ दया से भर कर कहती—अरी वह तो तेरे पितृ देव हैं। मै उन्ही पति देव की सेविका हूँ। तभी तो तुम्हारी प्रिय मातृ देवी हूँ। तब मेरी बड़ी बहिन सीता जी कहती हैं—माँ तुम तो देवताओ से भी अधिक अपनी सनति का पालन करने वाली हो।

इसके उपरन्त सरयू नदी को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहने लगी—हे सरयू चाहे देवता हो, मनुष्य हो, राक्षस हो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो, परन्तु यह राजपुत्री तो सदैव ही सबकी प्रीतिपूर्ण भावनाओ की केन्द्र रही है।

सुनती जब मैं ... सभी समा (पृ० ३५५ ३५६)

शब्दार्थ—उमा कथा=पार्वती की कथा। कालिका=चडिका। भीरु-पालिका=भयभीत जनो का त्राण करने वाली। ऊल ऊल के=उछल उछल कर

केशम्भु-निशम्भु=दो राक्षस बन्धु, जिन्होंने देवताओं को बहुत सताया था, तब दुर्गा ने उनका वध किया था। कपर्दिनी = दुर्गा। धात्री=माता। स्तन-पान=दुग्धपान। पिनाव=धनुष। गिरा=सरस्वती। शकरी=पार्वती।

भावार्थ—जब मैं पार्वती की कथा सुनती थी तब मुझे बड़ी पीड़ा होती थी। यह देखकर माँ कह उठती थी--अरे तू तो अपनी सुध बुध खोकर रोने लगी। अरी यह तो देव चरित्र है। अपने शकर के लिए पार्वती ने कितना भयङ्कर तप किया था। शिव के लिए उनकी वही साधना आज मेरे लिए सात्वना का कारण बन रही है। जब भयङ्कर चडिका देवी स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर भयभीत जनों का त्राण करती तब हम निर्भय बन उछल उछल कर उनकी जय जयकार करते। जब शम्भु और निशम्भु को मर्दन करने वाली दुर्गा अपना सुन्दर स्वरूप धारण करती तब हमारा शिशु हृदय उन माता के स्त नपान की लालसा करता था। मैं कहने लगती हम सब भी तो क्षत्रिय बालिकाएं हैं। क्यों न हम अपने स्वर्ग की रक्षिका बन जाए। परन्तु अस्त्र कहाँ है? इस पर जीजी आगे बढ़कर कहने लगी--अस्त्र तो सभी स्थानों पर हैं। यहाँ भी हैं। यह कहकर उन्होंने शिव धनुष उठा लिया। सभी लोग आश्चर्य से अवाक् रह गए। उस समय उनमें सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी सभी देवियाँ लीन दिखलाई पड़ीं।

सबने कल नाद　　　　　　　　जिन्हे चढ़े (पृ० ३५६-३५७)

शब्दार्थ—कन = कण। भुवनापराजित=ससार मे किसी से पराजित न होने वाली। श्रुत = सुना हुआ, प्रसिद्ध। वरदायिनी माँ = वर देने वाली पार्वती माँ।

भावार्थ—जीजी को शिव धनुष उठाते हुए देखकर सबने मधुर स्वर से कहा-छोटी सी कलिका ने आकाश को उठा लिया। एक कण ने मन जैसे परिमाण की नाप तौल करली। यह अपने सौभाग्यशाली पिता की योग्य पुत्री है। सारे ससार में ऐसा कौन है जो सीता जी को पराजित कर सके। हे नटी पिता जी तो यह देखकर भाव विभोर होगए और कहने लगे मेरे लिए ऐसा प्रसिद्ध है कि मैं अपने मन रुपी सरोवर में निमग्न मछली की भाँति सदैव

आत्म चिन्तन मे लीन रहता हूँ। परन्तु पुत्री सीता तो महा विचित्र भाग्य बन कर ही मुझे प्राप्त हुई है। सचमुच पिताजी को परम हर्ष हुआ। परन्तु हे सरयू माँ के हृदय में चिन्ता हुई। वे प्रार्थना करने लगीं—हे अनुग्रह करने वाली पार्वती माँ आप ही मेरा यह कार्य पूरा कीजिए। मुझे इन पुत्रियों के योग्य ही चार वर प्रदान कीजिए। तब पिता ने कहा- अरे तुम क्यों चिंतित हो रही हो ? देव तुल्य वर अवश्य प्राप्त होंगे जिन पर अपनी ये कलियाँ समर्पित की जायगीं।

सरिते वर देव न फूलना (पृ० ३५७-३५८)

शब्दार्थ—पद्म=कमल। दायक=देने वाले। पादप=वृक्ष। चारो फल=धर्म अर्थ, काम, मोक्ष।

भावार्थ—हे सरिते देवता तुल्य वर भी प्राप्त हुए। वे तेरे ही तो खिले हुए कमल थे। उन श्यामल और गौर शरीर वालों से कौन श्रेष्ठ पात्र हो सकता है। वे पुण्यात्मा और निष्पाप थे, और पृथ्वी पर अवतीर्ण हो चुके थे। ये साधारण जनों से दुगनी धीरता और वीरता युक्त थे। तेरे मधुर जल के तट भी उन्हें पाकर पुण्यवान हो गए थे। उदार और वरदायक प्रभु की कृपा से तीन माताओं के चार पुत्र थे। रघुवश रूपी वृक्ष जिसका मूल ही पुण्य का है भला चार पुत्रों के रूप में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार फल क्यों नहीं प्रदान करता ?

वह बाल्य कथा उड़ा दिया (पृ० ३५८-३५६)

शब्दार्थ—कलमूर्ति=माधुर्य की मूर्ति। मोदिनी=प्रसन्नता प्रदान करने वाली। शक्य=सम्भव। ग्राह = मगर मच्छ। लोल लक्ष=सुन्दर निशाने। शत साल = सैकड़ों बर्षों। लाल = पुत्र। तव स्मृति = तेरी स्मृति। कन्दुक = गेंद। मोदमाकृति=लड्डू के आकार की। ८

भावार्थ—हे प्रसन्नता प्रदान करने वाली माधुर्य की मूर्त्ति सरयू, उनके (राम बन्धुओ की) शैशव की विनोदपूर्ण कथा तू ही सुना सकती है। उसका सुनना तुझसे ही सम्भव है, क्योंकि तू ने ही उनकी क्रीड़ाओं को देखा है। हे प्रवाहित होने वाली सरयू अब मुझे ज्ञात हुआ कि तेरे जल में इतने मगर-मच्छ क्यों हैं ? वे उन वीर पुत्रो के लक्ष्य बनकर उनके मनोविनोद के मधुर

साधन थे। क्या वे तीर जो पत्थरों को भी फोड़ देते हैं, तेरी कोमल लहरों में बिधकर तुझे पीड़ा नहीं पहुँचाते थे। परन्तु सैकड़ों वर्षों के काँटे समान दुख सहन करने के उपरान्त ही पुत्र के समान फूल खिलते हैं। तेरे तट पर कितनी क्रीड़ाएँ हुई हैं। कितनी लड़ाइयाँ और कितनी बार परस्पर मेल हुआ है। तेरे कूलों पर कितना शोरगुल मचा है इसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इन क्रुजों के विषय मे तो अब कल्पना ही शेष रह गई है। हे सरयू, तेरी एक स्मृति कह दूँ। लड्डू के आकार की उछली हुई गेंद को तू अपने लहरों के अंचल में जब तक छिपाती, इससे पूर्व ही तेरे वीरों के तीर ने उसे अपना लक्ष्य बना कर दूर फेंक दिया।

जननी इस अखंड जागते। (पृ० ३५६–३६०)

शब्दार्थ—सौध-धाम=राज-भवन। सौख्य=सुख। काम=कामना। व्यंजन =भोजन के मधुर पदार्थ। तनुजों=पुत्रों।

भावार्थ—इसी राजभवन मे माताएँ अपने पुत्रों के सुख की शुभ कामना से व्रत जप, पूजन आदि अनेक प्रयोग करती थीं। वे उनके भोजन के लिए भांति-भांति के मधुर और स्वादिष्ठ व्यञ्जन बनाती थीं। अपने पुत्रों पर वे अपने को न्यौछावर करती थीं। उनको पाकर अपने शरीर की सुध-बुध भी खो देती थीं। उनके लिए ही वे नए-नए व्रत करती थीं। उपवास के कारण कृश होने पर भी ये आनन्द मग्न रहती थीं। वे अपने अंचल से उनकी धूल पोंछतीं। कंघी से उनके बाल काढ़तीं। बालकगण तब हंसकर दूर भाग जाते थे। कुल के वे दीपक (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) अखंड भाव से प्रकाशमान रहते थे।

तटिनी उन वीक्ष्य थी। (पृ० ३६०–३६१)

शब्दार्थ—तात=पिता (दशरथ)। तनयों=पुत्रों। नभोमयक=आकाश स्थित चन्द्रमा। अंक=गोदियाँ। गुह=कार्तिकेय शिव के पुत्र। प्रद्युम्न=श्रीकृष्ण के पुत्र। मौक्तिक्यमाल्य=मोतियों की माला। हन्त=शोक सूचक शब्द। वीक्ष्य= प्रतीक्षा।

भावार्थ—हे सरयू नदी, उन पिता दशरथ की कथा क्या कहूँ। उन्हें तो पुत्र अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। आकाश में स्थित चन्द्रमा तो अपने मृग के लिए एक ही अङ्क वाला था परन्तु चन्द्रमा रूप राजा दशरथ एक साथ

चार उदार गोटियाँ रखते थे। शिवजी के तो कार्तिकेय और गणेश दो पुत्र थे। श्री विष्णु के बस प्रद्युम्न नाम के पुत्र थे। परन्तु कौशल राज दशरथ के पुत्र गुण और सख्या दोनों ही दृष्टियों से शिव के पुत्रों से दुगने और विष्णु के पुत्रों से चौगुने थे। वे सुन्दर मोतियों की माला को तोड़ देते थे और उनको बिखेर कर कहा करते थे "हम तो चौक पूर रहे हैं।" तब पिता हँसते हुए कहते थे "क्या तुम सब लड़कियाँ हो ?" इधर मैं भी जब काठ की तलवार बाँधकर नाटक का सा अभिनय किया करती थी, तब माँ बड़ी प्रसन्न होती थीं और मुझे वे अपना लड़का कहकर पुकारती थीं। यहाँ उन राजा दशरथ के प्रिय पुत्र थे, वहाँ हम राजा जनक की पुत्रियाँ थीं। केवल मिलन-वेला की ही प्रतीक्षा थी। परन्तु वह प्रतीक्षा आज की प्रतीक्षा की भाँति पीड़ा दायक नहीं थी।

वह जो शुभ तू चुकी। (पृ० ३६१--३६२)

शब्दार्थ—कौशिक रूप=विश्वामित्र के रूप में। दिपा=प्रकाशित हुआ। दिव=स्वर्ग। आत्मज युग्म=दो पुत्रों की जोड़ी। कनिष्ठ मा=छोटी माता सुमित्रा। असि=तलवार। स्रजा=माला। भगिनी=बहिन।

भावार्थ–मिलन का वह सौभाग्य विश्वामित्र के रूप में प्रगट होकर प्रकाशित हुआ। स्वर्ग में जाकर वे राक्षस सुखी हों जिनसे दुखी होकर मुनि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आए थे। जिन दोनों पुत्रों के बिना पिता दशरथ अपना जीवन भी त्याज्य समझते थे, उन्हें भी उन्होंने मुनि को सौंप दिया। कितना कठिन कार्य पिता ने उस समय किया था। माताएं यद्यपि कुल धर्म का पालन करती थीं फिर भी वात्सल्य वश वे रो रही थीं। हे सरयू तू भाव-विभोर बनी रह, रघुवशी तो सदैव ही धर्म पर बलि गए हैं। छोटी माँ सुमित्रा पुत्रों की कमर कस रही थीं, मँझली माँ कैकेयी तलवार बाँध रही थीं। "हमें ही प्रजा क्यों न बना दिया" यह कहकर ज्येष्ठ माता कौशल्या उन्हें माला पहिना रही थीं। प्रभु ने चलते हुए बहिन शाता से कहा था "हे बहिन शाते जब तूने ही जय मूर्ति के समान झुककर राखी बाँध दी तब फिर भय और दुख की क्या बात है ?

कृति में दृढ़ .... सिद्ध की। (पृ० २६२-२६३)

शब्दार्थ—कृति=कार्य। महापूति=अत्यन्त धैर्यवान। परिकल्पना=व्यापक कल्पना। मखमूर्त्ति=यज्ञ कार्य।

भावार्थ—राम और लक्ष्मण आकृति में अत्यन्त कोमल थे, परन्तु कार्य क्षमता में अत्यन्त दृढ थे। वे महा धैर्यवान मुनि के साथ गए। उनके मार्ग में भय की विस्तृत कल्पना के समान ताड़का ने विघ्न डाला। प्रभु ने उस लोक का संहार करने वाली राक्षसी को अबला अर्थात् अवध्य ही समझा, परन्तु वह तो अत्यन्त क्रूर और अत्याचारिणी थी। फिर उस डायनी का वध क्यों नहीं होता? छत्रियों के स्वरूप की सच्ची शोभा इसी बात में है कि उनके हाथों स्वदेश में सुख शान्ति रहे। कृषि, गौ, ब्राह्मण और धर्म की निरन्तर अभिवृद्धि हो। शत्रुओं से राज्य का वैभव सुरक्षित हो। इसीलिए उस प्रभु ने उस भय की मूर्त्ति को बाणों से बींध दिया। मुनियों ने तब यज्ञ कार्य सम्पन्न किया।

वहु राक्षस .... न तोप था। (पृ० २६३)

शब्दार्थ—सुबाहु=राक्षस का नाम। विधु=चन्द्रमा। केतु=राक्षस, समुद्र मन्थन के अवसर पर धोके से इसने अमृत पान किया था, विष्णु ने इसका सिर काट डाला था। खेत रहा = नष्ट हुआ। मारीच = राक्षस का नाम। स्वयीय=अपना कार्य।

भावार्थ—बहुत से राक्षस उनके मार्ग में बाधक बने। परन्तु उन दोनों ने सामने आने वाले उन सब राक्षसों को नष्ट कर दिया। सुबाहु नाम का राक्षस बड़ा ही भयंकर और बलवान था। परन्तु न तो ये चन्द्रमा के समान थे, उसकी भुजाएँ केतु के समान कटी हुई पड़ी थीं और प्रभु रामचन्द्रजी सूर्य से भी बढकर थे। राक्षसों का सभी समुदाय वहाँ नष्ट हो गया। दुष्ट मारीच उड़कर न जाने कहाँ चला गया। उस समय मुनिगण अत्यधिक आनन्दित हुए। परन्तु साथ ही उन्हें यह भी चिन्ता थी कि प्रभु को उपहार स्वरूप क्या भेंट करें? प्रभु का वास्तविक उपहार तो अविचल और बिना किसी कामना से किया गया अपना कर्त्तव्य और धर्म पालन ही था। मुनिजन रामचन्द्रजी की की विजय की घोषणा करते हुए उनकी जय-जयकार कर रहे थे, परन्तु इतने से

मुनियों को सन्तोष नहीं था।

सरयू वरदेव .... मथिली मणि। (पृ० २६४)

शब्दार्थ—वरदर्शी = उपयुक्त वरों को देखने वाले। पण-रूप = शर्त रूप में, प्रतिज्ञा के रूप में।

भावार्थ—हे सरयू, देवता तुल्य वर यही तो थे। तभी तो उपयुक्त वरों के ज्ञाता पिताजी के ये वचन ठीक ही थे "ऐसे देवता तुल्य वर अवश्य हैं, जिन्हें अपनी ये कलियाँ समर्पित की जा सकें।" सत्य के सामने कोई बाधा नहीं है। फिर भी वरों की योग्यता की परीक्षा अवश्य है। शिव का वह सिद्ध धनुष स्वय ही वर का परीक्षक बना। पिता ने यह निश्चय किया था कि जो इस शिव-धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यचा चढ़ा देगा, वही वीर इस शर्त मे मैथिली रूपी मणि को प्राप्त करेगा।

अब भूपति वृन्द .... सुर-शक्र भी हठे। (पृ० २६४-२६५)

शब्दार्थ—भूपतिवृन्द=राजाओं का समूह। विचली सी = विचलित सी। महाचला=सदैव स्थिर रहने वाली। वेष्टिता=पगी हुई। द्वीप चेष्टिता=द्वीप की स्थिति में। भुक्ति = लौकिक ऐश्वर्य। रौद्र कटाक्ष = भगवान शिव का कटाक्ष। भट=योद्धा। बाण=बाणासुर नामक राक्षस। शक्र=इन्द्र।

भावार्थ—महाराज जनक का ऐसा निश्चय सुनकर राजाओं के समूह मिथिला में आने लगे। उनसे मिथिला जैसी सदैव अविचल भाव से रहने वाली नगरी भी विचलित हो गई। जन-समुदाय रूपी समुद्र की तरगों से डूबी हुई वह नगरी एक द्वीप के समान प्रतीत होती थी। वे लोग मानो यही कह रहे थे कि भेंट रूप में ससार का सारा ऐश्वर्य हम से ले लो और बदले मे सीता रूप मुक्ति का साधन हमें प्रदान कर दो। मिथिला मे सारे ससार के राजाओं का सघ जुड़ा हुआ था। इससे मन कुतूहलवश उड़ा-उड़ा फिर रहा था। उन राजाओं से वह शिव-धनुष जैसे कह रहा था "मुझ जैसा अविचल चित्त लेकर ही मेरे पास आइए। केवल अपने शारीरिक बल की ही परीक्षा न दीजिए, अपने हृदय की गाँठ भी खोलिए। अपने चारित्रिक बल को भी तोलिए। वह शिव-धनुष साक्षात् भगवान् शिव के कटाक्ष रूप था। रावण और बाणासुर जैसे योद्धा भी जिनसे देवता और इन्द्रगण भी भय खाते थे,

उस रौद्र कटाक्ष के समान धनुष के सम्मुख न टिक सके, फिर ऐसा कौन राजा था जो उसकी शक्ति को सहन कर पाता ?

(६) हंसती हम ... धार के। (पृ० ३६५--३६६)

शब्दार्थ—चल=अस्थिर, चचल। मख-विघ्न=यज्ञ की बाधाएँ। मुनि की गृहिणी=गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या।

भावार्थ—हम अटारियों पर चढकर ये दृश्य देखती थीं और ये सब खेल देखकर अत्यन्त आनन्दित हो रही थीं। परन्तु हाय, हमारी माता का हृदय अपनी पुत्रियों के भविष्य की चिन्ता से चचल हो रहा था। माँ हम सब का शृङ्गार करके पूजन के लिए हमे भेज रही थीं। वरदायिनी माता पार्वती ने हमारे लिए सुयोग्य वर बुला दिए थे जिन्हें हमने कृतार्थ होकर ग्रहण कर लिया था। ऋषियो के यज्ञ मे होने वाली विघ्न-बाधाओ को दूर करके अपने वीर व्रत का पूर्ण पालन करते हुए तथा गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार करके वे वर मनुज रूप धारणकर जनकपुरी में आए थे।

सरयू, वह ... आप लेख ली। (पृ० ३६६)

शब्दार्थ—वर-वीथि-नाटिका=वर प्राप्ति का मार्ग या रगशाला। न्यून=न्यूनताओं, तुच्छ भावों। सून=प्रसून, फूल। दूषण=दोष। कृशानु=अग्नि।

भावार्थ—हे सरयू, वह प्रफुल्लित वाटिका वर प्राप्ति का मार्ग या रग-शाला बन गई। उन श्यामल और गौर वर्ण की मूर्तियों मे हमारे सैकड़ो पुण्य कार्य पूर्ण हो गए। जब अन्य राजागण अपनी न्यूनताओ को छिपाने के लिए वस्त्राभूषणो से अपना शृङ्गार कर रहे थे तब वे मुनियो के लिए वाटिका में से फूल चुन रहे थे। सूर्य तो स्वय ही भूषण है, अग्नि मे क्या कोई दोष होता है ? अर्थात् जैसे सूर्य को किसी भूषण की आवश्यकता नहीं है और अग्नि स्वभावतः ही निर्दोष है उसी प्रकार राम लक्ष्मण स्वाभाविक रूप से तेजस्वी और दोष रहित थे। उन्हें किसी प्रकार के साज-शृङ्गार की आवश्यकता न थी। उन्हे देखने के लिए हमने नेत्र क्या उठाए, वे फूलों की भाँति उनके चरणों में समर्पित हो गए। उनकी मुसकान देखकर हमने जैसे अपने समर्पण की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

"नभ नील अपकीर्ति से डरूँ"। (पृ० ३६६--३६७)

शब्दार्थ—आँस=सवेदना।

भावार्थ—तब बहिन सीता ने मुझे पकड़कर कहा था "अहा, नीले अनन्त आकाश के समान कैसा स्वरूप है ? अपना ससार इसी अनन्त आकाश के वश में होकर उन्हीं के चरणों में चुपचाप लीन हो रहा है।" यह कहते हुए उनके हृदय से दीर्घ आह सी निकली। उस आह ने जैसे उनके साथ सवेदना प्रगट करते हुए कहा "यदि मैं उनकी चरण धूलि धारण कर पाऊँ तो अहिल्या को मिली अपकीर्ति से भी नहीं डरूँ"।

मुझको कुछ साथ में गए। (पृ० ३६७)

शब्दार्थ—खर्व = नष्ट होना। झष केतन केतु = कामदेव का झण्डा। मीनकम्र=मछली की सी शोभा वाले। सुमन स्फुट=कुछ चुने हुए फूल।

भावार्थ—मैं अपने को बड़ा आत्माभिमानी समझती थी परन्तु उस समय तो मेरा सारा आत्म गर्व क्षण भर में ही नष्ट हो गया। हे सरयू, मेरा शरीर उनके सम्मुख उसी प्रकार नत हो गया जैसे तू समुद्र के समीप झुक जाती है। कामदेव की ध्वजा के समान मेरे ये नेत्र शर्म से झुक गए। उस समय ये नेत्र मछली की शोभा के समान थे। वे वर हम पर विजयी हुए, परन्तु क्या वे विनीत थे ? हमें हार ही मिली परन्तु उसके सम्मुख विजय का भाव ही साधारण था। वे वर धीरता और वीरता पूर्वक आकर सहसा गम्भीर भाव से लौट गए। वे अपने हाथों में वाटिका के कुछ चुने हुए फूल लिए हुए थे और हमारे हृदय उनके चरणों से लिपटकर उनके साथ ही चले गए।

कुछ मर्मर पूर्ण गूढ था। (पृ० ३६७-३६८)

शब्दार्थ—मर्मर पूर्ण=ध्वनि पूर्ण। धर्म = धाम। गद=रोग। द्रोण= काला कौआ। कोण=कोना। तकती=ताकती हुई, देखती हुई। विमूढ = बेसुध।

भावार्थ—मर्मस्थल में कुछ अव्यक्त मधुर ध्वनि होने लगी। किसी प्रकार का श्रम न करने पर भी धूप की गरमी का सा अनुभव हो रहा था। हर्ष से पुलकायमान होकर शरीर के रोम काँटों की तरह खड़े होगए थे। वह आत्म विभोर करने वाला प्रेम-धर्म एक रोग के समान बन गया था। मेरा

वह भोला भाला बचपन न जाने कहाँ चला गया ? नेत्रों में कुछ जल भर आया। इस यौवन ने आकर मुझे पकड़ लिया और एक नए सकोच भाव से मुझे भर दिया। एक नूतन दृश्य के रूप में यह ससार मेरे नेत्रों के समक्ष आगया। दूर एक काला कौआ शोर मचा रहा था, परन्तु मैं तो एक कोने में बैठ जाना चाहती थी। मेरी दृष्टि कुछ तिरछी हो उठी और यह सृष्टि मुझे घूरती हुई सी प्रतीत होने लगी। मेरा मन मुग्ध सा होकर वेसुध हो रहा था। न जाने जीवन मे कौन-सा गभीर रहस्य प्रगट हो गया था।

घर था भरपूर मै जगी जगी। (पृ० ३६८-३६९)

शब्दार्थ—पूर्व सा=पहिले की भाँति। सुदूर=बहुत दूर। भोग=फल। गवाक्ष=खिड़की। नवाक्ष=नए नेत्र।

भावार्थ—घर तो पहिले ही की भाँति भरा पूरा था परन्तु विश्राम बहुत दूर की बात बन गया था। मन न जाने किस अभाव का अनुभव कर रहा था। शरीर भी नई चेष्टाओं से पूर्ण था। देह रूपी लता छुई मुई के समान बन गई। रात्रि काल होने पर भी नींद नहीं आई। न जाने उसे क्या होगया। मेरे लिए वियोग का वह पहिला ही अवसर था। यह सब उसी का परिणाम था। मैं चुपचाप खिड़की खोलकर यौवन के नए पन से भरे अपने नेत्रों से रात्रि का चन्द्रमा देखने लगी। सब सो गए थे, परन्तु मैं जाग रही थी।

जब थे सब निहारने लगी। (पृ० ३६९-३७०)

शब्दार्थ—रात्रिचर=रात्रि में विचरण करने वाले उल्लू आदि। बढ= बुझना। नलिनी=कमलिनी। कलिकावलि=कलियो का समूह। मसि=स्याही। हिम=बर्फ, ओस की बूँदें। अटवी=वन, जगल। सरसी=छोटी तलैया। सन्न= चुप, स्तब्ध। अविलोड़ित=बिना बिलोया हुआ। तिमिराम्भोधि=अधकार रूपी समुद्र। समुद्र धृता=समुद्र से निकली हुई।

भावार्थ—प्रभात काल होने पर जब सब जागने लगे, रात्रि मे विचरण करने वाले उल्लू आदि जीवजन्तु डर कर भागने लगे, रात्रि रूपी नायिका चद्र और तारको के अपने हार उतारने लगी, तब मै स्वप्न देख रही थी। पौ फटकर अपना हृदय दिखा रही थी। कलियाँ स्वय फूटकर, प्रस्फुटित होने की कला सिखा रही थीं। दीपक की शिखा बुझ रही थी। कमलिनियों की पखु-

ड़ियों पा भ्रमर गण अपने अनुराग का लेख लिख रहे थे। कलियो का समूह फूट पड़ा, और उन पर हे सखि भौंरों के समूह उड़ उड़ कर टूटने लगे। स्याही के समान आकाश का अधकार छूट गया। हरे भरे पेड़ पौधे ओस की बूँदों के रूप मे वर्फ लूटने लगे। पक्षियों का समूह बोलने लगा। पूर्व दिशा ने अपना द्वार खोल दिया। जगल के वृक्ष आदि वायु के झोकों से हिलने लगे। सरसी का जल फूलों की सुगन्ध से सुवासित हो उठा। रात्रि में वियोग के दुख से पीड़ित चकवी दुख और शोक से मुक्ति पाकर अपने कोक से मिल रही थी। सूर्य मुखी अत्यन्त प्रसन्न थी। फिर भी चेतनता को प्राप्त सृष्टि स्तब्ध ही थी। जमा हुआ दही बिलोया नहीं गया था। परन्तु अन्धकार रूपी समुद्र का मथन होने से पृथ्वी उस अधकार से बाहर निकल आई थी। मधुर वायु चल रही थी, तब मैं स्वप्न देखने लगी।

वह स्वप्न कि सिद्धि-मत्र था। (पृ० ३७०-३७१)

शब्दार्थ—मोदिता=प्रसन्नता प्रदान करने वाली। रोदिता=रोती हुई। लास्यपूर्ण=नृत्य की चचलगति के समान। पद्मानन=कमल के समान मुख। अश चूर्ण=किरणो का चूर्ण। घूर्ण=घूमना। अघ्रिवेत्र=बैंत की तरह पैर। तत्र=वाद्य यत्र।

भावार्थ—वह स्वप्न था अथवा सत्य था उसके लिए मैं क्या कहूँ? हे सरयू तू इसी प्रकार प्रवाहित हो और मै भी उस प्रेम की सरिता में बहती रहूँ। स्वप्न मे हृदय को प्रसन्न करसे वाली प्रिय की मूर्त्ति प्रगट हुई। न जाने कब मेरे रोते हुए नेत्र सो गए। मेरा मन नृत्य की गति के समान चचल था। उनके कमल मुख पर हास्य की छटा थी। उस मुख से जैसे किरणों का चूर्ण उड़कर झड़ रहा था। वह मधुर आभा बिखेर रहा था। उस समय हे सरिते मेरे नेत्रों के सम्मुख स्वर्ग घूम रहा था। अब भी मेरी यह देह लता कितनी कटकित, झुकी हुई और चोट खाई हुई है। उस समय बस बेंत के समान मेरे पैर काँप रहे थे। नेत्र झुक भी नहीं सकते थे क्योंकि उन्हें देखकर वे स्थिर से होगए थे। मेरी चेतना गतिहीन बन गई थी। प्रिय ने प्रेम पूर्वक हँसकर कहा "प्रिये!" इस एक शब्द के सुनते ही मेरा प्रत्येक रोम स्वतन्त्र

वाग्मत्र की भाँति बन गया, और वह जैसे कोई सिद्धिमत्र सुनकर भक्त हो उठा।

तटिनी यह काल शेष था। (पृ० २७१)

शब्दार्थ--किंकरी=सेविका। निमेष=क्षण।

भावार्थ--हे सरिते, तू ही बता उनकी यह तुच्छ दासी उसी समय सुख से क्यो नहीं मरी ? वास्तव मे वही तो जीवन का वास्तविक क्षण था। परन्तु आगे यह दुख का समय जो जीवन मे देखना था।

कितनी उस इन्दु सत्य था वही। (पृ० २७१--२७२)

शब्दार्थ—इन्दु=चन्द्रमा। मुधा=असत्य। मुखरा=वाचाल, बहुत अधिक बोलने वाली। मज्जन योग्य=स्नान करने योग्य।

भावार्थ—हे सरयू मै असत्य नहीं कहती, उनके मुख मे अपार अमृत था। उनके अमृत रस से भरे रूप समुद्र का पान कर लेने पर ही तो मै आज इस अवस्था मे जीवित रह सकी हूँ। मुझसे प्रिय स्वप्न मे मिले और बोले "हाय उर्मिले, मै तुम्हारा वर अवश्य हूँ, परन्तु वीर हूँ, अतः वीर वधू की भाँति तुम यदि धैर्य धारण कर सको तभी मुझे पति रूप मे स्वीकार करो। मेरी वाचाल बुद्धि उस समय मौन होगई। बहुत अधिक बोलने वाली मै उस समय कुछ भी नहीं कह सकी। परन्तु मेरा वह मौन भाव ही मेरे लिए सम्मति सूचक सिद्ध हुआ। उन्होने कहा "तुम अबला हो" उत्तर मे मैने कहा "हाय रे छली, अबला होने के कारण ही तो मै तुम जैसे महाबली को पति रूप मे वरण कर रही हूँ।" प्रिय ने यह भी पूछा था "क्या तुम्हारा मनरूपी मानसरोवर गहरा है ? क्या उसमे स्नान करने योग्य पर्याप्त जल है ? अर्थात् मेरे मन को अनुरंजित करने वाली पर्याप्त गहराई तुम मे है ? मैंने उत्तर देते हुए कहा था "आप ही इसकी गहराई की परख करे। यह लघु ही है। परन्तु जैसा भी है अब तो उसे निभा ही लीजिए।" उन्होने पुनः पूछा "तुम्हीं कहो मै तुम्हें क्या उपहार भेंट करूँ। धन क्या, मे तो अपना मन ही तुम्हें समर्पित करना चाहता हू। परन्तु मेरे हाथ मे तो तीर या कॉटे ही हैं। अर्थात् कठोर कर्त्तव्य ही तुम्हारे लिए मेरे पास है।" मैंने उनकी ओर देखा तो तीर या कॉटे के स्थान पर फूल ही दिखलाई दिया। प्रिय द्वारा प्रदान की गई

कठोर कर्त्तव्य की भेंट भी मुझे फूल सी कोमल प्रतीत हुई। प्रिय ने अपना हाथ बढ़ाकर मुझे वह फूल दिया। मैंने उसे लेकर अपने सिर पर चढा लिया। हाय, तभी मेरी पलकें ढलकर खुल गई। प्रभात की किरणें परस्पर मिल कर हँस रही थीं। अचानक ही यह सब क्या होगया। मेरे ये भाग्य-हीन नेत्र क्यों खुल गए। बस वह स्वप्न ही मेरे लिए अटल सत्य था। बाकी सब मिथ्या था।

जिसने मम मूर्त्तिहास थी। (पृ० ३७३)

शब्दार्थ—पार्श्वस्थ=बगल में बैठी हुई।

भावार्थ-यह बगलमें बैठी हुई सुलक्षणा जिसने सदैव मेरे दुख मे हाथ बँटाया है यह भी उस समय मुझे बुरी लगी थी। मुझको वह अपने साथ लिवा कर ले आई थी। चारों ओर विशेष प्रकार की धूम मची हुई थी। मैरा हृदय भी तरंगित हो रहा था। जिस मूर्ति के चारों ओर यह हृदय घूम रहा था वह हास्य कर रही थी।

निज सौध-समक्ष को भिगो उठी। (पृ० ३७३-३७४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हमारे महल के सम्मुख ही स्वयंवर का विशाल स्थल बना हुआ था। स्वयंवर में वधू द्वारा निर्धारित धीरता सम्पन्न वर को ही पति रूप में स्वीकार करना था। मेरे ये नेत्र दीपक बुझे बुझे से हो रहे थे। मेरे हृदय मे यही चिन्ता हुई कि यदि प्रभु धनुष न चढा सके तो क्या होगा? यह सोचकर मेरा मन चचल हो उठा और शरीर के अङ्ग थक से गए। तब मैं अत्यन्त व्याकुल हो उठी और अपने आँसुओं से मणि तुल्य श्रेष्ठ सीता बहिन को भिगोने लगी।

हँस वे कहने शम्भु चाप था। (पृ० ३७४-३७५)

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास। मधु=बसंत। पत्र=पत्ते। वर्त्ती=बत्ती। स्नेह= तेल, प्रेम। धृति=धैर्य। गुरु=भारी।

भावार्थ—मेरी बात सुनकर वे हँसती हुई कहने लगी "अरी तू इतनी भयभीत क्यों हो रही है? सोचतो सही, यदि उनसे यह धनुष चढने को नहीं होता, इस कार्य को करने में यदि वे समर्थ नहीं हो पाते, तो क्या यह कभी

विचलित नहीं होने वाली भौंह उनकी ओर आकृष्ट होती ? दृढ विश्वास के बिना आत्मा का समपर्ण कहीं सम्भव हो सकता है ? तू ही बता, लता अपने पत्तो को बसत के आने से पूर्व ही क्यो समर्पित कर देती है ? अपने आप को अर्पित कर देने वाली वह बत्ती जब स्नेह में डूब जाती है तब दीपक पहले उसे हृदय से लगाकर बादमे अ धकार को दूर करता है। फिर तूने अपना आत्म विश्वास कैसे खोदिया ? तुझको यह खिन्नता कैसे हुई ? पगली, बता तो सही किस बात से तुझे ऐसा अनुभव हुआ। रात्रि काल में ही क्या अपना धैर्य त्याग बैठी ? तब फिर प्रभु के अटल विश्वास मय प्रेम में पगी हुई बहिन सीता ने मुझे हृदय से लगा लिया। उस समय विस्मय विमूढ सी होकर उनके चरणों में मैं चुपचाप गिर पड़ी। उनकी छोटी बहिन और उपासिका होकर भी मैं तो उनकी सेविका मात्र ही हूँ। मेरा हृदय हलका हो गया और अब वह सब प्रकार की चिंता और दुख से रहित था। परन्तु फिर भी शिव का वह धनुष तो अत्यन्त भारी था।

तब प्रस्तुत रंग भूमि विहीन दीन है। (पृ० ३७५- ३७६)

शब्दार्थ—रगभूमि=वह स्थान जहाँ किसी उत्सव का आयोजन हो। भावाम्बुतरग=जल तरगों की भाँति भाव लहरिया। सद्मिनी=गृह। वर माल्य= वरमाला। मिलिन्द=भ्रमर। चामर=चवर। परे=दूर। नाक=स्वर्ग। महा-पिनाक = शिव धनुष। नाक=गौरव, प्रतिष्ठा। बाहुजता=क्षत्रियत्व।

भावार्थ—तब उस स्वयवर स्थल मे, अथवा जल तरगों की भाति राजाओं के भाव लहरियों की भूमि पर अपने मन रूपी मानसरोवर के हस का वास स्थान बनी हुई प्रभु के प्रेम में पगी हुई कमलिनी के समान उन बहिन सीता जी ने प्रवेश किया। वर माला का पराग छोड़कर राजाओ के नेत्र भ्रमरों के सैन्य दल की भाँति उनके ऊपर जो एकत्रित हो गए थे, हे सखी वे चवर के समान ऊपर ही ऊपर उठ रहे थे। वे जैसे सेवकों की भाँति चवर डुला रहे थे। सीता जी को पाने के लोभ में वह नृप समुदाय अपने बल, यौवन, रूप, वेश भूषा तथा शिष्ट और विशिष्ट प्रकार के प्रदेशों की महत्ता तो दिखला रहा था परन्तु शिव धनुष को तोडने की कठोर प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में असमर्थ होने के कारण वह अत्यन्त क्षुब्ध भी हो रहा था। सीता जी को

प्राप्त करने के रूप में स्वर्ग ही उनके सम्मुख जैसे नत था, परन्तु इस सीता रूपी स्वर्ग को प्राप्प करने के मार्ग में शिव का महान धनुप बाधक बना हुआ था। राजाओं द्वारा घोर प्रयत्न करने के उपरान्त भी वह धनुष अपने स्थान से नहीं उठा। इस प्रकार धनुष तो अपने स्थान पर स्थित रहा परन्तु उन राजाओं का गौरव नष्ट हो गया। सब राजाओं का बल निष्फल हो गया। तब पिता ने दुखी होकर कहा "बस क्षत्रियत्व का लोप हो गया। यह पृथ्वी वीरों से रहित होकर दीन बन गई है।"

कहता यह बात रोहित-दीप्ति दीजिए। (पृ० ३७६--३७७)

शब्दार्थ—सत्कुल जात=सद्वंश से उत्पन्न। मञ्चोपरि=मञ्च के ऊपर। कांत तर्जना=मनोहर गर्जना। वृहदंश=विशाल कंधों वाला। शेष=शेष नाग। जह्नुजा=गंगा नदी। कार्मुक=धनुष। इक्षु खंड=ईख के टुकड़े। शुण्डोपम= हाथी की सूंड़ के समान। बाहुदंड=भुजाएँ। रोहित-दीप्ति=इन्द्र धनुष की शोभा।

भावार्थ—पिता की यह बात सुनकर प्रियतम ने कहा—कौन यह बात कहता है, कौन श्रेष्ठ वंश में जन्म लेने वाला चुपचाप इसे सुन रहा है? हे सरयू जब उन्होंने मंच के ऊपर से खड़े सिंह के समान मनोहर गर्जना की थी तब आज के मेरे ये दुखी नेत्र उन्हीं पर केन्द्रित थे। आग की भांति उस सूर्य के उदय को देखकर कौन ऐसा मनुष्य था जो न जाग गया हो? उन्होंने कहा नहीं नहीं अब भी सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है, सागर में अब भी रत्नों का वास है, रघुवंश अब भी शेष है और यह वसुधा भी नष्ट नहीं हुई है। उसको धारण किए हुए विशाल कंधों वाला शेष नाग भी अभी बाकी है। गङ्गा का जल अभी सूखा नहीं है, और रामचन्द्र जी की भुजाएँ भी कहीं चली नहीं गई हैं। हाथी की सूँड़ के समान मेरी भुजाओं के लिए ऐसे सैकड़ों धनुष ईख के टुकड़ों की भांति हैं। राजा जनक का कथन हमारे लिए महापमान की बात है। परंतु जानकी मेरी पूज्या है, अतएव समर्थ होने पर भी मैं इस धनुष को नहीं चढ़ाऊँगा। तब प्रभु रामचन्द्र जी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा— हे आर्य उठिये और इस शिव धनुष चढ़ाने का अपना कार्य पूर्ण कर अपने बादलों सदृश्य श्यामल शरीर को इन्द्र धनुष की शोभा प्रदान कीजिए।

सुनते सब लोग　　　　　　　कि भग था (पृ० ३७७-३७८)

शब्दार्थ—गारुड़ मन्त्र=सर्प को वश में करने वाला मन्त्र। धनुरुल्लोल=लहर की भाँति धनुष।

भावार्थ—सब लोगों ने भय से स्तब्ध होकर यह सुना। पिता नत होकर भी अत्यन्त प्रसन्न थे। हे सरयू उस समय मैं यह भी भूल गई कि प्रभु धनुष चढ़ा सकेंगे अथवा नहीं? सारे राजाओं का गर्व चूर चूर हो गया। जीजी मणि के समान थी और वह शिव धनुष सर्प के समान उसका रक्षक बना हुआ था। प्रभु ने उस सर्प रूपी धनुष को ऐसे उठा लिया जैसे किसी गारुड़ मन्त्र द्वारा उसे वश मे कर लिया हो। रस अपनी पूर्णता को पहुँच गया। प्रभु के धनुष चढ़ाते ही वह टूट गया। समुद्र के समान प्रभु के लिए वह धनुष लहर बन गया। जिस प्रकार उठती हुई लहर को समुद्र भग कर देता है वैसे हीं प्रभु ने धनुष को तोड़ दिया।

सब हर्ष निमग्न　　　　　　　वाम पाद हैं (पृ० ३७८-३७९)

शब्दार्थ—क्षितिपों=राजाओ। वाम पद=बाया पेर।

भावार्थ—सभी लोग हर्ष में डूब गए। परन्तु राजाओ के हृदय भग्न हो गए। कुछ लोग वहीं यह कह उठे—वह तो बल ही था, इसमें वीरता की कोई बात नहीं थी। न जाने सीताजी को प्राप्त करने के इच्छुक किस राजा का लोभ मचल उठा। मै भी यह सुनकर क्षुब्ध हो उठी। इससे पूर्व कि क्षोभ से मेरी भौंहें तिरछी हो, उधर प्रिय ने पहिले ही वहाँ धनुष चढा लिया और उनका स्वर कोलाहल को चीरता हुआ गूज उठा—वह वीरता, शौर्य किसमें है जिस किसी को उसका घमण्ड हो, उसका मस्तक तो हमारे बाए पैर के नीचे है।

ध्वनि मंडप मध्य　　　　　　　दोप-दायिनी (पृ० ३७९)

शब्दार्थ—भार्गव मूर्ति = परशुराम। वर्जना = मना करना। द्विजता = ब्राह्मणत्व।

भावार्थ—प्रियतम की वह ध्वनि मण्डप में छागई। तभी परशुराम वहाँ आगए। यद्यपि प्रभु रामचन्द्र जी के हाथों शिव धनुष टूटा था परन्तु उस सम्बन्ध में वार्तालाप प्रियतम और परशुराम के मध्य हो रहा था। मुनि दर्प से

पूर्ण गर्जना कर रहे थे। प्रियतम तत्काल ही उसका उचित प्रतिरोध कर रहे थे। प्रभु शान्त भाव से प्रियतम को इस के लिए मना कर रहे थे। सब की बस यही आकांक्षा थी कि यह संकट किसी प्रकार टल जाय। प्रियतम ने भार्गव से कहा—हे मुनि हमें अपने धनुष के प्रसंग को लेकर मत डराइये, हम तो केवल धर्म के शाप से डरते हैं। यदि ब्राह्मणत्व भी दूसरों को पीड़ा दायक बनेगा तो उस के बध करने में भी कोई दोष नहीं होगा?

सुन देखा हुई .... धन्य धन्य। (पृ० ३७९-३८०)

शब्दार्थ—मुनिता = मुनियों की सहज प्रकृति। व्रज्या-व्रत = सन्यास का व्रत।

भावार्थ—प्रिय की बात सुनकर और वह दृश्य देखकर मैं भाव विभोर हो गई। और अपने वस्त्र के किनारे को बटने लगी। वही गर्व की भावना अब भी मेरे नेत्रों के सामने है। तभी तो मैं आज उन विपत्तियों से संघर्ष कर रही हूँ। भार्गव अपना धनुष तो प्रभु को दे गए और अपने साथ शान्ति एवं सौम्यता के रूप में मुनियों की सहज प्रकृति ले गए। सन्यास का वह व्रत धन्य है जिसके सम्मुख देवताओं का स्वर्ग भी तुच्छ है।

सरयू दुंदुभी .... छूटने लगीं। (पृ० ३८०-३८१)

शब्दार्थ—भगिनी युग=दो बहिनें। कर-पीड़न=पाणिग्रहण संस्कार। प्रेम याग=प्रेम यज्ञ।

भावार्थ—हे सरयू, इसके उपरान्त मिथिला नगरी में जय के नगाड़े बजने लगे। इधर यहाँ अयोध्या में विशाल बरात सजने लगी। यहाँ मिथिला में हमारी दो बहिनें माण्डवी और श्रुतिकीर्ति और थीं। उधर यहाँ अयोध्या में भरत और शत्रुघ्न दो श्रेष्ठ भाई थे। वह पाणिग्रहण संस्कार सचमुच प्रेम यज्ञ के समान था। उसे प्राप्ति कहें अथवा त्याग? (विवाह में पति पत्नी एक दूसरे को जहाँ प्राप्त करते हैं वहीं अपने आपको एक दूसरे के प्रति समर्पित कर देते हैं। इसीलिए विवाह में त्याग भी है और प्राप्ति भी। उस हँसी खुशी तथा आनन्द और विनोद के वातावरण में दुख तो स्वयं ही विलीन हो गया। वह अवसर बन्धन और मुक्ति का मिलन था। हम शैशव के जीवन से मुक्त होकर वैवाहिक जीवन के बन्धनों या नए उत्तरदायित्वों को

ग्रहण कर रहे थे। विधाता का सत्य अर्थात् भाग्य द्वारा पूर्व निश्चित होने पर भी वह हमारे लिए खेल के समान था। वह विवाह संस्कार नर को अमरत्व प्रदान करने वाला है। अर्थात् विवाह द्वारा ही नर के नरत्व का विकास होता है। इसी में नारी जाति का महत्व निहित है। हमारे नेत्रों में नए जीवन के अनेक स्वप्न छाए हुए थे। न जाने वे सुख के दिन कब आए और कब चले गए। हाय जब हम माँ से विलग होने लगीं तब हमारा वह स्वप्न टूट गया।

बिछुड़ा बिछुड़ा क्या पता! (पृ० ३८१)

शब्दार्थ—आर्द्र = गीला। शतधा = सैकड़ों धाराएँ। स्रवित = बहती हुई।

भावार्थ माता पिता से विदा होने का वह दुख भी अब पुराना पड़ चुका है। हे सरयू तुझे तो अपना वह वियोग याद है जब तू अपनी सजल देह लेकर अपने माता पिता के घर से प्रियतम समुद्र के गृह की ओर चली थी। हे सखि तू ही बता क्या शत धाराओं में अपने आँसुओं को बहाए बिना द्रवित हृदय लिए क्या तू अपने घर से निकल सकी थी। उस अवसर पर दुख और विषाद से कितनी पछाड़े तूने खाई थीं।

'मत रो' कह तीन माँ। (पृ० ३८१-३८२)

शब्दार्थ—प्रपीड़ता=दुखी। क्रीड़ता=खेल कूद में मग्न रहने वाली।

भावार्थ—विदा के उस अवसर पर हम रोने लगीं। तब हमें धैर्य बंधाते हुए माँ कहने लगी–रोओ मत। पर यह कहती हुई वे स्वय रो उठीं। इस पर मैंने कहा था–हे माँ तुमने अपना धीरज क्यों त्याग दिया? उत्तर में माँ ने कहा था- मैं तो तुम्हारी दुखी माता हूँ, इसलिए मेरी व्याकुलता स्वाभाविक है। परन्तु तुम क्रीड़ा मग्न बालिकाएँ हो। तुम्हें रोने की आवश्यकता नहीं। मैं कह उठी–फिर तुम अपने शिशु को अपने पास से क्यो अलग कर रही हो। इस प्रकार तुम माँ की ममता कम कर रही हो। मेरी बात सुनकर माँ ने कहा–मैं तुम्हें अपने पास से दूर नहीं कर रही, अपने को ही तुमसे अलग कर रही हूँ। तुम वहाँ यहाँ से भी अधिक सुखी रह सकोगी। सुनो यहाँ तो मैं

अकेली ही तुम्हारी दीन माँ हूँ, परन्तु वहाँ तुम्हें तीन तीन माताएँ प्राप्त हैं।

पति का सुख आज बेटियो।' (पृ० ३८२)

शब्दार्थ—बिसरा सा=भूला सा, आत्म विस्मृत सा। भान=ज्ञान। अंक=गोदी। थल=स्थान।

भावार्थ—हमें उपदेश देते हुए पिता ने कहा था—पति के सुख को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझना। उस सुख में अपनी सहन शीलता को न त्याग देना। पिता का वह उपदेश और हमें विदा करते हुए उनका वह आत्म विस्मृत सा वेश अब भी मुझे याद है। ज्ञानियों में श्रेष्ठ वे पिता हमें विदा करते हुए अपना सारा ज्ञान जैसे भूल रहे थे। वे तो लोभ और मोह से परे थे, परन्तु हमारा दारुण वियोग उनके हृदय को भी व्यथित बना रहा था। हम तो सदैव उनकी गोद में ही पली थीं। उनकी दया और आशीर्वाद सर्वत्र ही हमारे साथ था। विदा होते समय हम उनके चरणों में लोटकर उनके पैर पलोटने लगीं। उस समय उन्होंने कहा था—हे पुत्रियो तुम अपना स्थान भूल रही हो। तुम्हारा स्थान मेरे पैर न होकर मेरी गोदी है। अतः फिर आकर मेरी गोदी में बैठना। मुझे भुला मत देना।

उस आंगन में अश्रु टूट के (पृ० ३८२–३८३)

शब्दार्थ—मारुत=वायु।

भावार्थ—हमें विदा करने के उपरात भी मा उस आँगन में खड़ी होकर अपने बड़े बड़े नेत्रों में आँसू भर कर अपनी सुध बुध भूलती हुई सहसा चौंक कर हमें पुकार उठती थीं। परन्तु वह सूना आँगन तो भाँय भाँय कर रहा था। वहाँ केवल हवा का ही साय साय का स्वर गूँज रहा था। जहाँ हमारी हँसी के फूल फूट कर झड़ते थे वहाँ अब माँ के आँसू टूट टूट कर गिर रहे थे।

प्रिय आप न कर्म-भोग है। (पृ० ३८३)

शब्दार्थ—उबार लें=रक्षा करें। दृगम्बु=नेत्र जल। धन=पति।

भावार्थ—यदि प्रिय स्वय हमारी रक्षा न करते तो वह मातृ वियोग मारे प्राण ही ले लेता। हे सरिते यह तो तू जानती ही है कि प्रियतम के म में सारा दुख लीन होगया। हे सरयू! उस सुख के लिए क्या कहूँ, अब

तो यह दुख ही मुझे सहन करना है। जिसने अपने जीवन में आनन्द का ऐसा भोग किया उसे दुर्भाग्य के भी आँसू पीने को मिले। वह अभागिनी मैं ही हूँ जिसने अपने पति को अपनी स्वेच्छा से त्याग दिया। विष के समान यह जो वियोग है वह सब मेरे कर्मों का ही तो फल है।

विनती यह अशांति में मिले! (पृ० ३८४–३८५)

शब्दार्थ—गण्य=प्रतिष्ठित। दुहिता=पुत्री। स्त्रैण=स्त्री रत, कायर पुरुष। गिरा=वाणी। पर्व=आनन्द का अवसर। लीक=लोक परम्परा।

भावार्थ—हे सरयू मैं हाथ जोड़कर तुझसे यह विनय करती हूँ, तू यह बता क्या मैंने कहीं प्रियतम का साथ छोड़ कर कुल के प्रतिकूल तो कार्य नहीं किया और इस प्रकार कहीं अपना धर्म तो नहीं मिटा दिया। इस प्रतिष्ठित रघु परिवार की वधू तथा विदेह की पुत्री होकर क्या मेरे लिए यह उचित था कि मैं शारीरिक भोग की लालसा से पति को घर पर रोक कर त्याग के उस सुअवसर से उन्हें वचित कर देती। यदि स्वामी घर पर ही रहते तो क्या उन्हें मेरी वाणी निरा स्त्रीरत पुरुष नहीं कहती। इसलिए तो भाई के साथ जाने में उनके पुरुषार्थ का वह गर्व मेरे लिए तो महान आनन्द का अवसर था। हे सरयू तू ही बता यदि मैं उस समय न जाने देती तो तू जल की यह मधुर ध्वनि सुख पूर्वक करती अथवा दुखी होती? मेरे इस कार्य से तू सहमत है अथवा असहमत? परन्तु आज स्वय मुझे भी इसका ज्ञान नहीं है। मैं स्वय निश्चय नहीं कर पा रही कि मैंने उचित किया अथवा अनुचित। कहीं लोग अपने मन के प्रतिकूल तो बुरे विचार नहीं सोचते? अर्थात् मेरे हृदय में जो कभी कुभावनाएँ उठती हैं वे मेरे मन के प्रतिकूल ही हैं। हे सुन्दर और मधुर नाद करने वाली सरयू मैं तो तुझे अपने कार्य का ही समर्थन करते हुए पाती हूँ। मेरे लिए यह दुख जितना कठोर सिद्ध हुआ है उससे कहीं अधिक मेरा विश्वास बढा है। यदि मैं पति को अपने साथ रखकर लोक परम्परा का पालन न कर सकी तो अब मेरा यह कार्य ही लोक परम्परा का आदर्श बन जाय। पति से अलग होने पर मुझे चाहे सुख शान्ति प्राप्त न हो, परन्तु हे सन्तोष तुम मेरे

साथ रहना। अर्थात् मुझे अपनी इस दुख पूर्ण अवस्था पर पूर्ण सन्तोष है। सुख के समान मैं यह दुख भी सहन करू और अशान्ति में भी मैं शान्ति का अनुभव करूं।

तब जा सुख किन्तु सगिनी। (पृ० ३८५-३८६)

शब्दार्थ—तरगिणी=नदी। त्रिपथा = गगा। सगरगिणी=साथ में क्रीड़ा करने वाली। ओघ=प्रवाह। अमोघ=व्यर्थ नहीं होना, निष्फल न होना। पान्थ= पथिक, विरही।

भावार्थ—तब हे सुख का अभिनय और नृत्य करने वाली सरयू जा और अपने प्रियतम सागर की पार्श्व वर्त्तिनी बन। तेरे साथ क्रीड़ा करने वाली गगा जैसी नदी तेरा मार्ग देख रही है (समुद्र में मिलने से पूर्व सरयू नदी गगा में लीन हो जाती है।) तेरा यह प्रवाह व्यर्थ नहीं जायगा। पथिक तो अपना मार्ग स्वय बनाता है, इसलिए तू प्रवाह शील होती हुई अपना मार्ग स्वयं बना कर समुद्र तक पहुँच ही जायगी। तेरा चचल हृदय निरन्तर मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है। मेरे जीवन दीप को जलता हुआ स्नेह निरन्तर मुझे जला रहा है। हे सरिते तुझे अपने जीवन में मुक्त प्रवाह मिला है। मुझे बन्धन का दुख प्राप्त हुआ है। फिर भी शारीरिक रूप से हम भले ही भिन्न है, तू नदी है और मैं मानव प्राणी हूँ परन्तु मानसिक अवस्था में तो हम दोनों एक हैं।

कह, क्या उपहार वृन्द का।" (पृ० ३८६--३८७)

शब्दार्थ—क्षेम में=कुशलता पूर्वक। शुक्तिमयी=सीपियों को धारण करने वाली। थाती=धरोहर। क्षार=खारा। क्षाराब्धि=खारा समुद्र। दृग-विन्दु=नेत्रों के आँसू। घन=बादल। सपरागाम्बुजता=पराग युक्त कमल। वीरवृन्द=वीरों का समूह।

भावार्थ—हे सरिते, तू बता मैं तुझे क्या उपहार भेंट में दूँ। अपने ये केश ही उपहार के योग्य मुझे प्रतीत होते हैं। इसकी एक लट प्रेम से ग्रहण कर और राखी की भाँति इसे सदैव सँभाल कर रख (उर्मिला द्वारा केशों को

उपहार स्वरूप देने की बात सोच कर सुलक्षणा भयभीत हो जाती है कि कहीं इस बहाने से उर्मिला अपने बाल ही नहीं नोच डाले। अतः वह उर्मिला को पकड़ लेती है। इस पर उर्मिला कहती है।) यह सखी तो व्यर्थ ही मुझे कोंच रही है। मैं भला उपहार देने के बहाने से अपने बाल कहाँ नोच रही हूँ ? यह उपहार तो प्रेम का बन्धन है, इसमे भला भयभीत होने की क्या बात है ? हे शुक्तिमयी सरिते तू अपनी सीपियो मे मेरे आँसुओं को मोतियो के समान पाल और धरोहर के रूप में इन्हें सभाल कर रख। यदि मैं जीवित नहीं रहूँ तो भी कोई बात नहीं, मेरी ओर से अश्रु मुक्ता ही यहाँ प्रियतम की भेंट बनें। अथवा मेरे नेत्रो का जो खारा जल है उसे ही स्वीकार कर, क्योंकि तुझे खारा गम्भीर समुद्र ही प्रिय है। इसलिए मेरे इन क्षुद्र नेत्र बिन्दु आँसूओं को ले ले। ये ही कभी बढ़कर समुद्र के समान बन जायेंगे। दूसरों की भलाई करना ही जिन्हें प्रिय हैं वे बादल कभी उनका पान कर जल बरसाएगे। इस प्रकार ससार का उपकार करते हुए धन्य बनेंगे। अथवा पराग युक्त कमल के समान धूल से भरे प्रिय के चरण जहाँ पड़ेगे, ये आँसू की बूदे गिर कर सौभाग्यशालिनी बनेगी। इस प्रकार इनके दिन भी फिर जायेंगे। अपने इन आँसुओ से प्रिय के चरणो की धूल को मै समेट लूँ अर्थात् अपने नेत्र जल से अपने प्रिय के चरणों को धो सकूँ। और तुझे आँसुओं के फूल भेंट में प्रदान करूँ। तू अपने ध्रुव के समान धीर और गम्भीर वीर समूह (राम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) का सदैव यश-गान कर।

टप टप गिरते .... साँस आती। (पृ० ३८७)

शब्दार्थ—निम्नगा=नदी अर्थात् सरयू नदी। शून्य=आकाश।

भावार्थ—उस रात्रिकाल में उर्मिला के आसू टपटप करके नीचे गिर रहे थे। उधर तुच्छ तारे चारों दिशाओं मे टूट टूट कर झड़ रहे थे। नीचे बहने वाली सरयू नदी लहरो के रूप मे हाथ पटक पटक कर जैसे अपनी छाती धुन रही थी। सन सन करती हुई वायु के रूप मे आकाश जैसे दुख भरी साँस ले रहा था। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति उर्मिला के दुख से दुखी थी।

सखी ने अ क   रो रही। (पृ० ३८७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—सखी सुलक्षणा ने उर्मिला को अपनी गोद में खींच लिया। वह दुःखिनी गोद में पड़कर सो गई। उर्मिला स्वप्न में हँस रही थी और सखी उसकी यह अवस्था देखकर रो रही थी।

एकादश सर्ग

जयति कपिध्वज दर्शन, इतिहास। (पृ० ३८८)

शब्दार्थ—कपि ध्वज=महा भारत युद्ध में अर्जुन के रथ की ध्वजा पर हनुमान जी का चिन्ह था। इसीलिए अर्जुन को कपि ध्वज कहा जाता है। कपिध्वज के कृपालु कवि = व्यासदेव जी, क्योंकि व्यास जी ने कौरव पाण्डव युद्ध का वर्णन महाभारत काव्य के रूप में लिखा। विधाता=निर्माता। गिराश्रित=वाणी के आश्रित।

भावार्थ—महाभारत काव्य के रचयिता कपि ध्वज के कृपालु, कवि व्यासदेव जी की जय हो जो वेद और पुराणों के निर्माता हैं, तथा धर्म नीति दर्शन, और इतिहास चिर शाश्वत रूप में जिनकी वाणी के आधीन हैं।

विशेष—इस सर्ग में युद्ध वर्णन की प्रधानता होने के कारण महाभारत के रचयिता व्यासदेव जी की स्तुति की गई है। कपि ध्वज मे कपि द्वारा उन हनुमान जी की ओर भी सकेत है जो प्रस्तुत सर्गमें भरत आदि को राम लक्ष्मण का वृत्तात सुनाते हैं। पहले चरण मे अनुप्रास है।

वरसें वीत गईं एक प्रभात। (पृ० ३८८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—अनेक वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु सूर्य वश के सूर्य श्री रामचद्र जी की अनुपस्थिति मे साकेत नगरी मे अबतक रात्रि काल ही है। फिर भी रात्रिकाल चाहे जितना वड़ा हो, अन्त में प्रभात होगा ही।

ग्रास हुआ खिलाती है। (पृ० ३८६)

शब्दार्थ—विकच = खिला हुआ। विटपी = वृक्ष। मुक्ताफल=मोतियों रूपी फल।

भावार्थ—पृथ्वी ही नहीं आकाश तक को इस अन्धकार ने निगल लिया है। कोई भी इस अन्धकार से नहीं वचा है। ये तारे मानो उसी अन्धकार के

शरीर से कच्चे पारे के समान फूट पड़े हैं। अथवा आकाश रूपी खिले हुए वृक्ष को कोमल हवा हिला रही है और अपने अचल में तारों के रूप मे मुक्ताफल भर कर स्वय भी उन्हें खा रही है तथा अन्धकार को खिला रही है

अलकार—उत्प्रेक्षा ।

सौध-पार्श्व में दाऐ-बाएँ। (पृ० ३८६)

शब्दार्थ—सौंध पार्श्व=महल के निकट । पर्णकुटी=पत्तों की कुटिया पादपीठ=चौकी ।

भावार्थ—महल के निकट ही पर्णकुटी है जिसमें कि सोने का मदि बना हुआ है। उस मन्दिर में मणियों से जटित ऐसा पादपीठ है जो न कभ पहले था और न भविष्य में बन सकेगा। मन्दिर में केवल वह पादपीठ ह है, उस पर रामचन्द्र जी की दोनों खड़ाऊ रखीं हुई हैं, जो नित्य पूजी जात हैं। दोनों पादुकाओं के दाए बाए अपने आप ही प्रकाशित होने वाले रत्न दीप रखे हुए हैं।

उटज-अजिर बिता दिए।" (पृ० ३८६–३६०)

शब्दार्थ-उटज-अजिर=कुटी का आगन । विग्रह=आकृति, शरीर। निषग तरकस। वाम पाणि=बाँए हाथ में।

भावार्थ-कुटिया के आगन में पूज्य पुजारी के रूपमें भरत उदासीन भा से बैठे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मन्दिर के देवता ही भरत के रूप में शरी धारण कर साधना में लीन से बैठे हैं। भरत को राम चाहे जब मिलें पर हमें तो भरत के रूप में अपने राम प्राप्त हो गए। राम के समान ही उनव रूप और रग है, वैसी ही जटाएं हैं। सब कुछ उनमें राम जैसी ही है। रा की भाँति ही भरत के बाए कधे पर धनुष सुशोभित है और दायी ओर तरक की अपूर्व शोभा है। उनके बाँए हाथ में प्रत्यन्चा है और दाँऐ हाथ में अपनी जटा लिए हुए हैं।

ध्यान मग्न भरत विचारने लगे "चातक को तो अपने प्रिय बादलों क प्रतीक्षा केवल आठ मास के ही लिए करनी पड़ती है। आठ मास उपरान्त उ अपना प्रिय पुन प्राप्त हो जाता है। परन्तु अपने घनश्याम रामचन्द्र जी क आशा करते करते हमने अनेक वर्षों का समय बिता दिया।

विशेष—चौमासे अर्थात वर्षा के चार महीने तो बादल रहते ही हैं। इसलिये चातक को अपने प्रिय के लिये केवल आठ महीने प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

सहसा शब्द हुआ इसका ज्ञान। (पृ० २६०)

शब्दार्थ—मॉडवी=भरत की पत्नी।

भावार्थ—इतने में ही अचानक बाहर कुछ शब्द हुआ परन्तु भरत का ध्यान भग नहीं हुआ। उनकी पत्नी मॉडवी उनके पास कब आ पहुची, इसका उन्हें बोध ही नहीं हुआ।

चार चूड़ियाँ थीं बैठा था। (पृ० २६१)

शब्दार्थ—असित=काले रग का। इन्दु=चन्द्रमा। विषाद=दुख। तपस्तेज=। जनित तेज। लौह तत=लोहे का तार।

भावार्थ—मॉडवी के हाथो मे चार चूड़ियाँ पड़ी हुई थीं और मस्तक सिन्दूर की बिन्दी लगी हुई थी। वह सुन्दरी पीले वस्त्र धारण किए हुए। काले आकाश का चन्द्रमा तो उसके मुख के सम्मुख बिल्कुल तुच्छ। फिर भी तप जन्य तेज से अभिभूत मॉडवी के मुख पर विषाद की वा उसी प्रकार झलक रही थी जैसे लोहे का तार मोती को बॉध कर उसी बैठ गया हो।

वह सोने का हिलोर। (पृ० २६१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—वह अपने हाथों मे पत्तलो से ढका सोने का थाल लिए हुए। थाल मे वह पुजारिन अपने स्वामी के भोजन के लिए कुछ फल सजा र लाई थी। मॉडवी ने तब तनिक रुककर और दॉयी ओर मुड़कर कुटिया आँगन में बैठे भरत की ओर देखा। इसके उपरात शीश झुकाकर वह ाव विहल हृदय लेकर अथवा अपने हृदय को झकझोर कर मदिर में चली ई।

हाथ बढ़ाकर कर जाती थी। (पृ० २६१–२६२)

शब्दार्थ—स्वश्रू-शुश्रूषिणी=सासो की सेवा करने वाली।

भावार्थ—मॉडवी ने हाथ आगे बढ़ाकर वह थाल पादपीठ के सम्मुख

रख दिया। फिर उसने नीचे झुककर अपना मस्तक मन्दिर के द्वार की देहली पर टेका। उसके नैत्रों से आँसू की दो चार बड़ी बड़ी बूँदें गिर पड़ीं। पाटपीठ के मणियों और रत्न दीप की किरणें उन बूँदों के स्पर्श से दुगनी चमक उठीं। माँडवी के जीवन का यही दैनिक कर्म था। वह इसी प्रकार नित्य राज भवन से आती थी और अपनी सासों की सेवा करने के उपरांत पति के दर्शन कर जाती थीं।

उठ धीरे विकला। (पृ० ३६२)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—माँडवी धीरे से उठकर प्रिय के निकट पहुँची और उन्हें प्रणाम किया। भरत चौंक उठे और तब उन्होंने सभल कर 'स्वस्ति' कहते हुए उसे उचित सम्मान प्रदान किया।

भरत के एक हाथ में धनुष की प्रत्यचा और दूसरे में जटा देखकर माँडवी बोली "आपने जटा और प्रत्यचा की तुलना से क्या निष्कर्ष निकाला है? अर्थात आप क्षत्रियोचित जीवन बिताना चाहते हैं, अथवा तपस्वी बनकर रहना चाहते हैं।" इस प्रकार हँसने का प्रयास करती हुई भी दुखी हृदया वधू माडवी रो पड़ी।

"यह विषाद भी उठते हैं।" पृ० ३६३)

शब्दार्थ—आर्ति=वेदना, दुख।

भावार्थ—रोती हुई माँडवी को सात्वना प्रदान करते हुए भरत कहने लगे "हे प्रिय हमारा यह दुख भी अत में विनोद के लिए स्मृति मात्र रह जायगा। प्रभु के आने पर इन दुख के दिनों की स्मृतियों को लेकर हम परस्पर विनोद किया करेंगे। अब अपना सौभाग्य दिवस दूर नहीं है। वह निश्चित ही आने वाला है और शीघ्र ही आ जायगा।"

उत्तर में माँडवी ने कहा "हे स्वामी यह सब होने पर भी हम सब के मन भीतर ही भीतर क्यों रो उठते हैं। किसी अव्यक्त वेदना से वे क्यो व्याकुल बन जाते हैं?

"प्रिये ठीक कहती आने से"। (पृ० ३६३–३६४)

शब्दार्थ—रकिनी=निर्धन। मनस्कल्पना=मन की कल्पना। निकेत=

भवन । शिव=मगल कारी । विरूपाक्ष=प्रलयकरकारी शिव। मस्तक पर तीसरा नैत्र होने के कारण शिव को विरूपाक्ष भी कहा गया है ।

भावार्थ—भरत ने उत्तर मे कहा 'हे प्रिये तुम्हारा कहना उचित ही है । यह आशा सदैव ही नई नई शकाओं को जन्म देने वाली है । कल्पनाओ के अनेक चित्र बनाने पर भी यह स्वय निर्धन बनी रहती है ।आश्चर्य है, इतनी लम्बी अवधि भी अब समाप्त होने पर आ गई है । अब कोई नया विघ्न उपस्थित न हो जाय, मेरे हृदय में यही भय पूर्ण चिन्ता छाई हुई है । सुनो नित्य ही मानव मन की कल्पनाएँ नए भवन बनाती हैं । किन्तु यह चचल आशा पल भर के लिए भी उस में नहीं टिक पाती । इसमें सदेह नहीं कि सत्य सदैव मगल कारी होता है, परन्तु कभी कभी वह विरूपाक्ष रूप होकर अमंगलकारी भी होता है । अर्थात् वास्तविक जीवन में जहाँ मङ्गल भी है वहाँ अमङ्गल भी है, सुन्दर है वहाँ असुन्दर भी है । परन्तु मानव मन की कल्पनाए सदैव सुन्दरता के लिए होती हैं । वे जीवन के मधुर और सुन्दर चित्र ही बनाया करती हैं ।यथार्थ से वे दूर ही रहती हैं । फिर भी अपने स्वामी रामचन्द्र जी के ऊपर मुझे पूर्ण विश्वास है । आर्य कहीं भी हो, परन्तु उनके दिए हुए वचन मेरे पास हैं । भरत को कौन अपने प्रभु को पाने से रोक सकेगा ? अयोध्या लौटने मे प्रभु रामचन्द्र जी के मार्ग मे कोन विघ्न बनेगा ?"

"नाथ यही कह पास वहाँ ।" (पृ० ३६४–३६५)

शब्दार्थ—वरुनी = पलकों के बाल । वरुणालय=जल भडार । नैवेद्य= पूजा का सामान ।

भावार्थ—मॉडवी ने कहा "हे स्वामी यही आशा दिलाकर मै माताओ को किसी भाँति कुछ भोजन करा सकी हूॅ । परन्तु उर्मिला बहिन को तो मै आज जल भी नहीं पिला सकी । "वे लोग (राम, लक्ष्मण, सीता) कहाँ और कैसे होंगे, वन के काँटे उन्हें पीड़ा पहुंचाते होंगे यह कहकर माताएँ धैर्य खोती हुई रोने लगती हैं । परन्तु उर्मिला की आँखो मे तो निरन्तर बहने वाले आँसू भी सूख गए हैं । वरुनी के वरुणालय अर्थात जल से प्लावित रहने वाली बरौनियाँ आज उसके केशों से भी अधिक शुष्क हैं । उनके मुह की ओर देखकर

भोजन आदि का अनुरोध करने में भी सकोच होता है। कहना तो क्या उनके मुख से कुछ सुना भी नहीं जाता। मेरे अत्यन्त आग्रह करने पर बड़े ही दीन भाव से बहिन उर्मिला ने कहा था "बहिन एक दिन निराहार रहना कोई बड़ी बात नहीं है। बरसो तक निराहार रहकर अर्थात् पति का दर्शन पाए बिना भी ये आँखें मर न गईं जीवित बनी रहीं, जब एक दिन भोजन न करने पर भला इस शरीर का क्या बिगड़ जायगा ?" तब मैं विवश होकर रोती हुई लौट आई और यहाँ यह नैवेद्य लेकर चली आई। "मै अभी आता हूँ यह कहते हुए देवर शत्रुघ्न भी उनके पास चले गए।"

सनिःश्वास तब कहा ... फट जाती।" (पृ० ३६५-३६६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—भरत ने तब निःश्वास भरते हुए कहा "तब फिर आज मैं भी उपवास करूँगा"। "परन्तु यह तो प्रभु का प्रसाद है।" यह कहकर माडवी और भी अधिक उदास हो गई। भरत ने कहा "प्रभु के इस प्रसाद को भी मैं सबके साथ ही ग्रहण करूँगा। रात यदि व्यतीत हो रही है तो बीत जावे। हाय यह सब उपद्रव केवल मेरे ही कारण हुआ है। यदि एक मैं ही नहीं होता तो क्या इस असख्य मानव समुदाय वाले लोक में कुछ कमी हो जाती। यदि यह सब देखकर मेरा हृदय नहीं फटा तो यह धरती ही फट जाती जिससे कि मैं उसमें समा जाता।"

"हाय ! नाथ धरती ... मै आदर्श। (पृ० ३६६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—माडवी भरत से कहने लगी "हाय स्वामी, यदि यह धरती फट जाती तो सचमुच कितना सुन्दर होता। हम दोनोंही उसमें समा जाते। उसके किसी मूल में रहकर हम दोनों कितना आनन्द प्राप्त करते। न तो हमें कोई देख ही पाता और न कोई हमसे ईर्ष्या भाव ही रखता। न हम किसी को दुखी देखते और न स्वय दुखी होकर हम अपनी आँखों में आँसू लाते। पाताल के उस अन्धकार में यद्यपि हम एक दूसरे को नहीं देख पाते, फिर भी एक दूसरे के शरीर का स्पर्श तो करते। मैं तो अपने दाम्पत्य भाव का यही आदर्श मान लेती। दाम्पत्य जीवन के इसी रूप से सर्वथा सन्तुष्ट हो जाती।

कौन जानता .... यह साकेत। (पृ० ३६७)

शब्दार्थ—आकर = खजाना, कोष। महार्ह = महत्तर, श्रेष्ठ। तत्त्व = रहस्य। निकेत=घर।

भावार्थ—"यदि हम धरती के मूल में होते तो यह कौन जानता कि किस कोष में हमारे हृदय रूपी दो रत्न पड़े हुए हैं? फिर भी उनको प्राप्त करने की आशा में लोग प्रयत्न किया ही करते हैं। इसी प्रकार के असंख्य प्रयत्नों से ससार ने तुमको प्राप्त किया है। इस संसार को भले ही तुम न चाहो पर तुम्हारे प्रति उसमें अत्यन्त ममता-मोह है। हे स्वामी यदि तुम न ते तो इस व्रत का पालन कौन करता, तुम्हीं बतलाओ। तुम्हारे अतिरिक्त न इस ससार को राज्य से भी अधिक श्रेष्ठ धन प्रदान करता। मनुष्यत्व के स्तविक रहस्य को किसने भलीभाँति पहिचाना है, तुम्हारे सिवाय किसने ख-समृद्धि को छोड़कर दुखों से संघर्ष किया है? मैदानों के घर बनते हैं और फर वे ही घर नष्ट होकर मैदान हो जाते हैं। ये घर भले ही नश्वर हो परंतु हारा यह साकेत सदैव अमर रहेगा।

मेरे नाथ, जहाँ .... हुए खला।" (पृ० ३६८--३६६)

शब्दार्थ—अबुध = अपरिचित। दनुज=दानव, राक्षस। हलाहल=विष। निष्ठा=श्रद्धा, विश्वास।

भावार्थ—"हे स्वामी, तुम धरती के ऊपर, नीचे चाहे जहाँ होते, यह तुम्हारी दासी तुम्हारे साथ वहीं सुख प्राप्त करती परन्तु इतना अवश्य है कि तुम्हारे इस ससार में न होने पर विश्व का यह भ्रातृ-भावना का आदर्श निराश्रित होकर विलाप करता। अर्थात् तुम्हारे न होने पर यह ससार भ्रातृत्व के महान आदर्श से वञ्चित ही रहता। हे प्रियतम, यह संसार ऐसे उन्नत और उच्च भावों से अपरिचित ही बना रहता जिनके प्रस्ताव मात्र से इस संसार का घर-घर स्वर्ग बन सकता है। जीवन में सुख और दुख तो सदैव लगे ही रहते हैं। सुखों का भोग तो सभी सहज भाव से कर लेते हैं परन्तु दुख को धीर पुरुष ही सहन करते हैं। मानव-समुदाय दुग्ध पान कर जीता है, दानवगण रक्त पान कर और देवतागण अमृत पीकर परन्तु इस ससार सागर के दुख रूपी विष को तो मंगलमूर्त्ति शंकर ही पीते हैं। हम सब अपने इस धर्म की

नई प्रतिष्ठा से जो गौरवशाली हुए हैं, कितने कुल ऐसे आदर्श के निर्वाह में भलीभाँति उत्तीर्ण होंगे ? ऐतिहासिक घटनाएँ हमें जो शिक्षाएँ प्रदान कर जाती हैं उन्हीं की परीक्षा लेने के लिए वे स्वय ही बारबार अपने को दुहराती हैं। अब ये दुख के दिन भी व्यतीत होने को हैं, फिर यह पश्चाताप कितने दिन के लिए कर रहे हो। मैं सच कह रही हूँ, अवधि समाप्त होने का यह प्रसग जाते हुए भी मुझे अच्छा नहीं लग रहा।

"प्रिये सभी   को दोष"। (पृ० ३९९ ४००)

शब्दार्थ—भूरि भाग्य=विधाता। कृती=पुण्य कार्य करने वाले। उर्वरा= उपजाऊ। द्रुतलय=सगीत की तीव्र ध्वनि। पुरज = मृदग। भृत्यों = सेवकों। स्वदैव=अपना भाग्य।

भावार्थ—माडवी के कथन के उत्तर में भरत ने कहा "हे प्रिये मैं सभी कुछ सहन कर सकता हूँ परन्तु तुम सबका दुख मेरे लिए असह्य है।"

माडवी बोली—परन्तु हे स्वामी क्या इस दुख को हमने स्वेच्छापूर्वक नहीं अपनाया ? विधाता ने जो एक भूल की उसे इस प्रकार हमने सुधार लिया है। अतः यह दुख की ज्वाला हमें जला तो रही है परन्तु दूसरों के लिए प्रकाश भी फैला रही है। हमारा यह कार्य दूसरों के लिए आदर्श बन गया है। ससार में अनेक पुण्यात्मा हुए हैं, परन्तु इतना गौरव भला किसने प्राप्त किया है। मेरा तो कहना है कि हमारे सौभाग्य ने ही यह दुख हमें प्रदान किया है। दुखपूर्ण बातों में ही तो कुछ तत्त्व निहित रहता है। ग्रीष्म के भयङ्कर ताप में ही तपकर यह पृथ्वी वर्षा के जल से उपजाऊ बनती है।

इतना कहते-कहते माडवी को शत्रुघ्न के घोड़े की टाप सुनाई दी। उसी ओर भरत का ध्यान आकृष्ट करती हुई माडवी बोली 'लो देवर शत्रुघ्न भी आ गए। ये आवाज उन्हीं के घोड़ों की टापों की है। पक्के मार्ग पर तेजी से दौड़ते हुए घोड़ों की टापें उसी प्रकार पड़ रही हैं जैसे तीव्र लय में मृदग पर हथेली की थाप पड़ती है। यदि राजनीति मेरी उपस्थिति में बाधक न बने तो मैं यहाँ कुछ देर के लिए और रुकूँ।" इस पर भरत ने कहा "वैसे तो कोई बात नहीं, परन्तु तुम्हारे यहाँ होने पर सेवकों को अधिक कष्ट होगा।" माडवी ने उत्तर दिया "हे स्वामी, उन सेवकों को हमारे सुख से बढ़कर और क्या

सन्तोष हो सकता है। हमारे दुखों के लिए भी वे अपने भाग्य को दोष देते हैं।

आकर-' लघु संतोष किया। (पृ० ४०१)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—इतने में प्रतिहारी ने आकर प्रणाम करते हुए कहा "छोटे कुमार आते हैं।" "आवें।" भरत ने शीघ्र ही कहा। तब धनुर्धारी शत्रुघ्न ने प्रवेश किया। उस वीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग कृश होकर भी अत्यन्त दृढ़ और बलवान थे, जैसे वे किसी शान पर चढ़े हुए हों। उनके सरल मुख पर विनय और तेज दोनों ने मिलकर अपने को और भी अधिक बढ़ा लिया था। उनके कन्धों से लटकर उत्तरीय उनके दोनों ओर इस प्रकार फहर रहा था मानो उनके शरीर में से दो पख निकल आए हों। स्फूर्त्ति की मूर्त्ति वे शत्रुघ्न इन पखों की सहायता से उड़कर अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकते थे। उन्होंने आकर भरत और माडवी को प्रणाम किया और दोनों ने ही तब उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया। उनके मुख के भाव देखकर दोनों को सुख और सन्तोष हुआ।

"कोई तापस नंदि ग्राम। (पृ० ४०१--४०२)

शब्दार्थ—बड़भागी=श्रेष्ठ भाग्य वाले।

भावार्थ—शत्रुघ्न को सम्बोधित करती हुई माडवी ने कहा "कोई (राम) तपस्वी है, कोई भाई (लक्ष्मण) त्यागी बना हुआ है और किसी ने (भरत) वैराग्य ही धारण कर लिया है। परन्तु घर की सार-सँभाल रखने वाले तो मेरे सौभाग्यशाली देवर शत्रुघ्न हैं।" इस पर तीनों ही क्षणभर के लिए मुस्करा उठे और उन्होने श्रेष्ठ परिहास पूर्ण सुख प्राप्त किया। उस समय नन्दिग्राम अपने में चित्रकूट का सा अनुभव कर रहा था। (भरत, माडवी और शत्रुघ्न क्रमशः राम, सीता और लक्ष्मण के ही प्रतिरूप हैं। जिस प्रकार चित्रकूट में सीता, देवर लक्ष्मण के प्रति मधुर विनोद से अपना ममत्व प्रदर्शित करती हैं वैसी ही बात माडवी ने शत्रुघ्न से कही है। इसीलिए भरत का निवासस्थान भी वनवासी राम के चित्रकूट के समान ही बन गया है)।

बोले तब शंकित करते हैं। (४०२-४०३)

शब्दार्थ—आकृतिमात्र=शरीर का ढाँचा मात्र। पुनरुन्मेद=पुनः विकास

होना। अनुभूत विभाग=अनुभवों का विभाग। विभूति=सम्पदा। वृत्तों=छन्दों। ऐन्द्रजालिक=जादूगर।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने तब भरत से इस प्रकार कहा 'आर्य नगर में सभी प्रकार से सुख और शान्ति है। सब के हृदय में प्रभु के स्वागत सत्कार करने की उत्कण्ठा छाई हुई है। प्रभु के वन-गमन पर अपने अतुलनीय प्रदेश का वेदना के कारण जो ढाँचा मात्र शेष रह गया था, अब प्रभु आगमन का समय आया जान उसमें अब नूतन और भव्य रंगों का पुनः विकास होता जा रहा है। नए जीवन के चिह्न उसमें प्रगट हो रहे हैं। आपने अनुभूतियों के जिस विभाग की स्थापना नगर में की थी वह अब नया ऐश्वर्य पाकर अभिवृद्धि को प्राप्त हो रहा हैं। लेखक गण सभी स्थानों पर जा-जाकर जन-समुदाय के अनुभवों को लिख रहे हैं। विद्वान और वैज्ञानिक जन नित्य नये सत्यों का अनु-सधान कर रहे हैं जिनसे सर्व-साधारण लोग अपना ज्ञान बढ़ा रहे हैं। विद्वान कवि नित्य नये छन्दों में नूतन गीत रचकर लाते हैं और गायक लोग उन उन गीतों की नई रागें और नई तालें बनाते हैं। शिल्पकार नए साज-बाजे का निर्माण कर रहे हैं। सचमुच प्रतिभावान व्यक्ति अब अपनी प्रतिभा का उप-योग तुच्छ बातों के लिए न करके गम्भीर रहस्यों के सुलझाने में कर रहे हैं। नाट्य-मण्डलियों के व्यवस्थापक सूत्रधार अब नए-नए नाटकों की साज-सज्जा दिखलाते हैं और जादूगर भी अपने नित्य नए कौतुक भरे खेल रचते हैं। चित्रकार अपने चित्रों में नए-नए दृश्यों को इस प्रकार चित्रित करते हैं कि वे हृदय को आनन्द देने से पूर्व ही मन में यह शका उत्पन्न कर देते हैं कि कदाचित ये चित्र न होकर वास्तविक दृश्य ही हैं।

कहा माडवी ने निर्जीव कला।" (पृ० ४०४)

शब्दार्थ—चित्रस्थ=चित्र में अङ्कित।

भावार्थ—माडवी ने कहा "उल्लू जैसा कुरूप पक्षी भी चित्र में अङ्कित होकर सुन्दर लगता है। सचमुच कला सुन्दर को प्राणवान बनाती है और असुन्दरता को नष्ट करती है।"

"वैद्य नवीन वनस्पतियों गोत्र श-विकास"। (पृ० ४०४–४०५)

शब्दार्थ—नवयोग=नए रासायनिक मिश्रण। गन्धस्पर्श=सूँघने और

स्पर्श करने से। सौगन्धिक=गन्धीजन। शाल=शाल वृक्ष। दल=पत्ते। विश्व-विटपी=संसार रूपी वृक्ष। विटप=शाखाएँ। तन्तुवाय=वस्त्र बुनने वाले। पट-परिधान=वस्त्र। स्वर्णकार=सुनार। महानल=प्रलय की अग्नि। उपल=पत्थर। उत्पल=कमल। दारु = लकड़ी। वसुधा-विज्ञों = भूगर्भ वेत्ताओं। राजघोष = राजकीय गोशाला।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने कहा—वैद्यगण नवीन जड़ी-बूटियों से ऐसे रासायनिक योग बना रहे हैं जिनके सूँघने और स्पर्श मात्र से ही शरीर के भाँति-भाँति के रोग मिट जाते हैं। गन्धी लोग प्रभु के लिए इत्र-तेल आदि नई-नई सुगन्धियाँ निकाल रहे हैं। उद्यानों में मालीजन नए-नए पौधे लगा रहे हैं। जिस प्रकार एक विशाल शाल वृक्ष में विभिन्न प्रकार के पत्ते, फूल और फल होते हैं उसी प्रकार इस विचित्र संसार रूपी वृक्ष में असंख्य शाखाएँ होने पर भी उनका मूल एक ही होता है।

वस्त्र बुनने वाले नए नए अनेक प्रकार के वस्त्र तैयार कर रहे हैं। वे वस्त्र धारण करने में फूलों की पखुड़ियों के समान कोमल हैं, और फैलाने में फूलों की गंध के समान सूक्ष्म हैं। अर्थात् जिस प्रकार फूलों की सुगंध का अनुभव किया जा सकता है, देखने में वह नहीं आती, उसी प्रकार ये वस्त्र भी इतने महीन हैं कि स्पर्श मात्र से उनका अनुभव होता है। देखने में गंध के समान अदृश्य जान पड़ते हैं। सुनार लोग मणियों और सोने के योग से अनेक प्रकार के आभूषण बना रहे हैं। सचमुच सभी लोग बड़े उत्साह पूर्वक अनोखे और अद्भुत कार्यों के करने में लगे हुए हैं। विभिन्न वस्तुओं के रूप में ढलने के लिए धातुएं बड़ी-बड़ी भट्टियों की आग में ऐसी पिघलाई जा रही हैं मानो वे प्रलय की अग्नि में जल रही हैं। उधर शिल्पकार लोग अपनी टाँकियों के कौशल से कठोर पत्थरों को भी कोमल कमल के समान बना रहे हैं। अर्थात पत्थर अब वास्तविक कमल के समान प्रतीत होते हैं। नीरस और शुष्क लकड़ियों को फूल पत्तियों के बेल बूटे से पुनः सजीव बना दिया गया है। यह कहना कठिन है कि यह कारीगरों की कार्य कुशलता है अथवा स्वयं लकड़ी की पूर्व स्मृतियां जागृत हो गई हैं। अर्थात् इन फूल पत्तियों के रूप में उनकी

वह याद हरी भरी होगई हो जब कि वे पत्र पुष्पों से लदी हुई थीं। भूगर्भ वेत्ताओं ने कितनी ही नई नई खानें खोज निकाली हैं। फिर भी न जाने कितने रत्न अज्ञात अवस्था में धूल मे छिपे पड़े होंगे। परिश्रमी कृषक खेती के रूप में अपने बीजों के विकास का जीवित इतिहास रखते हैं। राजकीय गौशाला में आज मैंने गोवश की अभिवृद्धि के लिए नए नए प्रयोगों को देखा।

विभु की बाट जोहते सैनिकजन सिद्ध।" (पृ० ४०६)

शब्दार्थ—ऊर्जस्वल=बलवान, तेजवान। सुभट=योद्धागण।

भावार्थ—सभी लोग भेंट के लिए उपहार लेकर प्रभु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे भेट में दी जाने वाली अपनी कृतियों और बनाई हुई वस्तुओं को नए नए अलङ्कारों और सुन्दर उपकरणों से सजा रहे हैं। बलवान पुरुष नित्य नए दाव पेचों का अभ्यास करते हुए अपनी शक्ति को बढ़ा रहे हैं। विकट योद्धा गण साहस पूर्ण खेल रच रहे हैं जिन्हें देखकर हृदय में भय विस्मय के भावों का उदय होता है। सैनिक जन विविध प्रकार का युद्ध कौशल दिखलाते हुए नए नए शस्त्रों से नवीन लक्ष्यों को बींध रहे हैं।

कहा माँडवी ने चिर गर्व।" (पृ० ४०६)

शब्दार्थ—व्रण=घाव।

भावार्थ—शत्रुघ्न की बात सुनकर माँडवी ने कहा "इस ससार में वैसे ही वास्तविक झगड़े क्या कम होते हैं? हाय फिर भी हम उन झगड़ों से सन्तुष्ट न होकर नए नए प्रकार के झगड़ों की कल्पना में लगे हैं।" माँडवी के कथन के उत्तर में भरत ने कहा "हे प्रिये, युद्धों की इस कल्पना का सारा श्रम तुम्हारी ही सेवा का सुख पाने के लिए किया जाता है। पुरुष इसीलिए युद्ध में आहत होने की कामना करते हैं कि उन्हें नारी जाति की सेवा शुश्रुषा प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। इसीलिए तो वीरों के घावों को सदैव ही वधुओं की स्नेह दृष्टि का गर्व रहा है।

"हाय! हमारे यहाँ अराति।" (पृ० ४०७)

शब्दार्थ—अराति=शत्रु।

भावार्थ—माडवी ने कहा—हाय नारी जाति के रोने का भी पुरुष

इतना मूल्य आँकते हैं।" भरत ने उत्तर दिया "हाँ, प्रिये, वे उनके हँसने का मूल्य नहीं जान पाते।" माँडवी ने पुनः कहा "किन्तु स्वामी मुझे तो अपनी यह नारी जाति कलह की मूर्त्ति जान पड़ती है। क्योंकि नारियाँ आत्मीयजनों को भी आपस में शत्रु बना देती हैं।

"आर्ये तब क्या अधिक समृद्ध"। (पृ० ४०७-४०८)

शब्दार्थ—यवनिका = पर्दा।

भावार्थ—माडवी की बात सुनकर शत्रुघ्न ने कहा "हे आर्ये, नारी जाति पर दोषारोपण करते हुए तुम यह क्या कह रही हो? क्या यहाँ नारी जाति के रूप में माताओं का होना उचित नहीं है। यदि यहाँ माताएँ नहीं होती संसार मे अब जो कुछ भी है, वह कहाँ से होता? वस्तुतः प्रजाजनों के घरों में तनिक भी कलह नहीं है। सब सुखी सतुष्ट और शात हैं। उनके लिए तो सदा ही देव तुल्य हमारे राजकुल का उदाहरण आदर्श बन गया है। सभी नागरिक जन धन धान्य की वृद्धि से तृप्त और विविध कला कौशलो की सिद्धि से स्वाभाविक रूप से प्रसन्न हैं। इस प्रकार हमारे राज्य का प्रत्येक ग्राम मानो एक स्वतन्त्र और सम्पन्न राज्य बन गया है। राजाओं के जो समूह हमारी अविचल शक्ति देखकर हम से मित्रता बनाए रखने के लिए विवश होगए थे वे अब हमारी प्रगति और समृद्धि को देखकर हमारे कार्य को अपनी साधना का लक्ष्य मानते हैं। हम उनके लिए आदर्श रूप बन गए हैं। इस प्रकार उनके हृदय में हमारे प्रति मित्रता के ही भाव क्या भक्ति के भाव उत्पन्न हो गये हैं। हे आर्य, राम बन गमन की अवधि का पर्दा उठने पर अर्थात् अवधि का समय समाप्त होने पर तो नगर के सभी वृद्ध जन देखेंगे कि आप प्रभु को पहिले से भी अधिक समृद्ध राज्य सौंपेंगे।

"सेंत-मेंत के सब दोष।" (पृ० ४०८)

शब्दार्थ—सेंतमेंत=बिना किसी मूल्य के। भर्त्ता=पति।

भावार्थ—अयोध्या की समस्त समृद्धि का श्रेय जब शत्रुघ्न भरत को ही देते हैं तब भरत कहते हैं "हे प्रिये तुम्हारा यह पति तो बिना कुछ किए व्यर्थ ही मे यश का पात्र बना हुआ है। तुम्हारे देवर शत्रुघ्न सारा कार्य स्वयं करके भी मुझे उसका करने वाला बना रहे हैं।"

माडवी ने उत्तर में कहा "हे स्वामी, इस घर में ऐसी बात देखकर ही मुझे सतोष होता है। यहाँ परिवार के सभी सदस्य अपना यश तो दूसरों को प्रदान करते हैं, और दोष अपने सिर पर ले लेते हैं।"

"आर्य, तराई से   बना लेंगे"। (पृ० ४०६)

शब्दार्थ—शोभन=शोभासम्पन्न। गिरिराज=हिमालय पर्वत। निषादी=महावत।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने कहा "हे आर्य तराई के क्षेत्र से आज एक शोभा-सम्पन्न श्वेत गज आया है। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों स्वय हिमालय पर्वत ही प्रभु के स्वागत के लिए गज के रूप में उपस्थित हुआ है। यद्यपि गज स्वभावतः ही सुन्दर गति वाला है परन्तु महावत लोग उसे और भी शिक्षा प्रदान करेंगे। प्रभु के आने तक वे उसको सभी प्रकार से उत्सव के योग्य बना लेंगे।

"अनुज, सुनाते   विभा विकास"। (पृ० ४०६–४१०)

शब्दार्थ—मृत्यु जय = मृत्यु को भी जीत लेने वाले शिव। क्षत-विक्षत= घायल।

भावार्थ—शत्रुघ्न के गज के आने की बात सुनकर भरत ने कहा "हे भाई मुझे इसी प्रकार तुम सदैव शुभ सवाद सुनाते रहो। सुनो, हिमालय पर्वत से हमें श्वेत गज के अतिरिक्त कुछ और भी नया प्रसाद प्राप्त हुआ है। मानसरोवर से सध्या समय एक योगी पधारे थे। उनका यह आगमन निश्चय ही हम पर मृत्यु जय शिव की कृपा का फल होगा। वे मुझे सजीवनी नाम की औषधि प्रदान कर गए हैं। घायल व्यक्ति को पुनः जीवन प्रदान करना तो यह इस सजीवनी बूटी का नितान्त सहज कार्य है। मैंने उसे इन चरण पादुकाओ के निकट ही प्रतिष्ठित कर दिया है। प्रकाश फैलाती हुई उसी औषधि की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है।

"आर्य सभी   सुगम किया। (पृ० ४१०)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने कहा "आर्य, वैसे तो सभी शुभ लक्षण दिखलाई दे रहे हैं, परन्तु मन में न जाने क्या कुछ खटक रहा है। न जाने कैसे अशुभ

भाव हृदय से निकल कर कॉटे की तरह उसमें अटक रहे हैं। सब प्रकार के शुभ लक्षण होने पर भी हृदय किसी अज्ञात आशङ्का से व्याकुल बन रहा है। जल और स्थल के मार्ग द्वारा विविध नगरो के व्यवसायी दूर दूर से अपने प्रभु के लिए प्रेम पूर्वक भेट लाते हैं और फिर अपने अपने घरों को लौट जाते हैं। आज एक ऐसे ही व्यवसायी जन ने मुझे यह सन्देश दिया है कि प्रभु ने दक्षिण के दुर्गम मार्ग को अब सब के लिए सहज सुगम बना दिया है।

शांत, सदय समूह निहार। (पृ० ४११)

शब्दार्थ—त्राण=रक्षा। अस्थि समूह=हड्डियों का समूह।

भावार्थ—दक्षिण प्रदेश में शात और दयालु मुनियो को दुष्ट राक्षस ताया करते थे। वे मुनियों के धार्मिक कार्यों में बिघ्न तो डालते ही थे, उन्हें ार कर खा भी जाते थे। (यह सुनकर मॉडवी कॉप उठी।) माडवी को म्बोधित करते हुए शत्रुघ्न बोले "आर्ये तुम यह सुनकर कॉप उठी। परन्तु अब प्रभु के द्वारा उन सब मुनियो की रक्षा होगई है। प्राण वास्तव में प्राण ेकर रहते हैं या लेकर। अर्थात् कुछ तो दूसरो के प्राण हरण करने में अपने ाण लगा देते हैं अन्य दूसरो की रक्षा मे अपने प्राणों को अर्पित करते हैं। कुछ ऋषि मुनियों ने प्रभु की शरण में आकर अपनी समस्त कष्ट गाथा सुनाई। तब भय को दूर करने वाले प्रभु दया से द्रवित होगए और उन्होंने इस परोपकार के रूप में अपना बन आना सर्वथा सफल समझा। ऋषि अत्रि और ऋषि पत्नी अनसूया ने प्रभु को आशीर्वाद प्रदान किया। आर्या सीता जी को दिव्य वस्त्र और आभूषण प्रदान कर पुत्री के समान विदा किया। प्रभु ने तब दडक बन की ओर प्रस्थान कर धर्म की रक्षा का भार अपने कधो पर लिया। राक्षसों के हाथों मृत्यु को प्राप्त मुनियो के अस्थि समूह को देख कर प्रभु रामचन्द्रजी रो उठे। अपने नेत्रों के जल से उन्होने उनका तर्पण किया।

बाधक हुआ विराध विमोहित्त-सी।" (पृ० ४१२)

शब्दार्थ—विराध = राक्षस विशेष। शर भंग, सुतीक्ष्ण = मुनि विशेष। कौशिक=विश्वामित्र ऋषि। लोहित=लाल।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्र जी के मार्ग में विराध नामक राक्षस ने बाधा

रामचन्द्रजी में प्रगट हुई। सब कॉटे निकल जाने पर पीड़ा का स्वत ही अन्त होगया। दस्युराज्य खरदूषण के इस प्रकार नष्ट होने पर मुनियों ने जय जय कार किया। आर्य सभ्यता और सस्कृति की स्थापना हुई और आर्य धर्म को सात्वना मिली। अब जप, समाधि, यज्ञ, पूजा, पाठ आदि सभी धार्मिक कार्य निर्विघ्न रूप से शॉति पूर्वक होते हैं। मुनि कन्याएँ व्रत और पर्वों के उत्सवों का आयोजन करती हुई प्रभु रामचन्द्रजी का यश-गान करती हैं।

"धन्य" भरत बोले जिसकी लङ्का।" (पृ० ४१५)

शब्दार्थ—विकृति=विकार। वैगुण्य=गुण रहितता। विश्रुत = सर्वत्र प्रसिद्ध।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्रजी की यह यश गाथा सुनकर भरत भाव विभोर हो उठे और उन्होंने गद् गद् कठ से कहा "प्रभु धन्य हैं। उनके हाथो इस प्रकार ससार के विकार और दोष नष्ट हुए। आज मेरी तपस्विनी माँ कैकेयी का पाप भी पुण्य बन गया। तथापि राक्षसो के विरोध की एक नई शङ्का का भाव मेरे हृदय में उदय हुआ है। क्योंकि सोने की लङ्का का स्वामी रावण जो अपने बल छल के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है अवश्य ही इसका विरोध करेगा।

"नाथ, बली हो कब छोड़ा। (पृ० ४१५-४१६)

शब्दार्थ—गजभुक्त कपित्थ तुल्य=हाथी द्वारा खाए गए कैथ के फल के समान। अधमेन्धन=नीच ईधन।

भावार्थ—भरत के हृदय के शङ्का भाव को सुनकर मॉडवी ने कहा "हे स्वामी चाहे कोई कितना ही बलवान हो, यदि उसके हृदय में पाप है तो उसका समस्त बल हाथी द्वारा खाए गए कैथ के फल के समान ही निष्फल और व्यर्थ है।"

मॉडवी का तर्क सुनकर भरत ने कहा "प्रिये तुम्हारा यह कथन सर्वथा उचित ही है, परन्तु हमें भी अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहना चाहिए। नीच ईधन जलते-जलते भी अपने अगार छिटका ही जाता है। उसी प्रकार दुष्ट जन नष्ट होते होते भी दूसरों को पीड़ा पहुँचा ही जाते हैं। मरे हुए शत्रु को हटाने की व्यवस्था भी हमें ही करनी पड़ती है जिससे कि उसका

शव सड़ कर कहीं दुर्गन्ध न फैलावे। पुण्य के संचय से भी अधिक पाप का अंत करना उसी प्रकार दुष्कर है जैसे फूलों के चयन से अधिक कॉटों से बचना कठिन कार्य होता है। और फिर जब तक पापी जन के पूर्व जन्म के पुण्यों का विनाश नहीं हो जाता तब तक उसका अन्त भी तो नहीं किया जा सकता। वह अजेय ही बना रहता है। मुझे तो आज सबसे अधिक भय और चिन्ता सरल हृदय वाली अबला आर्या सीताजी के लिए ही है।

इतना कहते कहते भरत को आकाश में एक विचित्र प्राणी उड़ता हुआ दिखलाई पड़ा। भरत ने चौंककर मॉडवी और शत्रुघ्न से कहा—वह देखो आकाश में कोई मायावी राक्षस जा रहा है। तब वीर शिरोमणि भरत ने उधर तीर चलाया। उन्होंने तीर इतनी शीघ्रता से छोड़ा कि यह ज्ञात ही नहीं होने पाया कि कब तीर धनुष पर चढ़ गया और कब उसे छोड़ा गया।

"हा लक्ष्मण! हा सीते!" जन ने पाए। (पृ० ४१७)

शब्दार्थ—दारुण=भयकर।

भावार्थ—भरत का बाण लगते ही ऊपर आकाश में 'हा लक्ष्मण हा सीता' का दुख से भरा प्रचड स्वर गूंज उठा। आकाश मे विचित्र सा प्रतीत होने वाला वह जीव तत्क्षण तारे के समान टूट कर उनके सम्मुख पृथ्वी पर गिर पड़ा। सब "हरे! हरे! कहते हुए चौंक उठे। रोते हुए भरत ने कहा 'हाय मैंने किसके प्राणो का हनन किया!" घायल जन के रक्त पर ही उनकी अश्रुधारा गिरने लगी। वह जन मूर्च्छित होकर मौन बन गया था। उसके उपचार के लिए अनेक दास दासियाँ इधर उधर दौड़ पड़ीं। भरत उसके शरीर को सहलाते हुए कह रहे थे 'हे भाई बोलो, तुम कौन हो?" मॉडवी ने तब आगे बढ़कर कहा "अब अधिक व्याकुलता प्रगट करना उचित नहीं। सजीवनी महौषधि का प्रयोग इस आहत जन पर करके उसकी परीक्षा क्यों नहीं करली जाए।" यह सुनकर भरत 'साधु, साधु,' कहते हुए स्वय ही संजीवनी औषधि ले आए! सचमुच चमत्कार था। बस संजीवनी औषधि से इस आहत जन ने पुनः नया जीवन प्राप्त कर लिया।

आँखें खोल देखती दूर प्रभात। (पृ० ४१८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—वह सुदृढ शरीर वाली विशाल मूर्ति आँखें खोल कर देखने लगी। माँडवी अपने अंचल से पट्टी फाड़कर उसके बाँध रही थी। उस विशाल मूर्त्ति ने कहा "अहा मैं कहाँ हूँ? क्या तुम सचमुच ही मेरी सीता माता हो? ये (भरत) रामचन्द्रजी हैं, और मुझे गोद में लिटाए हुए ये (शत्रुघ्न) क्या सचमुच ही लक्ष्मण जी हैं। उसके उत्तर में भरत ने कहा "हे भाई, हम भरत, शत्रुघ्न, माँडवी, उन प्रभु के सेवक हैं। तुम कौन हो, यहाँ कैसे आए, वे खर और दूषण का सहार करने वाले रामचन्द्र जी अब कैसे हैं?"

भरत की बात सुनकर वह वीर चौंककर उठ खड़ा हुआ और उसने पूछा "अब कितना रात्रिकाल शेष है"? 'अर्द्ध प्राय' उत्तर में भरत ने कहा तब तो कुशल है, क्योंकि वह प्रभात अब भी दूर है।"

धन्य भाग, इस उड़, कैलास।" (पृ० ४१८--४१६)

शब्दार्थ—किंकर=सेवक। अम्बा=माता माँडवी। आजनेय=अंजना के पुत्र हनुमान जी। कार्त्तिकेय=शिव जी के पुत्र और देवताओं के सेनापति। मारुति=पवन पुत्र।

भावार्थ—"मेरे धन्य भाग हैं जो मुझ सेवक ने भी उनके दर्शन प्राप्त किए, जिनकी चर्चा करते हुए प्रभु के नैत्रों से सदैव ही प्रेमाश्रु बहा करते थे। मेरे लिए अब अधिक व्याकुल मत बनो। मेरे पार्श्व का वह घाव तो अब बिल्कुल ठीक हो गया। माता माँडवी के इस अंचल पट में तो मेरा शैशव पुलकित हो उठा है। इस अँजना पुत्र हनुमान को कार्त्तिकेय से भी अधिक पुण्यवान समझो, जिसके लिए जहाँ देखो वहीं माताएँ ही माताएँ हैं। सुनो मैं पवन पुत्र हनुमान प्रभु रामचन्द्र जी का सेवक हूँ। सजीवनी प्राप्त करने के लिए योगसिद्धि से उड़कर मैं कैलाश जा रहा हूँ। अतः विलम्ब करना मेरे लिए हानि प्रद ही होगा।

"प्रस्तुत है वह वन-चारी का। (पृ० ४१६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—हनुमान जी की बात सुनकर भरत ने कहा "वह सजीवनी बूटी तो यहीं प्राप्त हो जायगी। उसी से तुम्हारे प्राणों की रक्षा हुई है। यह

।कर हनुमान जी अत्यन्त हर्षित हुए और बोले "आहा, तब तो इस प्रकार
ाने मेरे साथ साथ लक्ष्मण के भी प्राण बचा लिए। अब तुम सक्षेप में
दूषण को नष्ट करने वाले प्रभु रामचन्द्र जी का कुछ वृतात सुनो। तुम्हें
। दडक वन मे विचरने वाले प्रभु का बल विक्रम तो विदत है।

हरी हरो कहते हैं।' (पृ० ४२०)

शब्दार्थ—तापस=तपस्वी। रति=कामदेव की पत्नी।

भावार्थ—वन की हरित पृथ्वी जब राक्षसो के रक्त से लाल होकर कुछ
ाकी पड़ गई अर्थात् उस युद्ध को हुए कुछ समय बीत गया, तब शूर्पणखा
का पहुँची और रावण से रोकर बोली "देखो तपस्वी रूप धारण किए हुए
न दो मनुष्यों ने मेरी कैसी गति की है। उनके साथ एक रमणी भी है,
ासके सम्मुख काम देव की पत्नी रति भी दासी के समान प्रतीत होती है।
ारत क्षेत्र के दडक वन में वे दोनों धनुर्धारी निवास करते हैं। वे स्वयं पवित्र-
ाहीं नहीं अपने को पवित्र कहकर हमें नीच बतलाते हैं।

शूर्पणखा की बातें साधु वेश धरके। (पृ० ४२०)

शब्दार्थ—मानी=अभिमानी। मारीच=राक्षस विशेष।

भावार्थ—शूर्पणखा की बातें सुनकर अभिमानी रावण अत्यन्त क्रुद्ध
ुआ। शत्रुता का बदला लेने के बहाने उस दुष्ट ने सीता हरण करने का
िश्चय किया। तब मारीच राक्षस से उसने कपट मन्त्रणा की और उसे साथ
ो साधु वेश धारण कर दण्डक वन मे आया।

हेम-हरिण छली ने प्राण। (पृ० ४२१)

शब्दार्थ—हेम-हरिण=स्वर्ण का हिरन। मायावी=माया फैलाने वाला।
मृग=हिरन। अरुण-रूप=बाल सूर्य के समान रूप वाले। किरण गति=
किरणों के समान चञ्चल गति। ग्रीवा भग=गर्दन को मोडकर देखने की
क्रिया। नरहरि=मनुष्य के रूप मे भगवान। रग=आनन्द।

भावार्थ—उस मायावी मारीच ने वहाँ आकर स्वर्ण के हिरण का रूप
धारण कर लिया। श्री सीता जी के सम्मुख जाकर वह नीचे उन्हें लुभाने
लगा। प्रभु ने उसके मनके रहस्य को समझ लिया, और हँसकर वह बोले
"सुन्दर चर्म पर सभी मोहित होते हैं। इसे मारकर हे प्रिये हम तुम्हारी इच्छा

अभी पूर्ण करते हैं। 'हे भाई लक्ष्मण सावधान रहना' यह कहते हुए धनुष पर बाण रख कर उस हिरण के पीछे क्रीड़ा करते हुए प्रभु ने प्रस्थान किया। बालरवि के समान उस तरुण हरिण की किरणों के समान चचल गति और ग्रीवा भग को देखकर दयालु नर हरि राम बड़े आनन्द पूर्वक उसके साथ गए। अन्त में उसके धोके को समझ कर प्रभु ने जैसे ही उस पर बाण छोड़ा तो बाण लगते ही उधर उस कपटी ने 'हा लक्ष्मण! हा सीते!' कहकर अपने प्राण त्याग दिए।

सुनकर उसकी कातरोक्ति .... हैं हाय।' (पृ० ४२२)

शब्दार्थ—कातरोक्ति=दीनता से भरा स्वर।

भावार्थ—उस मारीच की ऐसी दीनता से भरी वाणी सुनकर सीता जी चौंक उठी और उनका मन अस्थिर हो गया। न जाने प्रभु पर कौन सा सकट आ पड़ा, यह सोचकर वे अत्यन्त भयभीत हो उठीं। लक्ष्मण से उन्होंने कहा "हे शुभ लक्षण लक्ष्मण, यह पुकार हाय कैसी है? जाओ तुरन्त जाकर देखो, यह पुकार तो आर्य पुत्र की सी ही मालूम पड़ती है।

लक्ष्मण ने समझाया .... क्या निश्वास।' (पृ० ४२२।

शब्दार्थ—आतक=डर। प्रकम्प=कापना।

भावार्थ—सीता जी को समझाते हुए लक्ष्मण जी ने कहा "हे भाभी अपने मन में तनिक भयभीत मत बनो। इस त्रिलोक में ऐसा कौन है जो प्रभु रामचन्द्रजी का तनिक भी अनिष्ट कर सकता है। तुम यह जो कह रही हो कि मेरा दक्षिण नेत्र फड़क रहा है, आशका और भय के भावों से व्याकुल होकर हृदय धड़क रहा है, परन्तु मुझे तो उनके बल और सामर्थ्य पर इतना दृढ विश्वास है कि सिहरन और आह तो क्या मेरा तो एक केश मात्र भी नहीं हिल रहा। मुझे तो लेश मात्र भी नहीं आशका है।

'किन्तु तुम्हारे ऐसे .... स्वजन प्रिय हो।' (पृ० ४२३)

शब्दार्थ—निष्क्रिय=क्रिया रहित, निश्चेष्ट।

भावार्थ—लक्ष्मण की बात सुनकर सीता जी ने क्षोभ भरे स्वर में कहा परन्तु तुम्हारे जैसे निष्ठुर प्राण मैं कहा से लाऊ और तुम्हारे समान पत्थर तुल्य कठोर और अनुभूति शून्य हृदय कहाँ से प्राप्त करूँ?" यदि तुम नहीं।

जाना चाहते तो घर बैठो मैं ही जाऊँगी। जो मुझे इस प्रकार पुकार रहा है, उनके कुछ काम तो आऊ। क्या मैं क्षत्रिया नहीं हूँ जो अपने पति की सहायता कर सकूँ। परन्तु तुम कैसे क्षत्रिय हो जो इस प्रकार निश्चेष्ट होकर भी भ्रातृ प्रेमी बनते हो।"

'हा ! आर्ये, प्रिय किसने भोगा ?' (४२३--४२४)

शब्दार्थ—बधिर=बहरे।

भावार्थ—सीता जी की बात सुनकर लक्ष्मण ने अत्यन्त दुखित भाव से कहा "हाय, आर्ये, इस तरह तुम मुझसे प्रिय भाई रामचन्द्र जी की इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने को कह रही हो। यदि मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन न करूँ तो तुम गृहिणी की भाति घर में नहीं रहना चाहतीं। मुझमें कितना क्षत्रियत्व है, हे देवी तुम इसकी परख क्या कर सकोगी ? क्योंकि मैं तो सदा ही तुम्हारा सेवक रहा हूँ और अब भी तुम्हारे चरणों की सेवा करता रहूगा। इसी क्षत्रित्व के नाते मैं अपने पिता के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था। परन्तु तुम आर्य रामचन्द्र जी की पत्नी हो अबला नारी हो, इसीलिए तुम्हें क्षमा करता हूँ। सचमुच अबला वधुओं का प्रेम अन्धा ही नहीं बहरा भी होता है। वे अपना शुभ अशुभ न तो स्वय ही देख सकती हैं और न दूसरों के बताने पर ध्यान ही देती हैं। जो कुछ भी हो, मैं जा रहा हू, परन्तु तुम इस कुटी का त्याग मत करना और इस रेखा के भीतर ही रहना। न जाने कब क्या हो जाए। भाग्य पर तो मेरा भी वश नहीं है। कर्मों का फल तो सबको सर्वत्र ही भोगना पड़ता है।

कसे निषग पीठ रोती को !" (पृ० ४२४)

शब्दार्थ—निषंग = तरकस। दशानन = रावण। श्येन=बाज। कपोती= कबूतरी।

भावार्थ--तब पीठ पर तरकस कसे और हाथ में धनुष बाण लिए हुए लक्ष्मणजी वन में उसी ओर गए जहाँ से वह आर्त्तनाद सुनाई पड़ा था। इधर रावण आश्रम को सूना पाकर भय से रोती हुई अबला सीता को उसी प्रकार हर ले गया जैसे बाज कबूतरी को ले जाता है।

कह सशोक 'हा' .... आशंका को ? (पृ० ४२५)

शब्दार्थ—पक्ष=पख ।

भावार्थ—हनुमान जी के मुह से सीता हरण की बात सुनकर शोक से दोनों भाई भर उठे और 'हाय' करते हुए क्रोध से हाथ पटकने लगे ! मॉडवी ने रोते हुए कहा "जीजी तुमसे अधिक सनाथ तो उर्मिला ही है। सभी ने यह असह्य चोट आगे का वृत्तॉत सुनने की आतुरता होने के कारण सहन की। हनुमान ने तव सबको धैर्य प्रदान करते हुए आगे का शेष वृत्तात शीघ्रत के साथ कहा "सीता जी चिल्ला भी न सकीं और वे घबरा कर अचेत हो गई परन्तु वन अपनी लक्ष्मी के इस प्रकार खो जाने से भॉय भॉय कर उठा। तब वीर परन्तु वृद्ध जटायु ने उस दुष्ट के सिर पर उड़कर प्रहार किया। परन्तु उस पापी ने उसका पक्ष केतु के समान काटकर गिरा दिया। इधर जटायु स्वर्ग धाम को गया और उधर रावण ने लका को प्रस्थान किया। विपत्ति और आशका को आने में क्या समय लगता है।"

आकर खुला .... करता था वृष्टि। (पृ० ४२६)

शब्दार्थ—पिजर = पिजड़ा। विभ्रम=भ्रममात्र। अभग=निरन्तर। गुहा=गुफा। गर्त्त=गड्ढे।

भावार्थ- दोनों भाइनों ने आकर आश्रम को सूने पिंजड़े के समान पाया। देवी सीता के स्थान पर उनका भ्रम मात्र ही शेष रह गया था सीता रहित आश्रम को देखकर रामचन्द्र जी वेदना भरे स्वर में कहने लगे "प्रिये मेरी पुकार का उत्तर दो। मैं ही तुम्हें निरन्तर नहीं पुकार रहा, अपितु मेरे साथ उपवन, पर्वत गुफा और गड्ढे भी शून्य बनकर तुम्हें पुकार रहे हैं जब सारा ससार सो रहा था तब मेरे साथ साथ लक्ष्मण ने भी देखा कि एक मेघ (घनश्याम रामचन्द्र जी) उठ उठ कर सीता सीता कहता हुआ गरज गरजकर (जोर जोर से विलाप करता हुआ) वर्षा करता था। (अश्रु जल बहाता था।)

उनके कुसुमाभरण .... दुखी न हो।' (पृ० ४२६-४२७)

शब्दार्थ—कुसुमाभरण=फूलों के गहने। उच्छिन्न = बिखरे हुए रश्मि राशि = किरणों का समूह। महा ग्रास=बहुत बड़े ग्रहण।

भावार्थ—सीता जी के पुष्पों के आभूषण मार्ग मे जिस ओर बिखरे हुए
।, वे दोनों उसी ओर उन्हें बीनते हुए और विलाप करते हुए दुखी
से उसी ओर चले। लक्ष्मण ने कहा "हे आर्य जिनके आभूषणों को
प्राप्त किया है, उन्हें भी हम शीघ्र प्राप्त करेंगे। क्या साधु भरत की
।। व्यर्थ ही जायगी। किरणों के समूह को क्या महा ग्रहण का अन्धकार
में छिपा सकता है? हे आर्य मै आर्या सीता को तो यमराज के हाथों
। मुक्त करा लाऊंगा। इस ससार से पातिव्रत धर्म की मर्यादा को भला
मिटा सकता है? यह आकाश भी उस अग्नि शिखा को अधिक समय
नहीं ढक सकेगा। आर्या सीता अधिक समय तक अप्रगट नहीं रहेंगी।
लए अधिक दुखी मत हो।

'काल-फणी ... आतिथ्य लिया। (पृ० ४२७)

शब्दार्थ—काल फणी=काल सर्प। शवरी=भील जाति की स्त्री, जिसके
बेर बड़े प्रेम से रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी ने खाए थे।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण जी से कहा मुझे अपने और सीताजी
बेषय में चिन्ता नहीं है, परन्तु उसी अभागे का मुझे दुख है जिसने सीता
का हरण कर काल सर्प की मणि पर हाथ डाला है। मृत्यु को अपने निकट
या है। बीच मे जटायु का दाह सस्कार करते हुए दोनो अपने मार्ग पर
। बढे। आगे किसी कबन्ध नामक असुर ने अजगर के समान उनको जकड़
।। शत्रु की भुजाए काट कर उन्होंने उसका अन्त कर दिया। और फिर
का दाह सस्कार भी उसी प्रकार किया जैसे वह उनका ही स्वजन हो। इस
उपरात सदा ही प्रेम भाव के भूखे प्रभु शबरी के अतिथि बने।

यों ही चलकर ... उन्होंने दिखलाई। (पृ० २४८)

शब्दार्थ—विषम=भिन्न। दारा=पत्नी। किंकर=सेवक। अद्रि=पर्वत।

भावार्थ इसी प्रकार चलते हुए प्रभु पंपासर पहुंचे। अपने पत्र पुष्पों
अर्पित कर पपासर ने उनका स्वागत किया, अथवा मानो पपासर के रूप
उन्होने अपने वियोग से कृश और वेदना से दुखी करुण मूर्त्ति का दर्शन
ने के लिए दर्पण प्राप्त किया। पपासर से आगे ऋष्यमूक पर्वत पर हम
र लोग निवास करते थे। भिन्न प्रकृति होने पर भी इन आकृति में

मनुष्यों के समान ही थे। हमारा स्वामी सुग्रीव था वह मानसिक दुखों से अत्यन्त पीड़ित था। उसके बड़े भाई शक्तिशाली बालि ने कामांध होकर उसकी पत्नी और धन का हरण कर लिया था। तब इस सेवक ने पर्वत से उतर कर प्रभु की दया दृष्टि प्राप्त की। उन्होंने स्वभावत. ही सहानुभूति वश होकर हमारे स्वामी सुग्रीव पर प्रेम प्रगट किया।

लिए जा रहा था उनका बाण। (पृ० ४२८-४२९)

शब्दार्थ—वक=बगुला। शफरी=मछली। पद्मनी=कमलिनी। स्वर्गाभरण=स्वर्गीय आभूषण। सुकठ=सुग्रीव। आखेट=शिकार।

भावार्थ—जब रावण रूपी बगुला मछली के समान सीता जी को ले जा रहा था तब हमने स्वय ही उस पवित्र कमलिनी को तड़पते हुए देखा हमें देखकर सीताजी ने अपने वर्फ के समान शीतल आँसुओं और अपने मोतियों के हार को हवा के झोंके के समान उछाल कर देते हुए इस रूप में हमें दो बार अपना परिचय दिया? उन आँसुओं की बूँदों को तो स्वर्ग के उपयुक्त आभूषण समझ किरणें उड़ा ले गईं, परन्तु उनका स्मृति चिन्ह टूटा हुआ हार प्रभु की भेंट बना। तब सुग्रीव को अपना बन्धु कहकर प्रभु ने उसे हृदय से लगाकर कृतार्थ किया। बालि को बर्बर पशु बतलाकर एक ही बाण से उसका प्राणांत कर दिया। इसके पूर्व ही हमें प्रभु के अलौकिक बल का प्रमाण मिल चुका था। उनके एक ही वाण ने ताड़ के सात विशाल वृक्षों को एक साथ वेध दिया था।

वर्षा-काल बिताया किसको न दया? (पृ० ४३०)

शब्दार्थ—शैल=पर्वत। दारा=पत्नी। प्रकुपित=क्रुद्ध।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्र जी ने उसी ऋष्यमूक पर्वत पर शङ्कर के समान वर्षा ऋतु व्यतीत की। वर्षा ऋतु के उपरात सती सीता के समान शरद्काल के अनुपम चन्द्रमा का उदय हुआ।

इधर राजा सुग्रीव किष्किंधा का राज्य और पत्नी को पाकर अपने कर्त्तव्य को ही भूल गया। जब स्वय ब्रह्म ही माया के वश में है तब साधारण जीवात्मा उसके सम्मुख कोई महत्व ही नहीं रखता। भला जो अपने मित्र का दुख भूलकर शत्रु के समान सुख का उपभोग करे उसे मित्र कैसे कहा जा सकता है!

ीलिए सुन्दर चरित्र वाले धनुर्धारी लक्ष्मण क्रोधित होकर नगर में पहुँचे। वनवास की अवधि में राम नगर में प्रवेश नहीं कर सकते थे।) तब बानर ते सुग्रीव अपनी पत्नी तारा को आगे करके तथा विनीत होकर शरण में ाया। दीन अबला नारी को सम्मुख देख कर भला किसको दया नहीं ाएगी। लक्ष्मण ने सुग्रीव को क्षमा कर दिया।

गए सहस्त्र सहस्त्र है वास। (पृ० ४३०-४३१)

शब्दार्थ—कीश=बन्दर। मुद्रिका=अँगूठी। दुस्तर=कठिन। प्रणिधान= क। मकरालय=मगर आदि का स्थान समुद्र। गोष्पद=गाय के खुर के बरा का स्थान।

भावार्थ—तब सहस्त्रों बानर देवी सीता की खोज को चले। प्रभुवर ने के सीताजी को देने के लिए अपनी अँगूठी दी और कमल के समान अपना थ मेरे सिर पर फेर कर मुझे आशीर्वाद दिया। जिसने स्वय प्रभु की भक्ति प्त करली हो उसके लिए संसार में कौनसा कठिन कार्य है। मैंने मकर ादि के निवास स्थान समुद्र को उसी सरलता से पार कर लिया जैसे वह य के गोष्पद के समान हो। मार्ग मे एक दो बिघ्न बाधाओ को देखकर भीत होने की अपेक्षा उलटा मुझे यही विश्वास हुआ कि वास्तविक सफ- ता उसकी बाधाओं के भीतर ही निहित रहती है।

निरख शत्रु अशोक-वन में (पृ० ४३१)

शब्दार्थ—भौतिक विभूतियों=सासारिक ऐश्वर्य। छवि=शोभा। त्रिकू- नी=जादू अथवा कूट विद्या के यंत्र, मंत्र और तंत्र आदि तीनों प्रधान अंगो युक्त। भव वैभव=सासारिक ऐश्वर्य।

, भावार्थ—शत्रु की उस स्वर्ण नगरी को देखकर मुझे दिशा भ्रम होगया ार यह जानना कठिन हो गया कि नीले समुद्र मे वह लंका थी अथवा ाकाश में सध्या छाई हुई थी। वह लङ्का सासारिक ऐश्वर्यों की निधि के ान थी, शोभा की छत्र-छाया के समान थी और यंत्र, मत्र, तत्र की वह कुटिनी माया के समान थी। वहाँ अशोक वाटिका मे, सासारिक ऐश्वर्य विरक्ति मूर्त्ति के समान सीता जी को पहिचान लिया जो अपने मन में उसी

आग लगा दी। परन्तु उन्होंने उसी अग्नि से अपनी नगरी को जलते हु
पाया। वह पाप की लका जिस अग्नि से जली वह तो एक सती की वेदना
भरी आहे थीं। मैंने तो तुरन्त ही समुद्र मे कूदकर अपनी अग्नि बुझाली।'

देवी ने चूडामणि प्रभु की लीक।' (पृ० ४३५-४३६)

शब्दार्थ—चूड़ामणि=सिर में पहनने का गहना। ऋक्ष=रीछ। सलिल
राशिया=जल समूह। फेना=झाग। भित्तिया=दीवाले। नील नभोमण्डल=
नीला आकाश मडल।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्र जी के लिए देवी ने चूड़ामणि दी थी, वह मैं
प्रभु को लाकर दी। सीता का समाचार पाकर वे उसी प्रकार सन्तुष्ट हुए जैसे
उन्होंने सीता को ही पा लिया हो। तव रीछ और वानरो की सेना सजाक
लङ्का पर चढ़ाई की गई। दोनों सेनाएँ इस प्रकार टकराई मानो जल की ध
धाराएँ मिलकर फेन उगल रही हों। अपनी विशाल तरगों की दीवालें उठ
समुद्र ने प्रभु की सेना के प्रवाह को रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु इस
परिणाम यह हुआ कि पुल बनाकर उलटा वही बाँध लिया गया। उत्सा
वास्तव में बाधाओं के समुद्र के लिए पुल के समान ही है। समुद्र नी
आकाश मण्डल के समान था उस पर बधा हुआ पुल ठीक छाया पथ
समान था। ऐसा प्रतीत होता था मानो पानी पर भी प्रभु ने अमिट शक्ति
प्रमाण स्वरूप अपनी अमिट लीक खींच दी हो।

उधर विभीषण लिए निमित्त।' (पृ० ४३६ ४३७-४३८)

शब्दार्थ—गुरुतम=अत्यन्त विशाल। हूलें=चोटें। वित्त=ऐश्वर्य।

भावार्थ—उधर विभीषण ने भी रावण को अत्यन्त प्रेम पूर्वक समझाया
परन्तु उस सज्जन पुरुष को उलटा देश द्रोही कहा गया। रावण को समझा
हुए विभीषण ने कहा था—हे भाई मैं देश की रक्षा के ही उचित उपाय
बात कहता हूँ परन्तु दूसरों पर अन्याय करने वाले देश को तो मैं अपना दे
भी नहीं मान सकता। क्या ये प्राण किसी एक देश की सीमा में बँधकर
सकते हैं? हे भाई मैं अपने देश की ही नहीं सारे ससार की रक्षा चाहता
जिन्होंने धर्म के लिए राज्य को न्यौछावर कर जङ्गलों में भयङ्कर कष्ट सह
किए वे ही यदि मेरे शत्रु होंगे तब फिर भला मित्र किसको कहा जायगा

किसी के शत्रु नहीं हैं अपितु सबको अपनी मर्यादा में रखनें वाले शासक । आप अपने मद में भूलकर उन्हें तुच्छ न समझें। विशाल हाथी भी क्या टे से अकुश की साधारण चोटें सहन कर सकता है। परनारी, फिर पति- ा, वह सीता जैसी त्याग की मूर्त्ति जिसका मैं अपनी माता के समान आदर ता हूं उस पर आप इस प्रकार कुदृष्टि डाले, यह मैं उचित नहीं समझता। म और लक्ष्मण तो केवल निमित्त मात्र होंगे। इस दग्ध देश की सारी शक्ति र ऐश्वर्य तो उस सकी सीता के दुख भरे निःश्वासो से राख के समान ़ जावेगा।

उपचारक पर कम क्या ?' (पृ० ४३८)

शब्दार्थ—रूक्ष=रूखा। रुग्ण=रोगी। लुब्ध=लोभित। पुलस्त्य कुल = वण का वश।

भावार्थ—जिस प्रकार रूखी प्रकृति का रोगी अपने चिकित्सक पर ाधित होता है, वैसे ही रावण ने उलटे विभीषण से क्रुद्ध होकर कहा "मेरे हाँ से निकल कर उसी शत्रु की शरण में चला जा जिसके गुणों पर तू मुग्ध आ है। 'जैसी आज्ञा' यह कहकर विभीषण ने वहाँ से उठकर प्रस्थान किया ौर वह यह कहते हुए कि मुझे इसी में पुलस्त्य कुल का कल्याण निहित ान पड़ता है, प्रभु की शरण में चला आया। शत्रु का भाई होने पर भी भु ने अपने बन्धु के समान उसका स्वागत किया। उसको शरण में आया आ देखकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसे उचित आदर सम्मान दिया। जब मन्त्रियों विभीषण के प्रति कुछ शंका प्रगट की तब प्रभु रामचन्द्रजी ने कहा "हम य क्या शक्तिहीन हैं ? यदि हम अपने धर्म का पालन करते हुए ही छले ावें तो हमारे लिए यही क्या कम है ? हमें इसी में सन्तोष है।

प्रभु ने दूत शोणित में अङ्गार। (पृ० ४३९)

शब्दार्थ—बर्बरता=क्रूरता। विग्रह=युद्ध। आयुध=अस्त्र।

भावार्थ—प्रभु ने अपना एक दूत भेजकर रावण को संधि का एक और वसर दिया। परन्तु अज्ञानी पुरुष तो अच्छाई में बुराई और बुराई में अच्छाई खा करता है। सब का विनाश करने वाली क्रूरता भी युद्ध में नाम पाती है। द्ध में उसका महत्त्व बढ़ जाता है। राक्षसों की शक्ति में अपने अनुरूप ही ीछ-वानरों का सामना करना पड़ा। अस्त्र-शस्त्र तो अतिरिक्त वस्तुएँ ही

होती हैं, परन्तु वास्तविक हथियार तो अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ही हैं अर्थात् अपने अङ्ग पुष्ट हों तो अस्त्र-शस्त्र न होने पर भी शत्रु को परास्त किया जा सकता है। इसीलिए युद्ध में दाँत, मुट्ठियाँ, नख, हाथ, पैर सभी का एक साथ प्रयोग होने लगा। दोनों दल भीषण हुंकार करते हुए अपने-अपने स्वामियों का जय-जयकार कर रहे थे। घायल व्यक्तियों की रक्त की धारा से वृक्ष बह रहे थे, पत्थर डूब रहे थे, अङ्गारे बुझ रहे थे।

निज आहार जिन्हे .... विदारक शूल। (पृ० ४३६)

शब्दार्थ—अजीर्ण=जो जीर्ण या दुर्बल न हो, बदहजमी। गुल्म=सेना का एक समुदाय, पेट का एक रोग। शूल=बरछी के आकार का एक अस्त्र, वायु के प्रकोप से पेट में होने वाली पीड़ा।

यहाँ अजीर्ण, गुल्म और शूल श्लिष्ट शब्द होने से इस का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है।

भावार्थ—(१) राक्षस अपने घमण्ड में भूलकर जिन रीछ वानरों को अपना आहार समझते थे वे ही भोजन रूप में उनके लिए अजीर्ण, गुल्म और शूल जैसे भयङ्कर रोगों के कारण बने।

(२) राक्षस गण अपने घमण्ड में भूलकर यह समझते थे कि वे रीछ और वानरों को परास्त कर सहज ही अपने अधीन कर लेंगे परन्तु वे उन को नष्ट कर राक्षसों के लिए अत्यन्त बलवान सिद्ध हुए। उन रीछ बानरों ने उनके गुल्म को नष्ट कर दिया और बरछी की तरह उनके शरीर को विदीर्ण कर दिया।

रण तो राम .... भी रुद्ध। (पृ० ४४०)

शब्दार्थ—पण=प्रतिज्ञा। रुद्ध=रुकना।

भावार्थ—युद्ध तो यद्यपि राम और रावण के बीच में था परन्तु रावण के हाथों से सीताजी को मुक्त करने की प्रतिज्ञा जैसे लक्ष्मण ने ही की थी। युद्ध में लक्ष्मण का साहस, शौर्य और शक्ति से भी अधिक बढकर था। मैं अपना युद्ध प्रायः छोड़-छोड़कर उनके लड़ने का ढङ्ग देखा था। वे शत्रु के सैन्य समुदाय में प्रवेशकर क्षण भर के लिए भी बिना रुके बाहर उसी प्रकार निकल आते थे जैसे सूर्य बादलों में छिपकर शीघ्र ही बाहर निकल आता है

शेल-शूल लोहे से विद्ध। (पृ० ४४०)

शब्दार्थ—असि=खड्ग। परशु=फर्शा। तोमर=एक प्रकार का पुराना ास्त्र जिसमें लक्ड़ी के आगे की ओर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था। भन्दियाल=एक प्रकार का डंडा जो फेंककर मारा जाता है। सार=तलवार। क्र=टेढ़ी। निस्वन=शब्द, ध्वनि।

भावार्थ—शेल, शूल, खडग, परसु, गदा, घन, तोमर, भिन्दियाल, तीर, चक्र आदि अस्त्र-शस्त्र और अनेक प्रकार की वक्रधाराओं वाली तलवारें युद्ध में रक्त की धारा प्रवाहित कर रही थीं। आरे, आ, जारे, जा, कह कहकर एक दूसरे को चुनौती देते हुए योद्धागण परस्पर भिड़ गए थे। युद्ध मे अस्त्र-शस्त्र, रथ, घोड़े, हाथी और सैनिको के कोलाहल और चीत्कार से घन-घन, झन-झन, सन-सन और हन-हन की शब्द ध्वनियाँ हो रही थीं। युद्धभूमि के नीचे स्यार शोर मचा रहे थे। ऊपर गिद्ध मॅडरा रहे थे। सोने की लंका लोहे से विधकर मिट्टी मे मिली जा रही थी।

भेद नहीं पाते निश्चेष्ट शरीर। (पृ० ४४१–४४२)

शब्दार्थ—रविकर=सूर्य की किरणें। शून्य=आकाश। रज=धूल। अमोघ= अचूक, निष्फल न होने वाले। खरतर=अत्यन्त तीक्ष्ण।

भावार्थ—आकाश धूल में ऐसा भर गया था कि सूर्य की किरणें भी उसे नहीं वेध पा रही थीं। परन्तु धूल के उस अन्धकार मे भी प्रभु के अचूक और अत्यन्त तीक्ष्ण बाँण भी शत्रु सेना का संहार कर रहे थे। अपने जिन असख्य वीरो पर राक्षसराज रावण को अत्यन्त गर्व था वे भी एक-एक कर मृत्यु को प्राप्त हुए अत्यन्त तुच्छ सिद्ध हो रहे थे। दाँत पीसते हुए और होंठ चबाकर रावण अत्यन्त क्रोध के साथ प्रहार कर रहा था परन्तु प्रभु हँसते-हँसते उन प्रहारों को क्षण भर में ही व्यर्थ कर देते थे। अहा आज ही मैंने कुछ काल के लिए उनकी क्रोधपूर्ण मुद्रा को देखा। उनका क्रोध देखकर तो हम सब भी काँप उठे। फिर शत्रुओ की अवस्था का तो वर्णन भी क्या किया जा सकता है। इस प्रकार बारी-बारी से अपने योद्धाओ को मृत्यु की भेंट चढते हुए देखकर मेघनाद ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर लक्ष्मण पर शक्ति चलाई। उसमे मानो लंका की सारी शक्ति निहित थी। विधाता ने उस शक्ति को कभी निष्फल न होने

होती हैं, परन्तु वास्तविक हथियार तो अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ही हैं। अर्थात् अपने अङ्ग पुष्ट हों तो अस्त्र-शस्त्र न होने पर भी शत्रु को परास्त किया जा सकता है। इसीलिए युद्ध में दाँत, मुट्ठियाँ, नख, हाथ, पैर सभीका एक साथ प्रयोग होने लगा। दोनों दल भीषण हुँकार करते हुए अपने-अपने स्वामियों का जय-जयकार कर रहे थे। घायल व्यक्तियों की रक्त की धारा में वृक्ष बह रहे थे, पत्थर डूब रहे थे, अङ्गारे बुझ रहे थे।

निज आहार जिन्हें विदारक शूल! (पृ० ४३६)

शब्दार्थ—अजीर्ण=जो जीर्ण या दुर्बल न हो, बदहजमी। गुल्म=सेनाका एक समुदाय, पेट का एक रोग। शूल=बरछी के आकार का एक अस्त्र, वायु के प्रकोप से पेट में होने वाली पीड़ा।

यहाँ अजीर्ण, गुल्म और शूल श्लिष्ट शब्द होने से इस का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है।

भावार्थ—(१) राक्षस अपने घमण्ड में भूलकर जिन रीछ वानरों को अपना आहार समझते थे वे ही भोजन रूप में उनके लिए अजीर्ण, गुल्म और शूल जैसे भयङ्कर रोगों के कारण बने।

(२) राक्षस गण अपने घमण्ड में भूलकर यह समझते थे कि वे रीछ और वानरों को परास्त कर सहज ही अपने अधीन कर लेंगे परन्तु वे उन को नष्ट कर राक्षसों के लिए अत्यन्त बलवान सिद्ध हुए। उन रीछ बानरों ने उनके गुल्म को नष्ट कर दिया और बरछी की तरह उनके शरीर को विदीर्ण कर दिया।

रण तो राम भी रुद्ध। (पृ० ४४०)

शब्दार्थ—पण=प्रतिज्ञा। रुद्ध=रुकना।

भावार्थ—युद्ध तो यद्यपि राम और रावण के बीच में था परन्तु रावण के हाथों से सीताजी को मुक्त करने की प्रतिज्ञा जैसे लक्ष्मण ने ही की थी। युद्ध में लक्ष्मण का साहस, शौर्य और शक्ति से भी अधिक बढ़कर था। मैंने अपना युद्ध प्रायः छोड़-छोड़कर उनके लड़ने का ढङ्ग देखा था। वे शत्रु के सैन्य समुदाय में प्रवेशकर क्षण भर के लिए भी बिना रुके बाहर उसी प्रकार निकल आते थे जैसे सूर्य बादलों में छिपकर शीघ्र ही बाहर निकल आता है।

ड, सिर आदि कटकर उड़ते, गिरते और पड़ते दिखाई देते थे। रक्त की धाराएँ कलकल के मधुर स्वर के स्थान पर भलभल करके उमड़ रही थीं। पानी के तीव्र प्रवाह में कलकल के स्थान पर भलभल शब्द होता है।)

रिपुओं की पुकार लोप हुआ। (पृ० ४४३-४४४)

शब्दार्थ—निर्घोष=ध्वनियों। युगान्त=युग का अन्तिम समय। पयोदों=बादलों। पवि-पात=बिजली का गिरना।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्रजी के धनुष की टंकार की गूंज में शत्रुओं की चीख-पुकार भी छिप गई। उनके धनुष के प्रहार अपनी ध्वनि से भी आगे जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो राक्षस युग के उन अन्तिम क्षणों में प्रलय के बादलों से वज्र के समान बिजलियाँ गिर रही हों। अपना यह सर्वनाश देखकर रावण भी अत्यन्त क्रोधित हुआ, परन्तु प्रभु रामचन्द्रजी के सम्मुख उसका सारा छल नष्ट हो गया।

'बच रावण विशिख ही झेल।' (पृ० ४४४)

शब्दार्थ—वत्स=पुत्र। विशिख=बाण।

भावार्थ—रावण को सम्बोधित करते हुए प्रभु ने कहा "हे रावण अपने को बचा। मेरे बाणों का निशाना न बनकर अपने पुत्र की मृत्यु तक जीवित रह ताकि मेरे पुत्र तुल्य भाई लक्ष्मण के शोक का साक्षी यह तेरा ही वक्ष हो सके। तेरे ही प्राणों से उसके शोक का प्रतिकार किया जायगा। इन्द्रजित यहीं है, परन्तु नहीं, मैं उसे मारकर लक्ष्मण का अपराधी नहीं बनना चाहता जिसने कि आज मेघनाद का वध करने के लिए साधना की समाधि लगा रखी है। हे राक्षसराज रावण, मेरे हृदय में तो पहिले ही भाई के आहत होने के दुख का शूल घुसा हुआ है। उसके आगे तेरे ये साधारण बाण तो कुछ भी महत्व नहीं रखते। अतः तू अपने पुत्र की मृत्यु का शेल झेलने से पूर्व मेरे धनुष के एक बाण का ही प्रहार सह।

अश्व, सारथी कुम्भकर्ण मानी। (पृ० ४४५)

शब्दार्थ—अरि-पशु-मेध=शत्रु रूपी पशुओं का यज्ञ।

भावार्थ—इतना कह कर प्रभु ने घोड़े, सारथी, और शत्रु की भुजा को एक ही बाण से वेध दिया। रावण को मूर्च्छित अवस्था में छोड़कर उन्होंने

वाली बनाया था, फिर भी धैर्यशाली लक्ष्मण भयभीत होकर उस शक्ति सामने से नहीं हटे। शक्ति लगने से वे चेतनाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पर तब इस सेवक ने ही उठकर उनके निश्चेष्ट शरीर को उठाया।

धैर्य न छोड़े शत्रु तृण-से। (पृ० ४४२)

शब्दार्थ—जलद=बादल। विद्युज्ज्वाला=बिजली की अग्नि, ज्वाल उऋण=ऋण से मुक्त होना। प्रलयानल=प्रलय की अग्नि।

भावार्थ—लक्ष्मण के आहत होने का समाचार जान भरत, शत्रुघ्न अ माण्डवी विकल हो उठे। तब हनुमानजी ने कहा "आप इस प्रकार धैर्य त्यागें, शांत रहें। मारने वाले से रक्षा करने वाला कहीं अधिक बलवान हे है। लक्ष्मण को इस अवस्था में देख 'हाय लक्ष्मण' कहकर प्रभु बादलों समान जल युक्त हो गये। उनके नेत्रों में आँसू भर आए। परन्तु उसी समय उ नेत्रों में बिजली की सी ज्वाला चमकने लगी और वे क्रुद्ध होकर गरज उठे आज मैं मृत्यु के विरुद्ध युद्ध करूँगा। युद्ध और केवल युद्ध ही मेरा एकम लक्ष्य है। रोना तो मुझे बाद में है पहले शत्रु के ऋण से मुक्त होना है आहत लक्ष्मण का बदला लेना है। यह कहकर प्रभु प्रलय की अग्नि समान आगे बढ़े जिसमें शत्रु समुदाय तृण के समान जलने लगा।

एक असह्य उमड़ते थे। (पृ० ४४३)

शब्दार्थ—प्रकाश पिंड=प्रकाश का समूह। चाप=धनुष। शर-किर कलाप=तीरों के रूप में किरणों का समुदाय। नक्र=मगर। कर पद=हाथ पै रुण्ड-मुण्ड=धड़ और सिर।

भावार्थ—प्रभु की आकृति उस समय ऐसे प्रकाशपुंज के समान थ जिसका तेज सहन नहीं किया जाता था। उस प्रकाश में जैसे उनकी आकृ ही छिप गई थी। तीरों के रूप में किरणों का समूह फैलाकर उनका धन रवि मण्डल के समान बन गया था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मा साक्षात् भयङ्कर काल ही भौंहें चढ़ाकर अपने क्रोध-कटाक्षों को छोड़ रहा हो शत्रु सेना का वह समूह क्षण भर में नष्ट-भ्रष्ट हो गया। जिस प्रकार जल क्षुब्ध मगर और पर्वत में विस्फोट अपना क्रोध प्रगट करता है उसी प्रक शत्रु सेना में प्रभु रामचन्द्रजी प्रहार पर प्रहार कर रहे थे। युद्ध में हाथ, पै

भूलकर क्षण भर के लिए एक दूसरे को हृदय से लगा ले और अपने नेत्र पवित्र कर ले ।" परन्तु इससे पूर्व ही हाय राक्षस राज रावण मूर्छित हो गया । प्रभु भी यह कह कर मूर्च्छित होगए कि हाय आज राम से भी अधिक सहृदय रावण है । (लक्ष्मण के आहत होने पर राम ने क्रुद्ध होकर युद्ध किया, परन्तु अपने भाई कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण सज्ञाहीन होगया ।)

संध्या की उस ... आँसू भर लाए । (पृ० ४४७)

शब्दार्थ—धूसरता=मटमैलापन । उद्रेक=वृद्धि ।

भावार्थ—संध्या के उस मटमैलेपन में करुणा और भी तीव्रता से उमड़ पड़ी । तारों के रूप में आकाश के भी दो एक आँसू छलक छलक कर झलक उठे । हम सब अपने हाथो पर प्रभु को उठाकर सावधानी के साथ शिविर में ले आए । परन्तु वहाँ आकर अनुज की यह अवस्था देखकर तो प्रभु रामचन्द्र जी के नेत्रो में दुगने आँसू भर आए ।

'सर्व कामना मुझे ... दुखों मे आण ।' (पृ० ४४७)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—प्रभु रुदन करते हुए कहने लगे "हे भाई अपनी समस्त कामनाओं का मेरे लिए इस प्रकार त्याग कर यश के इच्छुक मत बनो । (जब तुमने मेरे लिए अपनी सारी कामनाए समर्पित कर दी हैं तब मुझसे स्वतन्त्र होकर यश की कामना क्यो कर रहे हो ।) तुम तो सदैव ही मेरे अनुगामी रहे हो अतः आज इस प्रकार मृत्यु को वरण कर मेरे अग्रगामी मत बनो। प्रभु के इस प्रकार अधीर होने पर वैद्यो ने सांत्वना प्रदान करते हुए कहा "हे आर्य आप इस भाँति व्याकुल न बने । अभी लक्ष्मण के जीवन की आशा शेष है । अतः अब वही प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि यह आशा सफल हो सके ।" यह सुनकर प्रभु रामचन्द्र जी बोले "इस तुच्छ रक्त की तो बात ही क्या है । कोई मेरे प्राण लेकर लक्ष्मण के शरीर में डाल दो । मुझे इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुआ जानकर सीता दुखों से मुक्ति पावेगी । उसे सुख ही होगा ।

बोल उठे सब ... हे आर्य ।' (पृ० ४४८)

शब्दार्थ—पंजर=पिंजड़ा ।

पशु यज्ञ में दी जाने वाली पशुवलि के समान असख्य शत्रुओं का सहार किया। आँधी में उड़ते हुए पत्तों के समान रावण के सभी योद्धा नष्ट भ्रष्ट होगए। तब उस मेघनाद के बदले वह अभिमानी रावण सम्मुख आया।

'भाई का बदला अपना अस्त!' (पृ० ४४५)

शब्दार्थ—पचानन=सिंह। सतत रत=सदेव लीन रहना। वज्रदे धूम्राक्ष, अकम्पन, प्रहस्त=रावण के सेनापति।

भावार्थ—कुम्भकर्ण को देखकर प्रभु रामचन्द्रजी ने मेघ गर्जन के सम कहा "अपने भाई का बदला अब भाई से ही लिया जायगा। यह कह उस हाथी के समान कुम्भकर्ण पर रामचन्द्रजी उस सैन्यदल को चीर कर सि के समान टूट पड़े। कुम्भकर्ण बोला "मैं अपने बड़े भाई रावण का समर्थ न होने पर भी उसके पीछे चलने वाला अवश्य हूँ। हे रामचन्द्र, मैं सदै निद्रा और लड़ाई में ही लीन रहने वाला हूँ। मुझे वज्रदेव, धूम्राक्ष, अकम् और प्रहस्त मत समझो जिन्हें तुमने परास्त कर दिया था। हे राम स्वय र के समान होने पर भी मुझे तुम अपना अस्त ही समझो।

'निद्रा और कलह आज!' (पृ० ४४६)

शब्दार्थ—कौणप=राक्षस। उपल=पत्थर। प्रभजन=वायु।

भावार्थ—कुम्भकर्ण के ये वचन सुनकर प्रभु बोले "हे राक्षस जि निद्रा और कलह की तू बड़े गौरव के साथ बड़ाई कर रहा है। अब भ भाँति जगकर सावधान होजा, आज मैं सदा के ही लिए तुझे मृत्यु की ग में सुलाकर तेरी युद्ध प्रियता की कामना को समाप्त कर दूँगा।" तदनन्तर ज घन ओले और बिजलियाँ गिराता है उसी प्रकार उस कुम्भकर्ण ने वज्र समान भारी-भारी पत्थर बरसा कर अनेक प्रकार के उपद्रव किये। परन्तु प्र के बल की आँधी से वे सब नष्ट भ्रष्ट होगए और चारों ओर प्रभु द्वारा छ गए तीर छा गए। अन्त में मरते-मरते भी वह भयकर राक्षस हमारे सैन्य द पर पर्वत के समान गिर पड़ा। कुम्भकर्ण की मृत्यु होने पर धनुष बाण त्य कर और रावण की ओर अपने दोनों हाथ करके प्रभु कह उठे "हे भाई आज हम दोनों एक ही समान दुख से पीड़ित (राम को लक्ष्मण के आहत हो का दुख तथा रावण को कुम्भकर्ण की मृत्यु का दुख) मित्र आपस का

खींच कर श्वास   निकेतन में। (पृ० ४४६)

शब्दार्थ—सार-वेग=तलवार का वेग । भद्रभौम=श्रेष्ठ मङ्गल ग्रह । शून्यपट=आकाश पटल । दंडहीन केतन=डंडे से रहित ध्वजा ।

भावार्थ—शूरवीर हनुमानजी साँस खींचकर और आसपास का कोई सहारा लिए बिना सीधे ऊपर उठकर आकाश में तिरछे हो गए, अग्नि-शिखा ऊँची तो उठती है, परन्तु वह निराधार नहीं रहती। हनुमान जी तो बिना किसी आधार के ऊपर उठकर मानो अग्नि से भी बाजी ले गए। उस समय हनुमानजी में जैसा वेग था वैसा तलवार के समान वेग साँव्य के बादलों में भी कहाँ पाया जाता है? वानर श्रेष्ठ हनुमानजी पृथ्वी से आकाश में इसी प्रकार पहुँच गए जैसे लगन में नवीन और श्रेष्ठ मङ्गल नक्षत्र उदित होगया हो। वे आकाश रूपी पटल पर सजीव चित्र के समान प्रगट हुए अथवा वे दया के घर में निराधार ध्वजा के समान दृष्टिगोचर हो रहे थे।

लंकानल, शंका-दलन   गगन भी पार। (पृ० ४४६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लङ्का को जलाने वाले और सब शंकाओं का अन्त करने वाले हे पवनकुमार हनुमानजी तुम्हारी जय हो। तुमने सागर ही नहीं आकाश को भी पार कर लिया।

———

द्वादश सर्ग

ढाल लेखनी पर चढ़जा। (पृ० ४५०)

शब्दार्थ--मसि=स्याही। असित=काली। कृष्णाभिसारके =कृष्ण प
की अँधेरी रात्रि में प्रियतम से मिलने जाने वाली नायिका। तमी=रात्रि।

भावार्थ--हे लेखनी, अपनी स्याही उँडेल, जिससे कि अन्त में तेरी य
स्याही सफल बने। यह अँधेरी रात्रि तनिक और भी काली बन जाय।
कृष्णपक्ष की अभिसारिका के समान रात्रि तनिक ठहर जा। पहले इस विष
रूपी काँटे को निकल जाने दे। हे सजीवनी, आज तू मृत्यु के दुर्ग पर चढ़व
विजय प्राप्त कर। शीघ्र पहुँचकर लक्ष्मण को जीवन दान दे।

झलको, झलमल पाओगे, सरसो। (पृ० ४५०)

शब्दार्थ--नक्षत्र=तारे। सुधार्द्र=अमृत से भीगे। पूर्वदिशा=प्राची दिश
अपनी पहले जैसी अवस्था में।

भावार्थ--हे हम सब के भाल रत्न तुम झलमल करते हुए झलको।
नक्षत्रों अमृत से भीगे विन्दुओं के समान तुम छलक पड़ो। हे वायु तम
इस रात्रिकाल में ही आगे बढ़कर लक्ष्मण के प्राणों में श्वास का सचार क
दो। हे कवि के दोनों नेत्रो तुम अग्नि और जल की वर्षा करो। इस प्रक
अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी आकाश इन पच भौतिक तत्त्वों से लक्ष्मण
जीवन ध्वजा पुनः अरुण होकर पूर्व दिशा में अथवा अपनी पूर्व अवस्था
समान लहरा उठे। हे प्राण तुम्हें अपने रहने के लिए लक्ष्मण जैसा शर
अन्यत्र कहाँ प्राप्त होगा? अतः इसी में प्रवेश कर शोभायमान बनो।

देखो, वह शत्रुघ्न अब क्या कितना?" (पृ० ४५०-४५१)

शब्दार्थ--दहती है = जलती है। कातर=व्याकुल। दैव=विधाता। भा
विभव=उच्च भावनाओं की सम्पदा।

भावार्थ--शत्रुघ्न की उस दृष्टि को देखो वह जैसे क्रोध से जल र

है । दयावान भरत सुनो यह माँडवी क्या कह रही है ?" हे आर्य पुत्र तुम पुरुषों में श्रेष्ठ होकर भी इस भाँति व्याकुल हो रहे हो तब फिर हे स्वामी बतलाओ यह अबला नारी ऐसी स्थिति में क्या करे ? परन्तु तुम्हें आज इतना भी अवकाश नहीं है कि इस स्थिति पर विचार कर सको । आज विधाता पुनः हमारी परीक्षा लेने को प्रस्तुत हुआ है । इस ससार ने उच्च भावनाओं की अनन्य सम्पदा हमसे प्राप्त की है, फिर भी उस भावुक को सन्तोष नहीं हुआ । वह विधाता अब भी भूखा भिक्षुक बनकर हमारे सामने हठ करके खड़ा हुआ है । हे स्वामी हम पर दया करो, देखो इस दीन का मुख कैसा सूख रहा है । क्या हम इसको और कुछ प्रदान नहीं कर सकते ? क्या इस स्थान पर आदर पूर्वक इसका स्वागत नहीं कर सकते ? क्या हम उससे इतना भी नहीं पूछ सकते कि हे भाई अब तुझे हम से और क्या चाहिए ।

"प्रस्तुत हैं ये शाला-माला ।" (पृ० ४५१)

शब्दार्थ—जलनिधि=समुद्र । स्वर्णपुरी=लङ्का । शाला-माला=भवनों की माला ।

भावार्थ—माँडवी की बात सुनकर भरत बोले "हे प्रिये, इस याचक को देने के लिए तो मेरे ये प्राण प्रस्तुत हैं, परन्तु इन प्राणों का भार यह सहन न कर सकेगा । इनको लेकर यह शाति से रह भी न सकेगा । देखूँ संभवतः समुद्र इन प्राणों की ज्वाला को बुझा सके जो कि लङ्का के भवनों की माला पहिने हुए है । अर्थात लक्ष्मण के आहत होने के कारण भरत के हृदय की व्याकुलता तभी शात होगी जब वे समुद्र पार कर लङ्का पर आक्रमण करेंगे ।

"स्वामी, निज देखी-भालो ।" (पृ० ४५१-४५२)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—माँडवी कहने लगी "हे स्वामी तुम निशाक भाव से अपने कर्त्तव्य का पालन करो । तुम कहीं भी रहो परन्तु इस दासी के सदैव निकट ही रहोगे । भयकर यम भी मुझे भयभीत नही कर सकेगा । स्वजनों के साथ तो मृत्यु भी मेरे लिए जीवन तुल्य है । न दिखाई देने वाले भाग्य को लेकर ही अनेक शकाएँ हमारे हृदय में उठती हैं । अन्धकार में ही भाँति भाँति की [illegible] ...ाशा से पूर्ण हृदय ही भयावना

होता है। हे स्वामी यदि यह ससार हमारा न बन सका तो कोई बात नहीं। हम सब जहाँ साथ होंगे वहीं हमारा स्वर्ग होगा। यह भाग्यहीन विधाता भला हमारा क्या बिगाड़ सकेगा ? हमें तो युग युग तक यह ससार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता रहेगा। वायु समाचारों को इधर उधर बहुत शीघ्रता से फैलाती है। अर्थात समाचार वायु की भाँति बड़ी शीघ्रता से फैलते हैं। अत. लक्ष्मण के आहत होने का समाचार अन्त.पुर मे फैलकर कहीं सब को व्याकुल न बना रहा हो। इसलिए अन्तःपुर की याद मुझे रह रहक सता रही है।

भरत ने कहा—हे प्रिये जाओ और तुरन्त ही अ तपुर में जाकर सबकं सँभालो। तुम यहाँ सबकी देख भाल करो और मैं जाकर शत्रु का सामन करता हूँ।

उठो माँडवी करूँगा आघातों से।" (पृ० ४५२-४५३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—अपने स्वामी भरत को प्रणाम कर अपने आँसुओं से उनके चरण भिगोती हुई माडवी वहाँ से उठ खड़ी हुई। तभी शूर वीर शत्रुघ्न ने उनके सम्मुख उपस्थित होते हुए झुककर कहा-हे आर्ये क्या तुम यहाँ से निराश होकर जाओगी ? अच्छा जाओ। इस समय इसी प्रकार अपने हृदय को धैर्य बँधाकर स्वस्थता प्रदान करो। परन्तु इतना सुनती जाओ कि तुम्हारी यह निराशा व्यर्थ ही है। इस समय तो हमारे ही सौभाग्य का उदय है और हमारी ही विजय की आशा है। यदि हमारा भाग्य समझाने बुझाने की बातों से और अधिक रूठा, उसने हमें और अधिक सताया तो मैं उसे अपनी शक्ति के बल पर सीधा करूँगा।

"विजयी हो तुम अहा! सब।" (पृ० ४५३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—माडवी ने शत्रुघ्न से कहा हे तात तुम विजयी बनो। मैं और अधिक आज क्या कहूँ ? परन्तु इस आशा के गर्व को मैं और कहाँ तक सहन करूँ, क्योंकि यह आशा सदैव ही धोका देती आई है। मेरे हृदय में भी विश्वास है अतः मै व्यर्थ मे ही व्याकुल क्यों बनू। अब मैं चाहे जहाँ रहूँ

मुझे कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि मेरा हृदय सब शंकाओ से रहित होकर निश्चिन्त बन गया है। जो कुछ भी इस ससार में प्राप्त किया जा सकता है वह सब मैंने प्राप्त कर लिया। मेरे हृदय की सम्पूर्ण ममता, माया, इच्छा और आकाक्षाऍ पूर्ण हो गई। अब मुझे किसी से भी कोई शिकायत नहीं है। मैं तो यह चाहती हूँ कि सभी मेरी भाति विश्वास को प्राप्त कर सके।

देकर निज जैसे के तैसे। (पृ० ४५३-४५४)

शब्दार्थ—शिबिका=पालकी। सन्न=स्तब्ध। शफर=मच्छ। सर्रक=सर्राता हुआ। बातूल=बबडर।

भावार्थ—माडवी पालकी पर चढ़कर राज भवन को चली गई परन्तु उसकी बातों की गु जार शीतल मन्द पवन की सुगन्ध की भांति चारों ओर फैल गई। भरत स्तब्ध से रह गए और उन्होंने 'शत्रु घ्न' इतना ही कहा। 'आर्य' शत्रु घ्न ने उत्तर दिया और दोनों भाई रोने लगे। भरत ने फिर कहा—वायु के मार्ग से हनुमान कैसे उड़ गए ? उत्तर में शत्रुघ्न ने कहा—जैसे मच्छ जल में अपने पङ्ख समेट कर सर्राता हुआ निकल जाता है। जितनी शीघ्रता से हनुमान ऊपर गए उतने वेग से तो बबडर भी ऊपर नहीं उठता। स्वयं आर्य का बाण भी उनके ऊपर इतनी शीघ्रता से नहीं गया था। इस पर भरत ने कहा-और हम यहाँ कैसे विवश बने बैठे हैं ? यह सुनकर शत्रु घ्न मौन हो गए। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वे ज्यों के त्यो चुपचाप खड़े रहे।

"लोग भरत का भला कहीं तो !" (पृ० ४५४)

शब्दार्थ—भण्ड=धूर्त, पाखण्डी। सलिल=पानी। जड़ीभूत=जो बिल्कुल जड़ के समान हो गया हो।

भावार्थ—भरत ने शत्रुघ्न से पूछा—मेरे सम्बन्ध में जन सामान्य के क्या विचार हैं। उत्तर में शत्रु घ्न ने कहा हे आर्य, आपका नाम स्मरण करने से पूर्व वे आपको साधु पद प्रदान करते हुए आपके प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति ही प्रदान करते हैं।

भरत ने यह सुनकर कहा-आह, भारत लक्ष्मी सीता आज राक्षसों के बन्धन मे पड़कर समुद्र पार व्याकुल हृदय लिए विलख रही हैं। इतने पर भी

मैं अपने मिथ्या भरत नाम को दोष न देकर साधुता का पाखण्ड किए बैठा हूँ। जल में डूबकर अपने स्पर्श से उस पवित्र जल को कैसे कलुषित करू। हे अनुज मुझे तो शत्रु का रक्त चाहिए जिसमें डूबकर मैं मर सकूँ और इस प्रकार अपने निश्चेष्ट जीवन की लज्जा को मिटा सकूँ। हे शूरवीर शत्रुघ्न उठो, इसी समय सेना को सजाओ। अन्य मित्र राजाओं का सैन समूह पीछे आता रहेगा। मार्ग में जो सैन्य दल मिले वे भी जल मार्ग या स्थल मार्ग के द्वारा शीघ्रता शीघ्र वहाँ पहुँच जाए। परन्तु साकेत की सेना अभी सुसज्जित हो जाए। विजय दुदुभी बजने दो। अब किसी रावण की लङ्का का अवशेष नहीं रहेगा। भाई माताओं से मेरी ओर से भी विदा माग लेना। उर्मिला से कहना कि मैं भी आज युद्ध में प्रस्थान करता हुआ लक्ष्मण के मार्ग का अनुगामी, बन रहा हूँ। यदि मै लौटा तो उन्हीं को साथ लेकर लौटूगाँ अन्यथा मैं वापिस ही नहीं आउगाँ। नहीं नहीं, वे कहीं न कहीं अवश्य ही मुझे मिलेगें।

विशेष—"भारत लक्ष्मी पड़ी . . . . . . व्याकुल मन में।" इन पक्तियों में गुप्त जी ने देश काल का स्पष्ट चित्रण किया है। राक्षसों के बन्धन में पड़ी हुई भारत लक्ष्मी सीता से तात्पर्य यहाँ पराधीनता की वेड़ियों से जकड़ी हुई भारत की स्वतन्त्रता से है जो कि समुद्र पार ब्रिटिश साम्राज्य के हाथों में पड़कर विलख रही है।

सिर पर नत बोला चाला। (पृ० ४५५)

शब्दार्थ—धरातल = पृथ्वी। हय = घोड़ा। वाजि-वेग=घोड़े की चाल। वल्गित = लगाम। सिरजा = बनाया। तुरग=घोड़ा। आरोही=सवार। त्वरित=शीघ्र।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने झुककर भरत की आज्ञा शिरोधार्य की। परन्तु आवेश से भरे होने के कारण वे उत्तर में 'जो आज्ञा' भी नहीं कह सके। उनके चरण स्पर्श कर वे द्वार की ओर चले और जैसे गध वायु के झोंके पर चढ जाता है वैसे ही वे कूद कर अश्व पर सवार हो गए। शत्रुघ्न के वीर हृदय का शौर्य जैसे वक्ष स्थल फाड़कर बाहर निकला पड़तर था, उधर अश्व इतनी शीघ्रता से जा रहा था मानो वह पृथ्वी पर चलना छोड़ आकाश में उड़ रहा

जिस प्रकार शत्रुघ्न के क्षुब्ध हृदय में धड़ धड़ का शब्द हो रहा था।
ो पड़ पड़ का शब्द घोड़े की चाल से उत्पन्न हो रहा था। उस शब्द
से पेडो के पक्षी जाग कर फड़-फड़ करने लगे। रास द्वारा नियन्त्रित उस
गति वाले घोड़े को देखकर आकाश भी स्तब्ध बना हुआ था। क्षण
। लिए उस शोभा को देखकर स्वयं विधि की बुद्धि भ्रम में पड़ गई
हों वह सवार घोड़े के साथ ही उसके एक अंग के रूप में तो नहीं
ा गया। बिजली के समान कौंध कर शीघ्र ही शत्रुघ्न राज तोरण पर
। प्रहरी दल ने सावधान होकर उन्हें सैनिक अभिवादन प्रदान किया।
ण धीर अश्व से कूद पड़ा। एक सैनिक ने उनका घोड़ा सँभाला। यह
कुछ चुपचाप ही हो गया। किसी के मुह से एक शब्द भी नहीं
ा।

अन्तः पुर में वृत ठंडी ज्वाला। (पृ० ४५५--४५६)

शब्दार्थ—अन्तःपुर=रनिवास। वृत=वृत्तात। विषम=भयकर।

भावार्थ—सीता हरण और राम रावण युद्ध का वह सम्पूर्ण वृत्तांत
ा ही अतःपुर में विदित हो गया था। उस वृत्तात को जानकर सबके
जैसे भयकर वज्र ही गिर पड़ा था। माताओं की अवस्था तो ऐसी हो
थी मानो सूखे पर पाला पड़ गया हो। एक विपत्ति के पश्चात् दूसरी
त का उन्हें सामना करना पड़ा। वह ठंडी शीतल ज्वाला उन्हें कँपा कँपा
ला रही थीं।

"अम्ब रहे ये तो पद वंदन।" (पृ० ४५६--४५७)

शब्दार्थ—वीरसू=वीरों की जननी। वैर वह्नि=शत्रुता की आग।
योधि=प्रेम समुद्र। द्विपदस्यु=राक्षस शत्रु। द्वेषानल=द्वेष की
। प्रसू=जननी। करगत=हाथो के नीचे। ग्रह=भाग्य नक्षत्र। कीर्त्ति-
त=यश का अमृत।

भावार्थ—रोती हुई माताओं को सान्त्वना प्रदान करते हुए शत्रुघ्न कहने
"हे माताओ तुम तो वीर जननी हो, अत. यह रोना बद कर अपने
न का पालन करो। हाय, इस प्रकार रोकर वैर की अग्नि को शात मत
। हमने तो अपने नेत्रो के जल से सदैव ही प्रेम का समुद्र भरा है।

अर्थात् कभी हमने युद्ध की इच्छा अपनी ओर से नहीं की। सबके प्रति प्रे
का भाव ही हमारे हृदय में रहा है। परन्तु आज हमारे शत्रु, राक्षस हमा
क्रोध की अग्नि में जलें। हे माता इस प्रकार व्याकुल मत बनो तनिक धै
धारण करो। थोड़ा यह तो विचार करो कि तुम किनकी पत्नी और किन
जननी हो। उनकी (पिता दशरथ) सहायता से ही देवताओं ने असुरों
विजय प्राप्त की। स्वर्ग की दिव्यता उनके कारण पृथ्वी पर खिंचकर चली आ
हे माता, आज तुम्हारे पुत्र तो इतने ऊँचे उठ गए हैं कि ससार के सम
श्रेष्ठ फल उनके वश मे है। यदि नीच भाग्य नक्षत्र कहीं विघ्न बनकर हम
मार्ग में बाधक बनेगें तो हम उन्हें शिलाओं पर पटक कर नष्ट भ्रष्ट कर दे
जब धर्म स्वय तुम्हारे पक्ष में है, फिर तुम्हें किस बात का भय है? धर्म
चल कर तो जीवन में ही क्यों, मृत्यु में भी विजय होती है। अमर होकर
देवता गण मृत्युवान ही हैं जिन्हें बार बार जन्म लेकर जीवन के कष्ट भो
पड़ते हैं। (पूर्व कृत पुण्यों का क्षय होने पर देवताओं को भी मृत्यु लोक
जन्म लेना पड़ता है।) परन्तु मनुष्य यश का अमृत पीकर मर मर कर
अमर हैं। हे माता, तुम्हीं तो हमें विपदाओं से जूझने के लिए जन्म देती
फिर इस प्रकार क्यों रोती हो? इस प्रकार व्यर्थ ही दीनता और दुर्बल
प्रगट करने के स्थान पर तुम्हें तो गर्व होना चाहिए। यह करुण क्रदन
हमारे वैरियों के लिए ही उचित है। हे माता हमारा प्रणाम स्वीकार कर
हमें आशीर्वाद प्रदान करो।

"इतना गौरव अधे बहरे।" (पृ० ४५७)

शब्दार्थ—अकृती=पुण्य हीन।

भावार्थ—उत्तर में माता कोशल्या ने कहा "हे पुत्र! नारी इतने गौ
के भार को वहन करने में असमर्थ है। नारी गौरव का यह भार बहुत
भारी है, इसके बोझ से हमारे प्राण भी पिसते जा रहे हैं। इस भार के क
इन प्राणों को निकलने का अवसर ही नहीं मिल पाता। ये अभागे और
हीन प्राण कहाँ जायँ, क्या करे? कौनसी ऐसी कठोर तपस्या है जिसमें
दिन रात रत नहीं रहीं? कौन सी बातों का हमने पालन नहीं किया
कौन से जप हमने नहीं जपे। क्या फिर भी इन सबके परिणाम स्वरूप ह

णों को यही देखने को मिला था। हाय हमारे देवता भी आज अन्धे और इरे बन गए हैं।

"अम्ब, तुम्हारे उन्हीं मुह तकता है।" (पृ० ४५७)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने उत्तर दिया "हे माता, तुम्हारे इन्हीं पुण्य कर्मों ा फल है कि आज हम सबमे इतनी शक्ति है कि हम धर्म की रक्षा कर सके। ब फल पकने का समय आया है, हमारे सुख के दिन लौट आने को हैं तब म्हारा हृदय शिथिल क्यों बन रहा है ? आज तो देवतागण उलटा तुम्हारा ुंह ताक रहे हैं।

"बेटा, बेटा कोसल्या माता। (पृ० ४५७-४५८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—शत्रुघ्न की बात सुनकर कौशल्या अत्यन्त अधीर हो उठी और उन्होंने अत्यन्त व्याकुलता भरे शब्दों मे कहा "हे पुत्र तुम्हारी ये सब बातें ेरी समझ में नहीं आतीं। बहुत दुख मैने सहन किए हैं अब और अधिक सहन करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। हाय, जो चले गए वे चले ही गए। वे रुक भी नहीं सकते थे। परन्तु जो रह गए हैं, वे यहीं रहें। हे पुत्र मैं तुन्हें नहीं जाने दूँगी, वे (राम लक्ष्मण) जब कभी भी आवें। तुम्हें ही अपना राम लक्ष्मण समझ कर अब तक मैने संतोष प्राप्त किया है, और आगे भी संतोष करती रहूँगी। परन्तु तुम्हारे चले जाने पर भी मैं सर्वथा निराधार होकर किस प्रकार रहूँगीं। देखूँ कौन तुम्हे मुझसे छीनकर ले जाता है। यह कहकर कौशल्या माता शत्रुघ्न को पकड़ कर उससे लिपट गई।

धाड़ मारकर विलख वैसा का वैसा।" (पृ० ४५८)

शब्दार्थ—पाश=बंधन। सोदर=सहोदर लक्ष्मण। नागर=चतुर, सभ्य। इति तक अथसे=प्रारम्भ से लेकर अन्त तक।

भावार्थ—शत्रुघ्न से लिपटकर सरल हृदया रानी धाड़ मार कर विलख विलख कर रोने लगी। तब शत्रुघ्न को उनके भुजपाश से छुड़ाती हुई सुमित्रा इस प्रकार बोली "जीजी उसे छोड़ दो। तुम उसे जाने दो। उसे भी अमरता प्रदान करने वाले युद्ध मे अपने भाई लक्ष्मण की गति प्राप्त करने दो। उसे

अपना आशीर्वाद प्रदान करो कि जिससे कि वह स्वाभिमानी नागर सरलता पूर्वक समुद्र पार करले। हमारे लिए तो यह सरयू जल ही पर्याप्त है। तदनन्तर शत्रुघ्न को सम्बधित करती हुई सुमित्रा ने कहा हे पुत्र तू भी उस मार्ग का अनुगामी बन जिस पर तेरे आदर्श लक्ष्मण गए हैं और इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक तू अपने कर्त्तव्य का पालन कर। जिस विधाता ने मुझे जो विशेष पुत्र प्रदान किया था (कौशल्या और कैकेयी के एक ही पुत्र था परन्तु सुमित्रा के दो पुत्र थे।) उसे मैं आज वैसा का वैसा लौटा भी रही हूँ।"

पोंछ लिया क्यो छोड़ेगी ?" (पृ० ४५८)

शब्दार्थ—नयनाम्बु=नेत्रों का जल।

भावार्थ—यह कह कर मानिनी सुमित्रा ने अपने आंचल से आँसुओं को पोंछ डाला। कैकेयी ने तब बलपूर्वक अपने आँसुओं को रोकते हुए कहा "शत्रुघ्न से पहिले भरत युद्ध में जायगा और साथ में मैं भी चलूँगी। ऐसा सुयोग भला मैं और कब प्राप्त करूँगी ? मेरे यहाँ से चले जाने पर तो आपत्ति की साक्षात् मूर्त्ति ही अयोध्या से हट जायगी। (अयोध्या की इस आपत्ति का मूल कारण कैकेयी अपने को समझती है, इसीलिए वह अपने को आपत्ति की साक्षत मूर्ति कह रही है।) आज मुझे शत्रु के देश जैसा उचित स्थान मिला है तब फिर मैं इस अवसर से में क्यों न लाभ उठाऊँ ? जिससे कि आयोध्या को आपत्ति से छुटकारा मिले और शत्रु देश विपदा से ग्रस्त हो

"अम्ब, अम्ब, तुम थीं तुम।" (पृ० ४५८--४५६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—कैकेयी के कथन को सुनकर शत्रुघ्न ने कहा "हे माता तुम इस प्रकार आत्मभर्त्सना क्यों कर रही हो ? हमें ऐसा नया यश प्रदान क अपयश से क्यो डर रही हो ! हे माता क्षमा करो एक बार मुझे भी तुम आपत्ति के समान ही जान पड़तीं थीं परन्तु बाद में अनुभव हुआ कि तुम हमा लिए मार्ग प्रदर्शन करने वाली ज्योति के समान प्रकाश मान हो रही थीं।

"वत्स, वत्स, पर अरि सगर मे !" (पृ० ४५६)

शब्दार्थ—अरि-सगर=शत्रु-युद्ध।

भावार्थ—कैकेयी ने कहा परन्तु हे पुत्र मेरे हृदय की इस ज्वाला को

ा जानता है ? उसके माथे पर तो अब भी वही कलक का काला टीका है ।'
ा ुघ्न ने उत्तर में कहा "हे माता जो स्वय जलता है, कष्ट सहन करता है
ी स्वय जाग कर दूसरो को जगाता है । जो इतनी साधारण सी बात भी
हीं जानता वह अपने आप को धोके में ही रखता है ।" कैकेयी ने कहा "मै
पने पति के साथ राक्षसों से युद्ध करने के लिए रण भूमि में गई थी, अब
त के साथ भी शत्रु से युद्ध करने जाऊंगी ।"

"घर बैठो तुम भला कहीं तो ।" (पृ० ४५६)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—कैकेयी को सम्बोधित करते हुए शत्रुघ्न ने कहा "हे देवी,
म घर ही रहो । वह स्वर्ण की लका है ही कितनी । मुट्ठी भर धूल के बरा-
र भी तो वह नहीं है । अतः उसे पराजित करना कोई बड़ा काम नहीं है ।
रत खंड के हम पुरुष अभी तो जीवित हैं । शत्रुओं का मर्दन करने वाले
नके करोड़ों हाथ अभी कट नहीं गए हैं । इसलिए यह सब रोना धोना
याग कर विजय के मंगल गीत गाओ । हम विजय के लिए प्रस्थान कर रहे
, यह गौरव की भावना हमारे हृदयो में जगाओ । जब वन मे जाते हुए
ामचन्द्र जी का साथ लक्ष्मण ने नहीं तजा वे भी उनके साथ बन गए तब
रत के जाने पर शत्रुघ्न घर कैसे रह सकता है । वह भी साथ ही जायगा ।
सके बाद उर्मिला की ओर उन्मुख होकर बोले "हे भाभी सुनो, थोड़े समय
े लिए और इस विपत्ति को सहन करो । क्योंकि अब शीघ्र ही सब बाधाओं
ा अन्त होने वाला है । आर्य भरत का तुम्हारे लिए यही सदेश है "मैं भी
लक्ष्मण के मार्ग का अनुगामी बन रहा हूँ । उन्हीं को साथ लेकर घर वापिस
लौटूंगा अन्यथा लौटकर नहीं आऊंगा । नही नहीं वे मुझे कहीं न कहीं
अवश्य मिलेंगे ।"

"देवर, तुम निश्चिंत कब तक छूटी ।" (पृ० ४६०)

शब्दार्थ—सरल है ।

भावार्थ—उर्मिला ने उत्तर देते हुए कहा "हे देवर मेरी ओर से तुम
निश्चिन्त रहो । मै रो ही कब रही हूँ ? किन्तु अपने सम्बन्ध में मुझे यह
निश्चय नहीं है कि मैं जाग रही हूँ अथवा सो रही हूँ । जो भी हो, मै तो

आज आँसुओं के स्थान पर इस विश्वास का पान कर रही हूँ कि जब मैं यह जीवित ,हूँ तो वे भी वहाँ अवश्य जीवित होंगे। 'तुम विजयी बनो' य आशीर्वाद देने के पश्चात् उर्मिला श्रुतकीर्ति से बोली "हे बहिन, तनि रोली तो लाना। मैं इनका टीका कर दूँ। इन्हें शीघ्र ही युद्ध के लिए प्रस्था करना है। मुझे जीजी के सम्बन्ध में इतनी चिन्ता नहीं है, जितनी राक्ष कुल की उन अनाथ बधुओं के लिए है, जिनके पति युद्ध में हमारे वीरों द्वार मारे जायँगे। आज सीता रूप में नीरव बिजली लङ्का पर टूट पड़ी है, पर वह कब तक अपने घनश्याम से अलग रह सकेगी। अर्थात् शीघ्र ही राम औ सीता का मिलन होगा।

स्तम्भित-सा था .... जीवन धारा।" (पृ० ४६०)

शब्दार्थ—स्तम्भित=निस्तब्ध।

भावार्थ—वीर शत्रुघ्न क्षण भर के लिए स्तम्भित रह गए। उनके मा पर रोली का टीका लगा हुआ था। अन्त में पैरों पर गिर कर श्रुतकीर्त्ति अप को सँभालते हुए बोली "हे स्वामी जाओ, मेरे हृदय की आज यही अभि लाषा है कि मेरे लिए भी जीवन की वही गति उचित है जो आज जीज उर्मिला की है। जिन्होंने (उर्मिला, लक्ष्मण ने) सदैव ही हमारे मान क रक्षा की, हमें अत्यन्त प्यार किया, छोटे होकर भी हम जिनसे बढ़कर सौभाग्य शाली हुए, जिनके कारण हमारा यह भाग्य दुगना हो गया, उन्हीं में हम दोनों की जीवन धारा भी मिल जाए। हम भी पूर्णतः उन जैसे बन जायँ।

"अर्द्धाङ्गी से प्रिये .... वह संभालकर। (पृ० ४६१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—अपनी पत्नी श्रुतकीर्त्ति के कथन से अत्यन्त सतुष्ट होक शत्रुघ्न ने प्रसन्नता पूर्वक कहा "हे प्रिये, मुझे तुम जैसी अर्द्धाङ्गिनी से यह आशा थी। हे शुभे, मैं तुमसे और क्या कहूँ? तुम्हारी मुँह माँगी अभिलाष अवश्य पूर्ण होगी।" यह कहकर वीर शत्रुघ्न ने चारो ओर दृष्टि डालक देखा और तत्काल ही अपने आप को सँभालकर वह चले गये।

मूर्च्छित होकर गिरी .... पर छाया। (४६१)

शब्दार्थ—सोपान=सीढियाँ। ऋषभ=सगीत का एक स्वर विशेष। मात्स्य-

कोश=एक राग का नाम है जिसके स्वर मे वीर और रौद्र रस की प्रधानता रहती है।

भावार्थ—इधर कौशल्या रानी मूर्च्छित होकर गिरी उधर आत्माभिमानी गृह दीपक के समान शत्रुघ्न अट्टालिका पर चढा हुआ दिखाई दिया। यह एक साथ ही दो दो सीढ़ियाँ पारकर राजतोरण पर ठीक उसी प्रकार आ पहुँचा जैसे ऋषभ को पार कर माल्यकोश स्वर पर छा जाता है।

नगरी थी निस्तब्ध उसे निहारा। (पृ० ४६१–४६२)

शब्दार्थ – क्षणदा = रात्रि । ताराहारा = तारो को हार की भाति धारण करने वाली, चन्द्रमा।

भावार्थ—रात्रिकाल की छाया में अयोध्या नगरी बिल्कुल निस्तब्ध पड़ी हुई थी। स्वप्न अपने जादू से हम सबको भुला रहे थे। जीवन और मरण परस्पर की समान प्रतिस्पर्द्धा के उपरान्त स्वयं ही समझ कर रात्रि के पिछले पहरों मे शात बन गए थे। अर्थात् रात्रिकाल मे निद्रा मे मग्न ससार के लिए जीवन और मरण का कोई भेद नहीं था। उस समय एक प्रकार जड़ और चेतन का अन्तर ही मिट गया था।

नगरी के पार्श्व में सरयू नदी इस प्रकार निद्रा में मग्न हो रही थी मानो स्वय उसी के (सरयू के) तट पर हसो की पक्तियाँ सोई हुई हों। जल आगे बढता जा रहा था और उसके पीछे आता हुआ जल उसका स्थान लेता जा रहा था इस प्रकार सरयू का बहता हुआ जल निरन्तर गतिशील था। अतः सरयू का किनारा अपनी गोद जल से भरी की भरी ही पाता था। सरयू के रूप में पृथ्वी पर मानो एक स्वच्छ चादर बिछी हुई थी। जो तरगित होने पर भी वह कहीं से मैली नहीं हुई थी। वह तो तारो के हारों को धारण करने वाली अथवा ताराहारा अर्थात चन्द्रमा के प्रकाश में चाँदी की सुन्दर और चपल धारा के समान प्रतीत होती थी। एक दीर्घ निश्वास लेकर वीर शत्रुघ्न ने उस सरयू नदी की ओर देखा।

सफल सौध-भू-पटल दमको दमको। (पृ० ४६२)

शब्दार्थ—सौध-भू-पटल = राजमहल की छते। मुकुर=दर्पण। उडुगण= तारे। मीन मकर=मछलियाँ और मगरमच्छ तथा राशियो के नाम। वृष-

सेंह = बैल और सिंह तथा राशियो के नाम। धूम-धूप=धुएँ की धूप। लिपि मुद्राओ=लिखिति चिन्हो। स्नेह=प्रेम, तेल।

भावार्थ—राजमहल की विशाल छते आकाश के लिए स्थायी दर्पण के रूप में सफल हो रही थीं। उस छत रूप दर्पण में तारों का समूह अपना रूप टुकुर टुकुर देख रहा था। उच्च अट्टालिकाओ पर ध्वजाए फर फर करती हुई फहर रही थी। भर भर करती हुई मधुर वायु चारो ओर सुगन्ध फैला रहीं थी। मीन, मकर, बृष, सिंह राशियो से युक्त गहरा नीला आकाश स्वय इस सशय में पड़ा हुआ था कि वह मछलियो और मगरमच्छो से भरा समुद्र है अथवा बैलो और सिहो से पूर्ण वन है। ये आकाश के झिलमिलाते हुए तारे ऐसे प्रतीत होते थे मानो हवा के झोको से हिल रहे थे। वे गगन के दीपक परस्पर हिलमिल कर अत्यन्त आनन्द पूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे। अन्धकार की गोद में निर्भय होकर जब वे तारे पल रहे थे तब अयोध्या के स्नेह से पूर्ण दीपक प्रकाश बिखेरते हुए जल रहे थे। हे उच्च ताराओ इन नगर दीपो के धूंए की धूप को स्वीकार करो और चमको। हे पृथ्वी वासियोके भाग्य के लिखि चिह्नो तुम सदैव दमकते रहो (नक्षत्रो को भाग्य निर्धारक माना जाता है)।

करके ध्वनि सकेत   तत्क्षण रणभेरी। (पृ० ४६२-४६३)

शब्दार्थ—अन्तर = हृदय। आह्वान = पुकार। कम्बु = शख। अनुकृति = अनुकरण। रणभेरी = युद्ध के नगाड़े।

भावार्थ—वीर शत्रुघ्न ने तब ध्वनि सकेत करते हुए शख बजाया। उस शख की ध्वनि मे मानो शत्रुघ्न के हृदय की पुकार बाहर निकल आई हो। उनके हृदय के उच्छ्वास वक्षस्थल से उभर उभर कर बाहर निकल उठे। शख भी उनके कठ का अनुकरण कर कृतकृत्य हो गया। शत्रुघ्न की शख ध्वनि के प्रत्युत्तर म भरत ने भी शख ध्वनि की। इस प्रकार एक और एक दो इकाइयाँ मिल कर ग्यारह बन गई। भरत और शत्रुघ्न की शख ध्वनि सुनकर शीघ्र ही असख्य शख बजने लगे। तत्काल घनन घनन का नाद करती हुई रणभेरी गरज कर बज उठी।

काँप उठा आकाश   का पत्ता पत्ता। (पृ० ४६३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—रणभेरी का नाद सुनते ही आकाश काँप उठा और भूतल चौंककर जाग उठा। निद्रा भयभीत होकर भाग गई और कहीं क्षितिज में जा छिपी। बन में मोर बोल उठे और नगर में नागरिक जन डोलने लगे। चारों ओर कोलाहल छा गया मानो सैकड़ो स्वर सागर परस्पर टकराते हुए अपनी तरंगों को भग कर रहे हो। अयोध्या का समस्त पुरुष समुदाय मानों क्रुद्ध हो उठा। साकेत नगरी का पत्ता पत्ता सजग और सावधान होगया।

भय-विस्मय का   जिनके तप ने!" (पृ० ४६३)

शब्दार्थ—सुभट कर=योद्धाओं के हाथ। त्रस्त वधू=डरी हुई वधुए। हस्त=हाथ। स्रस्त=सरकते हुए, अस्त व्यस्त।

भावार्थ—अयोध्या के शूर वीरो ने इस अचानक रणभेरी के नाद से उत्पन्न अपने हृदय के भय और विस्मय को शीघ्र ही अपनी वीरता के गर्व और अभिमान से नष्ट कर दिया। अयोध्या के इन शूरवीरो को चुनौती देकर किसने यहाँ के सोते हुए सर्प को जगा दिया। सोते हुए योद्धाओ के हाथ अपनी प्रियतमाओं के गले से छूटकर शस्त्रों पर आ पडे। डरी हुई वधुओ के हाथ अपने अस्तव्यस्त वस्त्रो को सभालने लगे। अपने प्रियतम को अपने निकट ही पाकर उन्हें कुछ साहस हुआ और उन्होंने हाथ बढ़ाकर और पैर टेक कर शीघ्र ही दीपक जलाया। माताऐ अपनी चिंता भूल कर शीघ्र ही अपने बालको के पास पहुँची और थपकियाँ देकर उन्हें सँभालती हुई कहने लगी "अरे-हमें डर ही किस बात का है, जब कि हमारे राजा राम हैं। जिनके तप के प्रसाद ने पहिले ही भरत जैसा श्रेष्ट फल हमें प्रदान किया है।

चरर मरर खुल गए   खोल झरोखे। (पृ० ४६४)

शब्दार्थ—स्वरस्फुटो से = भिन्न-भिन्न ध्वनियो से। उरःपुटो=हृदय का आवरण। आयुध = अस्त्र। पचानन = सिंह, शकर। गिरि गुहा=कैलाश पर्वत और गुफा।

भावार्थ—किवाड़ो के खुलने की चरर मरर ध्वनि की भाँति वीरों के हृदय रूपी कपाटों से उत्साह और विस्मय की अनेक ध्वनियाँ चारो ओर गूँज तो उठीं परन्तु उनका स्वर उन विकट योद्धाओं के हृदय रूपी आवरण से ढक जाने के कारण कुछ अवरुद्ध सा बन गया था। (अर्थात् योद्धागण उत्साह

और उमग से भरे होने पर भी अपनी वीरता की डींग नहीं हाँक रहे थे। उनकी वीरोचित भावनाएँ उनके हृदय में ही मचल रही थीं।) प्रत्येक योद्धा मन भावने पाच पाच शस्त्रों को धारण किए हुए था। ऐसा प्रतीत होता मानो सिंह अथवा प्रलयकारी शिव अपनी गुफा या कैलाश पर्वत को छोड़कर वाहर निकल आए हो। स्त्रिया दीप जलाकर और झरोखे खोलकर बाहर देखने लगीं कि मणियों के धोके में कौन यहाँ आग धरने चला आया। (अथवा अयोध्या में शत्रु को मणिया नहीं अग्नि की ज्वाला ही हाथ लगेंगी।)

"ऐसा जड़ है कौन जनजन में।" (पृ० ४६४)

शब्दार्थ—जड़=मूर्ख। माडलिक=नरेश।

भावार्थ—अयोध्या के नर नारी यही विचार रहे थे कि ऐसा कौन मूर्ख है जिसने अयोध्या पर आक्रमण किया है। क्या कहीं कोई ऐसा भी स्थान है जहा हमारा यह सैना दल बढ सके ? अर्थात कोई ऐसा स्थान नहीं है जो हमारे सैन्यदल का मुकाबिला कर सके। राम अयोध्या में नहीं है यही सोच-कर तो किसी राज्य के लोभी और मोही नरेश ने विद्रोह तो नहीं कर दिया। तब तो राम को बन में समझने वाला वह भाग्य हीन शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगा, क्योंकि राम तो यहा प्रत्येक अयोध्यावासी के हृदय में रमे हुए हैं।

"पुरुप वेश में मानस-मोती ?" (पृ० ४६४-४६५)

शब्दार्थ—अनन्तर=पश्चात। धात्रिया = माताएँ। क्षण भंग=क्षण-भगुर, नश्वर।

भावार्थ—वीर पत्निया अपने पति से कहने लगीं "हे प्रियतम मैं भी पुरुप वेश मे तुम्हारे साथ चलूँगीं। जब श्रीराम और जानकी साथ-साथ बन गए हैं तब हम क्यों अलग रहें।" पति उन्हें समझाते हुए कहने लगे "हे प्रिये उर्मिला रानी की भाति तुम घर पर ही रहो। क्राति के पश्चात जैसे अभिलषित शाति प्राप्त होती है वैसे ही युद्ध के उपरान्त तुम हमें मिलो।"

पुत्रों को युद्ध के लिए विदा माँगते हुए देखकर धैर्यवान माताए वोलीं 'राम काज के लिए हे वेटा जाओ। यह शरीर तो क्षणभगुर है। इसकी ममता करना उचित नहीं।" पति से पत्निया कहने लगी "हे स्वामी जाओ,

तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारे मार्ग का अनुगामी बने। जाओ अपने रामराज्य की प्रतिष्ठा में वृद्धि करो। अपने वीर वंश की मर्यादा और देश के गौरव को बढ़ाओ। उत्तर में पुत्र ने मा से कहा "हे माता तुम्हारा पुत्र युद्ध में पीछे नहीं हटेगा।" पति ने पत्नी से कहा "हे प्रिये तुम्हारा पति युद्ध में मृत्यु से भी नहीं डरेगा।" अरे अब भी तुम व्याकुल होकर रो रही हो?" वीर माताओं और पत्नियों ने तब उत्तर में कहा—हम रो नहीं रही हैं? अपने मानस के मोती तुम पर न्यौछावर कर रही हैं।

ऐसे अगणित भाव मार थपेड़े। (पृ० ४६५)

शब्दार्थ—रघु-सगर=रघु और सगर नृपति रामचन्द्रजी के पूर्वज। बगर उठे=फैल गए। अगर तगर=सुगंधित द्रव्य। डगर डगर=गली गली में। काषाय बसन धारी=गेरुए वस्त्र धारण करने वाले। बलाध्यक्ष=सेनापति।

भावार्थ—रघु और सगर के नगर साकेत की गली गली में इसी प्रकार के असंख्य भाव उठकर अगर और तगर की सुगंधि की भाँति फैल गए। गेरुए वस्त्र धारण करने वाले सभी मंत्री जन चिंतित भाव लिए तथा यंत्र तंत्रों के अनेक विशेषज्ञ तत्काल ही वहाँ आ पहुंचे। जल और स्थल के सेनापति अपने सैन्य समुदाय को सजा रहे थे। झनझन घन घन करते हुए अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे बज रहे थे। पाल उड़ाती हुई नावें मानों अपने पंख फैलाकर इस प्रकार तैयार खड़ी थीं कि आदेश मिलते ही हंसिनियों की भाँति चाहे जहां उड़ कर जा सकें। पंक्तियों में बँटे हुए जहाज हिलने डुलने लगे। लहरें अपने थपेड़े मारकर जैसे उन्हें थपकियां दे रहीं थीं।

उल्काएँ सब ओर झङ्कार पथों में। (पृ० ४६५-४६६)

शब्दार्थ—उल्काएं=मशाल। हतप्रभ=जिसकी श्री नष्ट होगई हो। नभो जड़ित=नभ में जड़े हुए। मुक्ताओं सा=मोतियों सा। अनियों=सिरे। सादियों=सवारो। तुरग=घोड़े। उत्कर्ण=कान खड़े किए हुए। शुण्डों में=सूंडों में। रदंड=दाँतों के रूप में डंडे। तुंडों=जबड़ों। ऊष्मा=गर्मी। श्रुति-तालवृन्त=कानों का पंखा। दन्ती=हाथी। सार=लोहा। स्नेह=प्रेम सहित।

भावार्थ—मशालें सब ओर प्रकाश फैला रही थीं। उनकी जलती हुई लौ ऐसी प्रतीत होती थी [illegible]

रही हों। आकाश मे जड़े हुए हीरे की कनियां (तारो) की आभा इस भ
से फीकी पड़ गई थी कि कहीं भालों की नोक उन्हें मोतियों की भाँति वेध न
ले। वे स्वच्छ और सधे हुए खड्ग खुले होकर चमचमा रहे थे। आवेश में
भरे घुड़सवारों के घोड़े क्रोध से तमतमा रहे थे। वे हींसते हुए लगामें चबा
रहे थे और पृथ्वी को खूद रहे थे। वायु के वेग के समान उड़ने को तत्पर
कान उठाए कभी वे कूदने लगते थे। हाथियों का समुदाय अपने गले में बँधे
हुए घण्टों का नाद करते हुए अपनी सूंडों मे शस्त्र लेकर तथा अपने जबड़ों
मे दात रूपी दो दो दृढ डडे दबाकर अपने मद की गर्मी को सहन करने के
कारण स्वय ही कान हिला हिला कर पखा झल रहे थे। योद्धाओं का प्रिय
धन तो सोने की अपेक्षा लोहा ही है। यदि हाथ में लोहा हो तो सुवर्ण पैरों
पर न्यौछावर होता है। रथ में वैठकर जाने वाले योद्धा रथों में बैठकर चले
वे इस प्रकार चले जैसे अपने उनके साथ उनका परिवार भी चल रहा हो
। उनके आगे मार्ग मे धनुषों की टङ्कार और युद्ध के बाजों की झकार गूँज
रही थी।

पूर्ण हुआ चौगान जगमगा रहे थे। (पृ० ४६६-४६७)

शब्दार्थ—चौगान=युद्ध आदि के साजबाज। उन्निद्र=उनींदे। अरुण
लाल। जरट=बुड्ढे। पीवर=मोटे। अस=कधे। पृथुल=भारी। मणिबन्धों
कलाइयों। लचित तरणि=सूर्य से चिन्हाङ्कित। उद्ग्रीव=ऊँची गर्दन करके

भावार्थ—राजमहल के मुख्य द्वार के आगे युद्ध के सब साजबाज एक
त्रित हुए। सभी योद्धागण यही कह रहे थे कि हमारे भाग्यहीन शत्रु कह
हैं? असमय में ही जगा देने के कारण उन योद्धाओं के अलसाए नेत्र क्रो
से और भी लाल हो गए थे। प्रौढ और वृद्धजन भी आज तेज में तरुण जै
बन गए थे। योद्धाओं के स्थूल और माँसल कन्धे, भारी वक्षस्थल और लम्ब
बाहें थीं। वे चाहते तो अकेले ही शेष नाग की भाँति पृथ्वी का भार उठा सक
थे। उनके बालों के गुच्छे उछल-उछलकर उनके कन्धों पर बिखर रहे थे
उनकी दृढ़ कलाइयों पर रत्न के कंकण क्रीड़ा कर रहे थे। सूर्य के चिन्ह
अङ्कित और मणियों से बने हुए झडे फकफक कर रहे थे। वस्त्र धकध
कर रहे थे और शस्त्र चमक रहे थे। ऊँची गर्दन करके लोग इस दृश

को ध्यान लगाकर देख रहे थे। नगर नगैया जगमग करके जगमगारहे थे।

लतर अरिंदम स्वर घन-सा। (पृ० ४६७)

शब्दार्थ—अरिन्दम = शत्रुघ्न। दृप्त=तेजयुक्त। निःस्वन=जिसमें किसी प्रकार का शब्द न हो।

भावार्थ—वीर शत्रुघ्न राजमहल के प्रथम खण्ड पर आकर ठहर गए। उस समय उनके तेजस्वी मुख का रग तपाए हुए सोने की भाँति गहरा था। जैसे ही उन्होंने सब को शान्त करने के लिए हाथ उठाया सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उस सैन्य समुद्र मे पहले जहा ज्वार के समान कोलाहल था वहाँ अब भाटे की सी शाति छा गई। सूर्य का मौन प्रकाश सदैव शब्द रहित होकर फैलता है। परन्तु वीर शत्रुघ्न का उदय जहा सूर्य के समान था वहाँ उनका स्वर बादलों का सा था। इस प्रकार शत्रुघ्न के उदय में प्रकाश भी था और ध्वनि भी थी। अलंकार—व्यतिरेक।

"सुनो सैन्यजन भटकेंगे क्यों? (पृ० ४६७-४६८)

शब्दार्थ—क्लीव=नपुंसक। साके=कीर्ति, यश। अर्गल=किवाड, द्वार। भव्य भोग=सासारिक ऐश्वर्य। दिव्य योग=दिव्य साधना। धृतिधाम=धैर्य के धाम। मकरालय=समुद्र।

भावार्थ—शत्रुघ्न ने सैन्य समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा "हे सैनिक बृन्द सुनो, मैंने असमय में अचानक ही तुम्हें नहीं जगाया है, अपितु आज एक नया अवसर हमें प्राप्त हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि जो आकस्मिक होता है वह सदैव आकर्षक भी होता है। यह तो एक सर्वमान्य तथ्य है कि जो बोता है वही काटता भी है। अर्थात् जो प्रयत्न करता है वही फल पाता है। नपुंसक और कायर जन तो जागकर भी वास्तव में सोते रहते हैं। परन्तु शूरवीर कीर्त्ति के अवसर को स्वप्न में भी नहीं खोता। हे शूरवीरो आज वही कीर्त्ति प्राप्त करने का अवसर सामने उपस्थित हुआ है। हमारी पताका आज समुद्र पार उड़ रही है। समुद्र, अरे समुद्र अब रहा ही कहाँ? अब तो वह जल भी स्थल के समान बन गया है। उस पर विशाल पुल बाँध गया है। पुल के रूप में अब जैसे आर्य कुल का द्वार ही खुल गया है। यह सब पुरुष श्रेष्ठ प्रभु रामचन्द्रजी ने ही किया है जिन्हें हमने युग धर्म के

प्रतिनिधि के रूप में पाया है। चिरन्तन सत्य की साक्षात् मूर्त्ति होकर भी जो नित्य नवीन हैं। जिन्होंने सासारिक सुख-भोग को त्यागकर दिव्य साधना के लिए बन की ओर प्रस्थान किया है। हम बड़ी आतुरता से जिनकी बाट जोह रहे हैं कि वे कब आवे? कब हम अपने धैर्य के धाम राजा रामचन्द्रजी को पुनः प्राप्त करे? इसलिए हे वीरो आओ और उन प्रभु रामचन्द्रजी का अनुसरण कर उन्हें आगे करके ले आवें। हमारा मार्ग तो पहले से ही बना-बनाया है। हमे तो केवल उस पर चलना मात्र है। उस मार्ग के बीच में तो मगर आदि जल-जन्तुओ से भरा समुद्र भी बाधक नहीं बन सका। प्रभु रामचन्द्रजी ने उसे पहले ही स्वच्छ कर दिया, फिर भला हम बीच में कैसे अटकेंगे? इस मार्ग पर तो हमारे सम्मुख पहले ही प्रभु के चरण चिह्न बने हुए हैं, फिर हम मार्ग भूलकर कैसे भटकेंगे?

दुर्गम दक्षिण खल छल से। (पृ० ४६६-४७०)

शब्दार्थ—क्रव्याद=मॉसाहारी जीव, राक्षस। थाना=स्थान। भुक्ति-मुक्ति =भोग और मुक्ति, लौकिक और पारलौकिक। अचल=पर्वत। भुजग = सर्प। तनय=पुत्र। निशाचर पति=राक्षसराज रावण।

भावार्थ—अपने मन में दक्षिण प्रदेश को अत्यन्त दुर्गम समझकर प्रभु चित्रकूट से दण्डक बन की ओर आए। जहाँ शकाएँ होती हैं वही स्थान तो धैर्यवानो की बुद्धि के लिए कसौटी स्वरूप है। जहाँ आशकाएँ और भय रहते हैं वहीं तो वीर जनो की वीरता प्रगट होती है। उस दण्डक बन में लका के मॉसाहारी जन राक्षस लोग आ-आकर विचरते थे। उनके हाथों नित्य भोले-भाले दयावान, शात ऋषि मुनि मृत्यु को प्राप्त होते थे। तब फिर आर्य उन्हें मारकर अपना बन जाना सफल क्यों नहीं बनाते? उनके रहते हुए पुण्यभूमि आर्यावर्त्त मे पापियों का निवास कैसे बना रह सकता था। वैसे इस भरत प्रदेश भारतवर्ष का द्वार तो ससार के लिए खुला है। यहाँ भोग और भुक्ति अर्थात् लौकिक और पारलौकिक सुखों का समुचित योग है। सभी दृष्टियों से यह क्षेत्र पूर्ण है। परन्तु जो इस प्रदेश में अत्याचार करने आवेगे उन्हें नरक में भी स्थान न मिलेगा, और अन्त में उन्हें पछताना ही पड़ेगा। प्रभु ने वहाँ जाकर धर्म पर आया हुआ यह सब सङ्कट दूर किया। सर्वत्र उन्हें विजय

मिली मानो विजय लक्ष्मी ने स्वयं ही आकर उनसे भेंट की। दुष्ट राक्षस जन सैन्य बनाकर क्रोधित होते हुए उनसे युद्ध करने आए, परन्तु उनमें से कोई भी जीवित बचकर नहीं जा सका। युद्ध में शत्रु झाड़ झङ्खाड़ों की भाँति उड़े परन्तु वे प्रभु के ज्वाला के समान तीरों की अग्नि में पड़कर भस्म हो गए। वायु के सैकड़ो झोंके भी क्या पर्वत को हिला सकते हैं? सौ साँप भी एक गरुड़ का क्या बिगाड़ सकते हैं? अन्त में राक्षसो के विनाश का यह सवाद उस रावण तक पहुँचा जो कि गो, ब्राह्मण, देव और धार्मिक कार्यों का सबसे बडा शत्रु है। सम्भवतः माँ कैकेयी ने इसी रावण रूपी कुटिल काँटे को निकाल कर ससार का भय दूर करने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी को वन मे भेजा है। उस राक्षसराज रावण ने तपस्या करके ब्रह्मा से अपरिमित वैभव प्राप्त किया। वही अनन्य पापो का भागी बनकर राम से मरने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु जब शक्ति से यह पापी प्रभु का सामना न कर सका, तब उस दुष्ट ने छल से साधु वेश धारण करके अबला सीता को हरने का निश्चय किया।

सुनने को हुँकार पालन करना। (पृ० ४७०)

शब्दार्थ—जयाजय=जय-विजय।

भावार्थ—सीता हरण की बात सुनकर सैन्य-समुदाय ने क्रोध से हुँकार भरी। तब शत्रुघ्न ने कहा "हे सैनिको, तुम्हारी यही हुँकार सुनने के लिए, जिसे सुनकर शत्रु भी अपनी सुध-बुध खो बैठे, अचानक ही मैंने आज तुम्हें जगाया है। शत्रु पर आक्रमण के लिए तुम जाग खड़े हुए हो। तुम्हें देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि विजय तो पहिले से ही हमारे सम्मुख नाच रही है। परन्तु यह विजय तो वीरों के जीवन की ही नहीं, उनके मरण के भी आश्रित है। वास्तव में वीरो का शाश्वत जीवन तो युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने मे ही है। हमे तो जय-विजय और जीवन-मरण की बात भूलकर अपना कर्त्तव्य पालन करना है।

जिस पामर ने आख्यान हमारा। (पृ० ४७०–४७१)

शब्दार्थ— पामर=नीच, पापी। पाप कर=पापी हाथ। आख्यान=कहानी,

वृत्तान्त । सुवर्ण=सोना, सुन्दर अक्षर ।

भावार्थ—जिस नीच पापी ने उस पतिव्रता सीता को हाथों से स्पर्श किया, जिन्होंने कि उसके अपरिमित वैभव को ठुकरा दिया, उसी दुष्ट रावण के पापी हाथ काटने में प्रभु रामचन्द्रजी स्वय ही समर्थ हैं । उनके बाण उसके शरीर को छेदकर प्राण लेने में सर्वथा सजग और तत्पर हैं । परन्तु उस रावण से प्रतिशोध की भावना हमें पुकार रही हैं । हमारा गौरव जाग्रत होकर हमें जगा रहा है। हमारा ज्ञान ही हमें उस ओर खींच रहा है। अतः अब तो शत्रु की लङ्का के सोने से अथवा सुन्दर वर्णों से हमारा वृत्तान्त लिखा जावे ।

हाय ! मरण से नहीं दश ले लें । (पृ० ४७१–४७२)

शब्दार्थ—कारा=बन्धन । सुरापी=मद्यपान करके । अपकर्षण=अपमान । मर=मृत्युलोक के प्राणी ।

भावार्थ—हाय राक्षसों के बन्धन में पड़ी हुई हमारी सीतादेवी आज मृत्यु से भयभीत नहीं हो रहीं, अपितु जीवन उन्हें असह्य हो रहा है । वे बंदी गृह में पड़ी हुई हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं । व्याध के जाल में राज-हंसिनी के समान वे पड़ी हुई हैं । नारी जाति का यह अपमान उन सभी का अपमान है जो अपने को शक्तिवान कहते हैं । सती धर्म का आदर ही सबसे बड़ा गौरव है । हे वीरो जीवन और मृत्यु तो सदैव ही इस ससार में आते जाते रहते हैं परन्तु उनका उचित उपयोग विरले ही कर पाते हैं । इसलिए हे वीरो तुम जहाँ भी शत्रुओं को देखो निडर होकर उन्हें यम लोक पहुँचाओ । मरने के बाद भी उनका पीछा मत छोड़ो । भूत बनकर उनके पीछे लग जाओ । अपने स्वजनों के बिना तो मुक्ति भी बंधन है । परन्तु अपने लोगों के साथ रहने में तो नरक भी स्वर्ग तुल्य है । तुम्हारे होते हुए वे नीच दुष्ट राक्षस इस पवित्र धरती पर पैर रख सके, वे मद्यप हमारी कुल लक्ष्मी का हरण कर सकें ? इसलिए हे वीरों उनके रुधिर को अपनी अजलियों में भर कर अपने बन्धु बाधवों का तर्पण करो । उनके बचे हुए मास को जटायु के समान पुण्य-वान जनों को अर्पित कर दो । यात्रा में सबसे बड़ा शकुन तो हृदय का उत्साह ही होता है । हमें फल की चिंता नहीं है धर्म पालन ही हमारा मुख्य लक्ष्य है । मनुष्य ही क्या देवता भी हमारे कर्मों के अधीन हैं । वे हमारे मन, बुद्धि

और हृदय की भावनाओं के स्वय साक्षी हैं। रीछ, बन्दर आदि जंगल की वे जातियाँ भी धन्य है जो इस अपमान को नहीं सह सकीं। वे आज उछल कूद कर बादलो की भाँति भीषण संघर्ष कर रहे हैं। हे नर श्रेष्ठ चलो ऐसा न हो कि वे वानर तुमसे पहिले ही राक्षसों का सहार कर यश के भागी बन जाएं। वे यदि रावण की बीस भुजाए प्राप्त करें तो उसके दस मस्तकों को काटकर तो हम हीं प्राप्त करें।

साधु ! साधु ! थी को लूटो।" (४७२-४७३)

शब्दार्थ—वाम=कुटिल, दुष्ट। भुक्त=भोगे हुए। अजिर=घर। आजनेय= अजना पुत्र हनुमान। खर शक्ति=तीक्ष्ण शक्ति।

भावार्थ—अपनी बात का सैनिकों की ओर से सन्तोष-जनक अवसर पाकर शत्रुघ्न ने पुनः कहा "साधु, साधु, मुझे तुम लोगो से ऐसी ही आशा थी। बस अब उन दुष्ट वैरियों का नाम मात्र ही शेष रह जाय कोई अस्तित्व न रहे। निश्चय ही हमें उन्हें मारना है अथवा स्वय मर जाना है। परन्तु जब हमें मृत्यु से ही भय नहीं है तब फिर भला और किस का डर हो सकता है। यह संसार तो हमारे लिए एक क्यारी के समान है जिसमें हम बोए गए और एक पौधे के समान उग उठे। काल रूपी माली जब हमें यहाँ से उखाड़ कर ले चलता है तब हम रोते हैं। परन्तु हे भाइयो, वह माली हमें यहाँ से उखाड़ कर जिस दूसरे स्थान पर बोएगा क्या वह इस भोगे हुए अथवा पुराने स्थान से अधिक उपयुक्त नहीं होगा। तथापि आज तो हमारी स्वयं यम को भी चुनौती है क्योंकि प्रसिद्ध और आश्चर्य जनक सजीवनी औषधि हमे प्राप्त है। जिसकी परीक्षा स्वय अंजना पुत्र हनुमान ने अपने ऊपर की है और वे आकाश को पार कर उसे ले गए हैं। लंका की तीक्ष्ण शक्ति आर्य लक्ष्मण ने अपने शरीर पर झेली और उन्हीं की रक्षा का भार उस महा औषधि ने अपने ऊपर लिया। प्रभु ने कुख्यात क्रूर कुम्भकर्ण को भी मार डाला। राक्षस वंश का विभीषण प्रभु की शरण में आकर मनुज वंश का अनुयायी बन गया। हे वीरों अब देर ही क्या है, बस तीरों की भाँति छूट पड़ो और उस शत्रु की स्वर्ण नगरी लका को लूट लो।

"नहीं, नहीं"-सुन शूल विकट था। (पृ० ४७३)

शब्दार्थ—वीणागु लि=वीणा के तारों को बजाती हुई अँगुली। लाल पूर्ति=लाल का साथ देने वाली। कार्तिकेय=देवताओं के सेनापति और, शिवजी के पुत्र। भवानी=पार्वती। प्रथमातप=प्रभात कालीन सूर्य का प्रकाश। शूल=त्रिशूल।

भावार्थ—शत्रुघ्न द्वारा लका की स्वर्ण पुरी को लूटने का आदेश देते पर अकस्मात "नहीं नहीं" का स्वर गूँज उठा, जिसे सुनकर शत्रुघ्न और अन्य सैन्य समुदाय चौंक पड़े। रात्रि के उस अन्धकार में उर्मिला ऊषा के समान उस स्थान पर उदित हुई। वीणा के तारों को बजाने वाली उँगली की गति के समान उर्मिला अपने प्रासाद से उतर कर राज के मुख्य द्वार पर चढ़ आई। वीणा की स्वर लहरी का साथ देने वाली ताल के समान सखी भी उसके साथ खिची चली आई। लक्ष्मण की रानी उर्मिला शत्रुघ्न के समीप आकर इस प्रकार रुक गई मानो देवताओं के सेनापति कार्त्तिकेय के निकट साक्षात पार्वती ही प्रगट हुई हो। जटा समूह से उनके लम्बे बाल बिना किसी बाधा के छूट पड़े थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो घटा में छिपे हुए सैकड़ो सूर्यों का प्रकाश उन के मुख पर फूट पड़ा हो। माथे का सिन्दूर जलते हुए अङ्गार के समान था। यद्यपि उनका शरीर दूबला था फिर भी वह प्रभात कालीन सूर्य के प्रकाश की भाँति निर्मल था। उर्मिला का बाँया हाथ शत्रुघ्न की पीठ पर उनके गले के निकट था और दाए हाथ में भयकर त्रिशूल स्थूल किरण के समान था। अर्थात वह त्रिशूल प्रखर किरणों के समान चमक रहा था।

गरज उठी वह प्रतिमा सीता। (पृ० ४७४)

शब्दार्थ—पयस्य=दूध। घोष=गोशालाएँ। आकर=भण्डार।

भावार्थ—गर्जना भरे शब्दो मे उर्मिला कहने लगी "नहीं नहीं उस पापी रावण के सुवर्ण को भले ही समुद्र में डुबो देना परन्तु यहाँ मत लाना। हे धीर पुरुषों, अपने मन मे धन का विचार तो तुम तनिक भी मत करो। यदि तुम्हें युद्ध के लिए प्रस्थान करना है तो अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के उद्देश्य से जाओ धन के लोभ से नहीं। सावधान वहाँ के निकृष्ट धान्य के समान धन को स्पर्श भी मत करना। तुम्हारी मातृ भूमि ही तुम्हें दूना धन

ान करेगी। तुम्हारे सुन्दर गृह तो सभी प्रकार के वैभव से भरे पूरे
ारी वाटिकाएं फलों से सम्पन्न हैं, खेत अन्न से भरे हैं और गाय तथा
घोष से गूँजती हुई गोशालाएँ दूध से भरी हुई हैं। स्वर्ण जैसी
मणियों से हमारे असख्य भण्डार नित्य ही परिपूर्ण हैं। पवित्रता
हमारी यह भूमि तो देवताओं को भी दुर्लभ है। पुण्य की साक्षात
ना इसी पवित्र भूमि की तो पुत्री है।

ृभूमि का मान तरज रहा था। (पृ० ४७४--४७५)

ाथ—लक्ष-लक्ष = लाखों की सख्या मे होकर। पार्थिव-सिद्धि=
ुखों की साधना। कौणप=नीच राक्षस गण। कुल-मान=कुल की
घट=शरीर। अभ=आरम्भ। इति=अन्त। तितिक्षा=क्षमा। वरज=
।

ार्थ—मातृभूमि की मर्यादा का ध्यान सदैव तुम्हारे ध्यान मे रहे।
ो सख्या मे होकर भी बस यही तुम सबका एक लक्ष होना चाहिये।
ीता रानी भौतिक सुखों की सिद्धि स्वरूपिणी है और बलवान तथा
ा राजा रामचन्द्र दिव्य फल के समान हैं। हमारे देश की सुगन्धित
वन राक्षसो की दुर्गन्धि से कलुषित न हो। अपनी इस वाटिका में कोई
ीड़ा न लग जाए। हे धीर और वीर पुरुषो तुम्हारे होते हुए विंध्या और
य के ऊँचे मस्तक झुक न जाएँ। चन्द्र और सूर्य वश की यश किरणों
ाश क्षीण न होने पावे। मणियों के समान अपने वश के श्रेष्ठ
भमानी वीरो सुनो, अपनी गगा, यमुना, सिन्धु और सरयू का पानी
उतर न जाए। तुम्हारा गौरव नष्ट न हो जाए। इसी प्रसिद्ध और
पवित्र स्थान पर आगे बढ बढ कर तुमने अपनी शक्ति के बल पर
नार दिग्विजय किया है। परन्तु यदि आज तुम्हारे कुल की मर्यादा ही
न है तो तुम्हारे प्राण व्यर्थ ही इस शरीर मे ठहरे हुए हैं। हमारे
ों का अनुकरण कर किसका कुल सभ्य और सुसस्कृत नहीं बना। पृथ्वी
ऐसा कौन सा प्रदेश है जिसने आर्यों से शिक्षा ग्रहण नहीं की? आज
ो तुमसे ऐसी आदर्श शिक्षा ग्रहण करे जिसका प्रारम्भ तो दृढ में है
अन्त दया और क्षमा से परिपूर्ण हो। देखो पूर्व दिशा मे ऊषा का उदय

हमारे सौभाग्य के रूप में हुआ है। यही हमारी वास्तविक पताका और इस संसार का शृङ्गार है। ठहरो मैं स्वयं कीर्ति के समान तुम्हारे आगे आगे चल रही हूँ। नीच तथा भाग्य हीन शत्रु अपने बुरे कर्मों का फल भोगें।

उर्मिला के मस्तक पर तेवर तने हुए थे। मानो वे तेवर स्वयं भाग्य के विरुद्ध क्रोध प्रगट कर रहे थे। उर्मिला का यह कथन सुनकर 'भाभी भाभी', देवर शत्रुघ्न इतना ही कह सके। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। सामने ही समुद्र के समान सैन्य समूह गरज रहा था। उस सैन्य समूह को विनय पूर्वक रोकते हुए शत्रुघ्न शत्रु पर अपना क्रोध प्रगट कर रहे थे।

"क्या हम सब मर गए रोकूँगी मैं।" (पृ० ४७६)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—उर्मिला को सम्बोधित करते हुए सैनिकों ने कहा "हे देवि क्या हम सब मर गए हैं जो तुम युद्ध के लिए जा रही हो अथवा आज तुम हमें दीन और दुर्बल पा रही हो। हे देवि या तो हम शत्रुओं को नष्ट कर देंगे नहीं तो स्वयं ही मिट जायगें, परन्तु अपनी लक्ष्मी सीता जी को लिए बिना घर वापिस नहीं लौटेंगे। तुम विश्वास रखो, वही होगा जो उचित है। हमारी इस जन्म भूमि की मिट्टी पर उस लंका का सोना तो सदैव ही न्यौछावर है। तुम इस अयोध्या नगर की ज्योति होकर इस प्रकार धैर्य मत खो ओ। प्रभु के स्वागत के लिए तुम तो गीतों की रचना करो और स्वागत के लिए थाल सजाओ।"

इस पर उर्मिला ने कहा "हे वीरो आज के इस सुन्दर अवसर को भला मैं कैसे छोड़ दूँ? मैं युद्ध भूमि में तुम्हारे घावों को अपने हाथों से धोऊँगी। तुम्हें जल पिलाऊँगी और क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं करूँगी। अपने पक्ष की विजय के गीत गाती हुई शत्रु सेना के विनाश पर आँसू बहाऊँगी।"

(२)

"शांत, शांत!" गंभीर विस्मित, वारित थे। (४७६--४७७)

शब्दार्थ—आनक=गरजता हुआ बादल। हंस वंश=सूर्य वंश। हंसनिष्ठ= आत्मनिष्ठ। एकानन=एक मुख वाले। वारित=न्यौछावर हो रहे थे।

भावार्थ—अकस्मात वहाँ 'शात शात' का गंभीर स्वर सुनाई पड़ा। वह स्वर ऐसा था मानों आकाश का गरजता हुआ बादल पृथ्वी पर गूंज उठा हो। तपस्या की साक्षात निधि के समान कुलपति वृद्ध वशिष्ठ वहाँ आ पहुँचे। वे सूर्य वश के गुरु आत्म निष्ट वशिष्ठ एक मुख होते हुए भी चार मुख वाले ब्रह्मा के समान थे। उनके आगमन पर सैन्य समुदाय की जो प्रलयकारिणी घटा उठी थी उसमें विनय और नम्रता की शोभा छा गई। जो सैन्य समुदाय सर्प की भाँति फन उठाकर फुङ्कार रहा था, वह मानो शिव मन्त्र सुनकर विनत, विस्मत और न्यौछावर हो रहा था।

"शांत, शांत ! सब .... ओर निहारो।" (पृ० ४७७)

शब्दार्थ—सरल हैं।

भावार्थ—सैनिकों को सम्बोधित करते हुए वशिष्ठ जी ने कहा "हे वीरो शांत हो जाओ, कहाँ जाते हो, रुको, मेरी बात पर ध्यान दो। शूरता और वीरता के सघन बादलो इस प्रकार व्यर्थ में ही न गरजो। लङ्का तो अब तक पराजित की जा चुकी है, अतः तुम तनिक धैर्य धारण करो। अच्छा लो, सब लोग इधर क्षितिज की ओर देखो।

मंत्र-यष्टि-सी .... जन्न वन है। (पृ० ४७७)

शब्दार्थ—मन्त्र यष्टि=जादू की छड़ी। कनक सरसिज=स्वर्ण कमल। अनुभूत=परीक्षित। करुणालय = करुणा का समुद्र। जगम = चैतन्य, चलने फिरने वाला।

भावार्थ—इतना कह कर गुरु वशिष्ठ ने अपनी भुजा जादू की छड़ी के समान ऊपर उठाई। उसी समय सब ने जैसे दिव्य दृष्टि प्राप्त की। उन्होंने देखा कि लंका का दृश्य स्वतः ही उनके सम्मुख खिंचा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता था मानो अंधकार में किसी स्वप्न लोक की सृष्टि होगई हो। सब ने अपने सम्मुख जल से परिपूर्ण समुद्र को लहराते हुए देखा। वह चिरकाल से इस विश्व का परीक्षित करुणा का आगार है। उस समुद्र में लंका द्वीप स्वर्ण कमल के समान शोभायमान है। लंका के चारों ओर घोर वन है जो असंख्य प्राणियों (राम रावण की सेना) की उपस्थिति के कारण अत्यन्त चेतना सम्पन्न हो गया है।

राम शिविर में   स्पन्दन पाया ! (पृ० ४७७–४७८)

शब्दार्थ—नीलाचल = नीलगिरी पर्वत । उत्सरूप = झरना के समान । धातुराग=गेरू । कल्प=सहस्रों वर्ष ।

भावार्थ—अपने शिविर में बैठे हुए राम अपने नेत्रों के जल से उसी प्रकार भीग रहे थे जैसे शरद् के बादलों में नीलगिरी का पर्वत झरने के जल से भीगता है । उनकी गोदी मे धातुराग के समान मूर्छित लक्ष्मण पड़े हुए थे । हाय एक-एक क्षण उनके लिए हजारों वर्षों के समान प्रतीत हो रहे थे । जामवन्त, नल, नील, अङ्गद आदि सभी सेनानी लक्ष्मण की दशा देख अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे । सुग्रीव और विभीषण लक्ष्मण के दोनों पैरों के तलवों को सहला रहे थे । वैद्यजन हाथ में हाथ बाँधे शात और निश्चल खड़े थे । अथवा वैद्य लक्ष्मण का हाथ (नब्ज देखने के लिये अपने हाथ मे लिये स्थिर बैठे हैं । यह दृश्य देखकर साकेत निवासी जड़ता से अभिभूत हो गए, सुन्न से पड़ गये । कुछ कहने की इच्छा होते हुए भी वे मुँह से कुछ भी नहीं बोल सके । फिर भी उर्मिला ने प्रयत्न करके अपना हाथ ऊपर उठाया और अपने हृदय पर हाथ रखकर देखा तो वह धीरे-धीरे धड़क रहा था ।

बोल उठे प्रभु   पड़ा सुनाई । (पृ० ४७८–४७९)

शब्दार्थ—सुधाकर=चन्द्रमा । सुमधु=शहद ।

भावार्थ—इतने में ही प्रभु चौंककर बोल उठे । भरत ने भी उनके शब्द सुने । रामचन्द्रजी लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहने लगे "हे भाई उठो प्रभात काल का उदय होने को है । मैं रावण सहित इन्द्रजित का नाश करता हूँ, तुम जाओ और इस नगर का राज्य विभीषण को दे आओ । चलो, अब अवधि समाप्त होने पर यथा समय अयोध्या जाकर सबसे भेंट करें । घर में बैठी हुई वधू उर्मिला कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है । मुझे और सीता को सुख देने के लिए, हम दोनों की सेवा करने के लिए तुम हमारे साथ आए थे । फिर आज निद्रा में मग्न होकर हमें दुखी क्यों बना रहे हो ? चैतन्य होकर हमे सुखी करो । इस प्रकार अपयश का भागी बनने के लिए हम तुम्हें अपने साथ नहीं लाए थे । क्योंकि हमारे साथ तुम्हें न पाकर ससार हमें क्या कहेगा । यदि हे भाई तुम जीवित नहीं हुए तो राम भी मृत्यु को प्राप्त होगा । फिर

सीता का उद्धार कौन करेगा ? वह तो असम्भव ही हो जायगा। फिर हे वीर, तुम्हारी सीता के उद्धार की प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी ? इसलिए हे तात उठो, क्षत्रियत्व तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। अथवा हे भाई, जब तक रात्रिकाल है तब तक तुम सुख पूर्वक और शयन करो। प्रातः शत्रु और मित्रगण दोनों ही तुम्हें कमल के समान खिला हुआ देखेंगे। राम का बाण उड़ कर चन्द्रमा में भी छेद कर लेगा और उसमें से श्रेष्ठ मधु के समान अमृत तुम्हारे लिए टपका लेगा। हे भाई तनिक हनुमान की और प्रतीक्षा करलूँ। यदि वे शीघ्र सजीवनी न ला सके तो मैं ही तुम्हें जीवन प्रदान करूँगा। इतने में ही 'यह सेवक आपके सम्मुख उपस्थित है' हनुमान के ये शब्द निकट में सुनाई पड़े।"

बुरे स्वप्न में   भौंरी सी फेरी। (पृ० ४७६)

शब्दार्थ—उद्‌बोधन=जगाना। व्रण-शोधन=घाव का उपचार। लौह-लिपि=लोहे का चिह्न। पानी का लेखा=पानी पर लिखे गए अक्षरों के समान। भौंरी=भ्रमरी।

भावार्थ—बुरे स्वप्न में जागरण के समान वीर हनुमान वहाँ आकर उस समय उपस्थित हुए। जिस प्रकार जागने पर स्वप्न की दुखदायी घटना का अन्त हो जाता है उसी प्रकार हनुमानजी के आ जाने से सभी के हृदय की आशंकाओं का अन्त हो गया। वैद्यों ने हनुमानजी से औषधि लेकर घाव का उपचार किया। सब ने घाव पर संजीवनी के प्रभाव को देखा। घाव के रूप में, शत्रु के लोह-अस्त्र से अंकित वह चिन्ह पानी पर लिखे गए अक्षरों की भाँति नष्ट हो गया। लक्ष्मण के शरीर पर शक्ति प्रहार का चिन्ह नाममात्र के लिए भी नहीं रहा। इधर लक्ष्मण के घाव ठीक होने पर रात्रि का अन्धकार दूर हो गया और सूर्य के उदित होने पर चारों ओर प्रकाश छा गया। सूर्य ने अपने लक्ष्मण रूपी कमल को प्रफुल्लित होते हुए देखा। सूर्य के प्रकाश में ओस की बूँदों का रूप लेकर रात्रि में बहता हुआ जल चमकने लगा। सिंह सदृश्य लक्ष्मण यह कहते हुए जाग उठे "हे मेघनाद तू धन्य है किन्तु सावधान हो जा, अब मेरी बारी है।" यह कहकर उन्होंने भ्रमित भ्रमरी की भाँति अपनी दृष्टि चौंककर चारों ओर उठाई।

उन्हें हृदय से लगा .... अंकस्थल में। (पृ० ४७६--४८०)

शब्दार्थ—अब्धि अंक=समुद्र की गोद। कलाधर=चन्द्रमा।

भावार्थ—लक्ष्मण को प्रभु रामचन्द्रजी ने अपनी भुजाओं में भरकर, हृदय से लगा लिया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे समुद्र की गोद में चन्द्रमा ही उभर आया हो। हे भाई मेरे लिए ही तू फिर लौटकर आया। तेरे इस नवजीवन से मैंने तो अपने जन्म-जन्मातर का सुख इसी जीवन में प्राप्त कर लिया।' लक्ष्मण ने कहा 'हे आर्य आपके चरणों का यह सेवक आपकी सेवा में प्रस्तुत है। परन्तु मेरा वह प्रतिपक्षी मेघनाद कहाँ है?" यह सुनकर रामचन्द्रजी ने उत्तर में कहा "हे लक्ष्मण इस प्रकार क्षणभर में ही युद्ध के लिए व्याकुल मत बनो। कुछ समय के लिए मेरी इस गोद में विश्राम करो।

हाय नाथ विश्राम .... न पाऊँ। (पृ० ४८०)

शब्दार्थ—सन्नद्ध=तैयार, तत्पर।

भावार्थ—हाय स्वामी, शत्रु अभी तक जीवित है और आप मुझे विश्राम करने के लिए कह रहे हैं! कारागृह के बन्धन में हमारी देवी सीता अभी तक पड़ी हुई हैं। जब तक मैं मूर्छित था तब तक तो स्वय ही युद्ध के लिए असमर्थ होकर विवश सा पड़ा हुआ था। परन्तु अब तो मैं चेतना प्राप्त कर, सब प्रकार से स्वस्थ और सन्नद्ध हूँ। यदि अवधि यहीं समाप्त हो गई और हम ठीक समय पर अयोध्या न लौट सके तो भरत की क्या दशा होगी जो कि एक युग से योगी की भाँति तुम्हारा ही ध्यान लगाए बैठा है। माताएँ अपनी गोदी और दृष्टि फिर से भरने को आतुर हैं और नगर कन्याएँ फूलों की वर्षा करने की प्रतीक्षा में बैठी हैं। हे आर्य आप अयोध्या जायँ और मैं युद्ध के लिए प्रस्थान करूँ। पहले आप अयोध्या पहुँच जायँ, मैं पीछे से आऊँगा। यदि मैं शत्रु को नष्ट कर कुल लक्ष्मी सीता को वापिस न ला सकूँ तो मैं स्वय ही अपने को यह शाप देता हूँ कि मेरी सद्गति न हो।

ऐसे पाकर तात .... सौ सौ ज्वारों से। (पृ० ४८०--४८१)

शब्दार्थ—वानरेन्द्र=वानरों के सेनापति। ऋक्षेन्द्र=रीछों के सेनापति। व्रण=घाव। कटक=सेना।

भावार्थ—लक्ष्मण की बात सुनकर राम ने कहा "हे भाई तुम्हें
प्रकार पाकर अकेला छोड़ कैसे दूँ ?" यह सुनकर लक्ष्मण बोल उठे "प
हे आर्य इस प्रकार क्या मेरा शत्रु से मुँह मोड़ना उचित होगा ? यदि अ
को मेरे जीवन के मोह ने घेर लिया और वे शत्रु से दुगने भाव से प्रतिश
नहीं लेते तब तो मेरा जीवित होना व्यर्थ ही गया। इससे तो मेरा मर ज
ही अच्छा था। मैं तो शत्रु के शक्ति प्रहार को तिरस्कृत कर जीवित
बच गया परन्तु शत्रु मेरे शेल के प्रहार से जीवित न रह सकेगा। हे वा
और रीछों के सेनापति सेना को शीघ्र ही युद्ध के लिए प्रस्तुत करो। शत्
घाव रूपी ऋण से मुझे अभी मुक्त होना है। इतना कहकर लक्ष्मण ने ज्य
राघव रामचन्द्रजी का जय जयकार किया त्यों ही सारी सेना भयकर नाद क
हुई गरज उठी। वह सैन्य समुदाय लका मे चारों द्वारों से होकर इसी प्र
चल पड़ा जैसे सौ-सौ ज्वारों के एक साथ उठ आने पर प्रलय का समुद्र
घुमड़ कर उमड़ पड़ा हो।

चौड़े-चौड़े चार थे मानो अन्धे। (पृ० ४८१)

शब्दार्थ—कपाट = किवाड़। क्षय = विनाश। उभय पक्ष=दोनों पक्ष

भावार्थ—लका के दुर्ग के, विशाल वक्षस्थल के समान चार चौड़े-
द्वार थे। राम के सैन्य समुदाय ने आगे बढ़कर आक्रमण करते हुए उन
के किवाड़ों को तोड़ डाला। आक्रमण के प्रथम वेग से बचकर जो शत्रु
सावधान होकर खड़ी थी, वह हुंकार करती हुई प्रेतों के समान राम के स
दल पर टूट पड़ी। दोनों ओर के सैन्य बादलों के समान परस्पर भिड़ ग
उनके पैरों की धमक से पृथ्वी नीचे की ओर धसकने लगी। उन बादल
समान सैन्य-समुदाय की कड़क-तड़क और झमक-दमक से साक्षात प्रल
उत्तेजित हो उठी। युद्ध के बाजों की गमक पर योद्धागण नटों की
अपनी कला दिखला रहे थे और उसकी ताल-ताल पर सिर और धड़ उठ
कर गिर रहे थे। वक्षस्थल, कण्ठ, मस्तक, हाथ और कन्धे छिन्न-भिन्न हो
थे। ऐसा ज्ञात होता था कि दोनों ही सैन्यदल मानो क्रोध मे अन्धे
गए थे।

मिला रक्त से आतुरता उर की। (पृ० ४८२)

शब्दार्थ—वर=श्रेष्ठ, दूल्हा।

भावार्थ—दोनों सेनाओं का रक्त मिलकर एक हो गया। इस प्रकार परस्पर उनकी शत्रुता का सम्बन्ध प्रतिफलित हो गया। जिस पकार विवाह के अवसर पर वर के चरण धोए जाते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ वीरो के चरण भला शत्रु सेना के रक्त से क्यों नहीं धुलते ? सेना की अगली पक्ति जिस ओर से जैसे ही नष्ट होती पीछे की पक्ति तत्काल ही आगे बढ़कर उसका स्थान ग्रहण कर लेती। दोनो सेनाएँ दो धाराओं के समान उमड़-उमड़ कर परस्पर टकरा रही थीं। वे दोनों एक होकर ऊपर उठ रही थीं और नीचे गिर कर चकरा रही थी। लका नगरी की गली-गली में खलबली मच गई। लका निवासियों के हृदय की व्याकुलता उनकी आँखों में आकर झाँक उठी।

आया रावण जिधर उ जाया मुझ में।" (पृ० ४८२)

शब्दार्थ—प्रभु-कर-लाघव=प्रभु के हाथो का फुर्तीलापन। पचानन=सिंह। गुहा=गुफा। द्विगुण=दुगनी। आखेट-रग=शिकार का भाव।

भावार्थ—जिस ओर रामचन्द्रजी अपने दिव्य रथ में बैठे हुए थे, रावण उधर ही आया। आज प्रभु रामचन्द्रजी के हाथों का फुर्तीलापन क्या ही गौरवपूर्ण था। राक्षस उन्हे देखकर गरजता हुआ कहने लगा "हे तापस, रुक जा, मै आ गया हूँ। लक्ष्मण ने जीवित होकर तेरी मृत्यु के दुख को ही प्राप्त किया है। यदि वह जीवित न होता तो उसे तेरी मृत्यु का दुख नहीं सहन करना पड़ता। भला सिंह की गुफा के दरवाजे पर आकर कौन अपनी रक्षा कर सका है। इस पर मै तो पचानन से भी दुगना विख्यात दशानन हूँ। यह तो तनिक मन मे विचार। मेरे यहाँ से जीवित लौटना तो तेरे लिए और भी कठिन है। रावण के शब्द सुन कर प्रभु ने हँस कर कहा "दशानन होने के कारण ही तुझमे पचानन सिंह से दुगनी पशुता है। इसीलिए दशानन रूप होकर तू ने ही अपने शिकार की इच्छा मेरे हृदय मे उत्पन्न की है ?

दशमुख को सग्राम झोंका देता था ! (पृ० ४८२--४८३)

शब्दार्थ—निष्प्रज=जो समस्त मनोविकारो से रहित हो। तड़ित्तेज= बिजली का प्रकाश।

भावार्थ—दशमुख रावण के लिए तो वह युद्ध था, परन्तु रामचन्द्रजी के लिए वह खेल मात्र था। रामचन्द्रजी जैसे स्थितप्रज्ञ व्यक्ति को दशो इन्द्रियों की पीड़ा भी भला क्या प्रभावित कर सकती थी? रावण की वीरता को सराहते हुए रामचन्द्रजी बोले "हे पुण्यशाली तुझ जैसे प्राणी की शूर वीरता धन्य है। हे वीर! अब भी अपने हृदय से कुटिल क्रूरता के भावो को दूर कर। शक्ति तो विकास के लिए है, नाश के लिए नही। ऐसी शक्ति का तो अस्तित्व ही नहीं होना चाहिए जिससे किसी प्रकार के नाश की सभावना हो।"

राम के कथन के उत्तर में रावण ने कहा "हे मनुष्य यदि तुझे युद्ध से भय लग रहा है, तो फिर मुझसे लड़ने क्यों आया था?" रामचन्द्रजी बोले "हे राक्षस मुझे तो तेरा काल ही यहा खींचकर लाया है। तेरी रक्षा तथा तेरे प्रति दया की भावना के रूप में तो मैं सदैव ही तेरे लिए परिचित रहा हूँ अर्थात बहुत समय से तुझ पर दया करके तेरी रक्षा का ही भाव मेरे हृदय में रहा है। परन्तु अब यदि तू अपने भय का भाव मेरे हृदय मे जगा सके तो मै तुझे सममुच वीर समझूँ।"

शत्रु के सौ सौ शस्त्र बड़ी शीघ्रता से रामचन्द्रजी की ओर आते थे, परन्तु वे उन्हे स्पर्श भी नहीं कर पाते थे, बीच मे ही नष्ट हो जाते थे। घिरे हुए बादलों के समान घनघोर युद्ध के बीच वे शस्त्र बिजली की चमक सी पैदा कर देते थे, परन्तु राम रूपी वायु के एक ही झोंके से वह शीघ्र ही नष्ट हो जाते थे।

पूर्व अयन पर उत्कट उनके। (पृ० ४८३)

शब्दार्थ—अयन=मार्ग, द्वार। सुभुज=श्रेष्ठ भुजाओ वाले। सिद्ध-योग=प्रमाणित रसायन। रुज=रोग। नल-वन-सम=कमल के वनो के समान। वड़वानल=समुद्र मे लगने वाली अग्नि।

भावार्थ—पूर्व द्वार पर लक्ष्मण ने आक्रमण किया। भला उनका प्रतिरोध कौन कर सकता था? वे श्रेष्ठ भुजाओ वाले लक्ष्मण राक्षस रूपी रोग के लिए सिद्ध रसायन ही बन गए। निकुंभला मे बैठा हुआ मेघनाद साधना कर रहा था। युद्ध में विजय प्राप्त करने के हेतु वह अपने इष्ट की आराधना कर रहा था। उसी समय अपनी भुजाओ के बल से शत्रु के सैन्य समुदाय

को कमल के वन की भाँति नष्ट करते हुए सैन्य-सहित लक्ष्मण लका नगरी में उसी प्रकार प्रविष्ट हुए जैसे समुद्र में बड़वाग्नि जलती है। अपनी इच्छा से अगदादि जो योद्धा लक्ष्मण के साथ गए थे वे उस बड़वाग्नि के उड़ते हुए अगार प्रतीत हो रहे थे।

हल चल सी मच पथ मे बैठा।" (पृ० ४८४)

शब्दार्थ—भीरु = कायर।

भावार्थ—चारों ओर हलचल मच गई। लङ्का के परकोटे के भीतर कोलाहल छा गया। शत्रु की सेना पीछे भी नहीं लौट सकी क्योंकि पीछे प्रभु रामचन्द्रजी की सेना थी। रावण ने चाहा था कि वह लौट कर लक्ष्मण पर आक्रमण करे तभी प्रभु ने उसे ललकारते हुए कहा "हे कायर तुझे धिक्कार हैं कि मुझे तू पीठ दिखाकर जा रहा है। परन्तु इतना ध्यान रख, आज तू मेरे सामने से बच कर भाग भी नहीं सकेगा। इस पर रावण ने गरजते हुए कहा "ठहर मैं भी देखता हूँ तू मेरे सम्मुख कहाँ तक ठहर सकेगा। मुझे भय ही किस बात का है। पक्षी के समान लक्ष्मण स्वत. ही लका के पिञ्जड़े में प्रविष्ट होगया है। तू भी यहाँ मार्ग में बैठा हुआ उसकी दशा देख लेना।

उधर हाँक सुन करता था। (पृ० ४८४)

शब्दार्थ—हाँक=हुँकार। पुरजन=नगर निवासी।

भावार्थ—उधर हनुमान की हुँकार सुनकर नगर निवासी भय से काँप उटे। हनुमान ने कहा "मैं वही हूँ जो पहले लका को जला गया था। परन्तु आज तो हमें मेघनाद चाहिए वह कहाँ है?" तदनन्तर सभी योद्धागण उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वह (मेघनाद) अपने यज्ञ को पूरा करने में लीन था। भयङ्कर होते हुए भी उस योद्धा की मूर्त्ति की शोभा कितनी भली जान पड़ रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों मेघनाद का शरीर रक्त माँस के स्थान पर धातु को ढाल कर उससे बनाया गया हो। यज्ञ की वेदी जैसे भट्टी बन गई हो और उसमें से उठती हुई ज्वाला उसके गले की मानों मोहन माला बन गई हो। वह शक्तिवान पशुओं की वलि देकर शस्त्रो का पूजन कर रहा था। उसके मुँह से निकले हुए अस्फुट मन्त्रोच्चार से वहाँ मधुर ध्वनि हो रही थी।

ठिठक गए सब   आयुध लेकर। (पृ० ४८४-४८६)

शब्दार्थ—दावानल=जंगल में लगने वाली अग्नि। वंचना=ढोंग।

भावार्थ—मेघनाद की उस मूर्त्ति को देखकर पल भर के लिए सभी एक साथ स्तब्ध से खड़े रह गए। तब सौमित्र दावाग्नि के समान भड़क कर बोले "अरे मेघनाद देख तेरे द्वार पर आज शत्रु खड़ा है। उसकी ओर ध्यान न देकर यह कौनसा बड़ा कर्म है जिसे तू कर रहा है? अरे जिसके सिर पर शत्रु खड़ा हुआ है, उसका सबसे बड़ा धर्म तो उससे युद्ध करना है। परन्तु तू नीच आर्यों की इस नीति के रहस्य को क्या समझे।

लक्ष्मण को देखकर मेघनाद हतप्रभ हो उठा और उसने चौंककर कहा "अरे शत्रु तू यहाँ कैसे आगया? घर का भेद प्रगट करने वाला वह कौन है जो तुझे यहाँ तक ले आया?" लक्ष्मण ने इस पर उत्तर देते हुए कहा "अरे मृत्यु के लिए कोई मार्ग बन्द नहीं रहता। मृत्यु तो अपने आप ही सर्वत्र चली आती है। आज मैं अतिथि के रूप में युद्ध का भूखा होकर तेरे यहां आया हूँ। आज अपने अतिथि का उचित आदर सत्कार कर कुछ तो धर्म कर ले।"

लक्ष्मण के प्रत्युत्तर में मेघनाद ने कहा तुझ जैसा अतिथि देखकर भला मैं डरता कब हूं परंतु यह तो बता कि "मैं यह जो यज्ञ कर रहा हूं क्या यह धर्म नही है।" लक्ष्मण बोले "भला तेरा यह कैसा धर्म है कि शत्रु तुझे ललकार रहे हैं और तेरे अस्त्र उनसे युद्ध करने के स्थान पर दीन पशुओं को मार रहे हैं।" परन्तु मैं शत्रु विजय के लिए ही तो यह प्रयत्न कर रहा हूँ।" मेघनाद ने कहा। "तब तो तेरा यह देवाराधन कपट मात्र है। ठहर ठहर अब इस प्रकार तू व्यर्थ ही अग्नि का ढोंग मत रच। फल की चिंता छोड़ कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर!" लक्ष्मण ने कहा। इस पर मेघनाद ने लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहा "हे लक्ष्मण, क्या तू मेरे शक्ति प्रहार को इतना शीघ्र ही भूल गया। कदाचित तू उससे मरते मरते बचा है, इसीलिए तुझे इतना घमंड होगया है?" लक्ष्मण ने मेघनाद को ललकारते हुये उत्तर दिया। "मैंने तेरी वह शक्ति भी देख ली, अरे क्या उसी पर तू इतना गर्व कर रहा है। उसे तो एक सञ्जीवनी बूटी ने

ही प्रभाव हीन कर दिया । परन्तु मुझको यह बतला क्या तेरे पास भी ऐसी कोई युक्ति है जो तेरे कटे हुए मस्तक को जोड़कर पुनः तुझे जीवित कर दे। खैर यह सब तो हे भाई विनोद की बातें हैं । वास्तव में मैं तुझे उसी शक्ति के लिए बधाई देने आया हूँ । हे अद्‌भुत शस्त्रधारी, आज तू इस प्रकार क्यों छिपा बैठा है । उठ युद्ध के लिए प्रस्तुत हो, अब तुझे मारने की मेरी वारी है ।" इस पर वीर मेघनाद सर्प के समान शस्त्र लेकर यह कहता हुआ खड़ा होगया "हे लक्ष्मण तेरी ही बलि देकर मैं आज इस यज्ञ को पूर्ण करूँगा ।"

हुआ वहाँ सम-समर काली मतवाली । (पृ० ४८६-४८७)

शब्दार्थ—लौह = शस्त्र । दूषण=बुराई, बाधा । पण=बाजी । सगर= युद्ध स्थल । लाली=क्रोध । रुद्र=शिव । व्रणमाला=घावों के चिह्नों की पक्तियाँ । जपा=जवा के फूल ।

भावार्थ—तब वहाँ मेघनाद और लक्ष्मण के बीच अद्‌भुत साज सज्जा के साथ समान भाव से भीषण युद्ध हुआ । दोनों ही अपने हाथों से शस्त्र बजा बजाकर युद्ध कर रहे थे । युद्ध करते हुए उनके पैरों की चपल गति ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो वे शस्त्रों के स्वर पर ताल दे रहे हों। एक वीर के शब्द दूसरे वीर के शब्द से, एक के शस्त्र दूसरे के शस्त्र से, एक के घाव दूसरे के घाव से परस्पर एक ही भाव से स्पर्द्धा कर रहे थे । योद्धाओं में श्रेष्ठ मेघनाद और लक्ष्मण दोनों ही मानो एक प्राण होकर अपने दो भिन्न शरीरों को अपना बाधक मान रहे थे । अर्थात् शरीर के इस अन्तर को मिटाने के लिए ही वे एक दूसरे के शरीर को नष्ट करने पर तुले हुए थे । शत्रु को अपना लक्ष्य बनाने वाले दोनों लक्षी प्राणों की बाजी लगाकर अपने प्राणरूपी पक्षियों को उड़ा उड़ाकर परस्पर लड़ा रहे थे । वहाँ सचमुच जीवन और मृत्यु का अद्‌भुत दृश्य छाया हुआ था । युद्ध की भूमि रस पान करने की मानो रंग स्थली बन गई थी । क्रमशः उन दोनों वीरों का आवेश बढ़ने लगा । प्रलय कारी शिव ताली बजा बजाकर नृत्य कर रहे थे । जवा के फूलों की डाली के समान दोनों वीरों के घावों की माला रणचण्डी पर चढ़ रही थी जिसे लेने के लिए मतवाली काली बढ़ी चली आ रही थी ।

हुए सशंकित देव .... पौरुष साधन हैं।" (पृ० ४८७)

शब्दार्थ--विधि=ब्रह्मा । हरि = विष्णु । शेष=बचा हुआ, शेषनाग ।

भावार्थ—दोनों के युद्ध को देखकर देवगण यह सोच कर सशकित हो उठे कि दोनों में से विजय का वरदान कौन प्राप्त करेगा ? क्या अब भी पाप का अत होकर धर्म की क्षति पूर्ण न हो सकेगी ? तब ब्रह्मा की ओर दृष्टिपात कर विष्णु ने हॅसकर कहा "तुम्हारा मन क्या कहता है ? इन्द्र को तो मेघनाथ हरा ही चुका है, अब तो शेषनाग के अवतार लक्ष्मण के रूप में ही देवताओं का ब्रह्म पौरुष शेष है ।

इधर गरज कर .... हाटक-घट फूटा।" (पृ०४८७-४८८)

शब्दार्थ—नरनाट्य=मनुष्य लीला । मर्त्य=मनुष्य । जनक=पिता । जान-रख=विचार ले । पातक=पाप । हाटक घट=सोने का घड़ा ।

भावार्थ—इधर मेघनाद ने गरजते हुए लक्ष्मण से कहा "तू ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर मनुष्य लीला की है । तेरा यह बल पौरुष देवलोक में भी दुर्लभ है । परन्तु हे मर्त्य प्राणी आज तुझे राक्षस से सामना करना पड़ रहा है, इसलिये तेरा बचना कठिन ही है ।"

वीर लक्ष्मण ने उत्तर देते हुए कहा—"अरे मेघनाद तू व्यर्थ ही में विष भरे वचन अपने मुँह से उगल रहा है । अपने मुंह से मेरी वीरता की प्रशसा के बहाने अपनी बड़ाई मत कर । अरे यह जीवन क्या है, यह तो मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला सघर्ष मात्र है और मृत्यु यह तो प्राचीन का नया रूप धारण करना है । परन्तु तेरे पिता ने इस जन्म को इतना पाप पूर्ण बना डाला है, कि तुझे भी पैतृक रोग की भॉति अपने पिता के पाप का फल भोगना पड़ेगा । तू यह भी जान ले कि मनुष्य द्वारा किया गया पाप एक ही जन्म में नहीं अपितु जन्म जन्म के लिए पापी के साथ साथ उसके परिवार का भी घातक है । यदि सीता ने केवल रामचन्द्रजी को ही अपना पति माना है, और मैंने भी केवल उर्मिला को ही अपनी पत्नी समझा है तो बस अब तू साव-धान होजा, मेरा यह बाण छूट रहा है । रावण का पाप से भरा यह सोने का घड़ा बस अब फूटने को ही है । (मेघनाद की मृत्यु का अर्थ सोने की लका का पतन ही है ।)

हुआ सूर्य सा थी दीपाली। (पृ० ४८८)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—लक्ष्मण का बाण लगते ही मेघनाद के प्राणों का अन्त हो गया। उसकी मृत्यु से मानो लंका पुर का सूर्य ही अस्त हो गया। आकाश रूपी रावण के हृदय में शून्यता, छा गई। इधर अयोध्या में उर्मिला वधू का मुख गर्व और उल्लास से भर कर फूली हुई सन्ध्या के समान लालिमा युक्त होकर दीपों के प्रकाश की सी आभा प्राप्त कर रहा था।

जगकर मानो वृत्ति पुनीता। (पृ० ४८८)

शब्दार्थ—अधिष्ठात्री=अध्यक्षा, प्रधान। बाड़ी=वाटिका।

भावार्थ—लक्ष्मण के हाथों मेघनाद की मृत्यु देखकर अयोध्या वासियों ने स्वप्न से जागकर जय जयकार किया। तदनन्तर वे शांत होकर स्वप्न निमग्न हो गए। अब अशोक वाटिका में सीता जी उन्हें दृष्टि गत हुई। सीता जी के रूप में करुणा की अधिष्ठात्री देवी ही वहाँ साक्षात् विराजमान् थी। वह अशोक वाटिका उनके लिए भयंकर झाड़ी के समान थी और सीता जी के आस पास बैठी हुई राक्षसनियाँ उनके लिए घनी और कँटीली वाटिका बनी हुई थीं। उन वाटिका और राक्षसनियों के बीच सीता जी इस प्रकार घिरी हुई थीं मानो राजसिक और तामसिक वृत्तियों के बीच में पवित्र सात्विक वृत्ति घिरी हो।

एक विभीषण-वधू उनके शर।" (पृ० ४८९)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—एक विभीषण की ही पत्नी हो सीता जी को धैर्य प्रदान कर रही थी। अथवा वह सीता जी का प्रतिमा के समान पूजन करती हुई वरदान प्राप्त कर रही थी। विभीषण की पत्नी ने कहा "हे देवि अब अपने को प्रभु के समीप ही समझो। मेघनाद की मृत्यु रावण की ही मृत्यु है। मेघनाद की मृत्यु सुनकर समस्त लंका आज सिर पीट पीट कर रो रही है। हे शुभे मेघनाद की मृत्यु का समाचार सुनकर तो रावण रथ में ही मूर्च्छित हो गया। उसे मूर्च्छित देख प्रभु ने कहा था हे रावण मैं तेरा यह दुख नहीं देख सकता उठ, जाग तेरे दुख का अन्त करने के लिए मेरा यह बाण तेरे लिए प्रस्तु

है।" हे देवि शत्रुओ का दुख भी जिनसे सहन नहीं किया जा सकता उन्हीं प्रभु रामचन्द्र जी की पद सेवा करके मेरे स्वामी धन्य हो गए। यदि युद्ध में रावण इस प्रकार मूर्च्छित न हो जाता तो क्षण भर में ही प्रभु के बाण मृत्यु की गोद में सुलाकर उसे दुख से मुक्त कर देते।"

तब सीता ने कहा .... अग्नि परीक्षा !" (पृ० ४८६)

शब्दार्थ—माध्वी=मदिरा। शम=अन्तःकरण तथा बाह्य इन्द्रियों का निग्रह। दम=इन्द्रिय दमन।

भावार्थ—तब सीता जी ने अपने आँसुओं को पोंछकर विभीषण पत्नी सरमा से कहा "हे सरमा मैं तुझे क्या उपहार प्रदान करूँ ? अब तुम लका की रानी बनकर जीवन व्यतीत करो। सरमा ने उत्तर में कहा हे साध्वी एक लका ही क्या सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य तुम पर तो न्यौछावर है। तुम्हारे इन चरणो की मदिरा मुझे सदैव मस्त बनाए रखे। अर्थात् मैं सदैव तुम्हारे इन चरणों की उपासिका बनी रहूँ। हे सतीत्व की साकार स्वर्ण प्रतिमे तथा शम दम की साक्षात् मूर्ति तुमने तो इस लका में रहकर स्वय ही अपनी अग्नि परीक्षा दे दी है।

भरकर श्वासोच्छ्वास .... होगी अब तो।" (४६०)

शब्दार्थ—श्वासोच्छ्वास=वेग से साँस खींचना और निकालना। अजिर= आँगन। फेंट=कमर बंद।

भावार्थ—दीर्घ निश्वास लेकर अयोध्या वासी जाग उठे। लंका के दृश्य के स्थान पर सभी को अपने आगे गुरुदेव वशिष्ठ दिखलाई दिए। मुनि वशिष्ठ ने कहा "सब लोग अपने अपने भवनों को सजाओ और उन मंदिरों के आगनों में मूर्ति के समान वास करने वाले अपने रामचन्द्र जी को सदैव अर्चन के लिए प्राप्त करो। चारो ओर जय जयकार गूँज उठा। जन समुदाय के हृदय गर्व से भर उठे। युद्ध का उमड़ा हुआ उत्साह अब प्रभु के स्वागत में तत्पर हो गया। सैनिकों ने युद्ध के लिए कसे हुए अपने कमर बन्द अनिच्छा पूर्वक खोल डाले। उन्हें सम्बोधित करती हुई वीर पत्नियाँ हँसकर कहने लगीं 'क्या तुम्हारे हृदय की उमंग पूर्ण नहीं हुई ?" अरे देवी सीता के उद्धार का सारा यश तो वानरों ने ही प्राप्त कर लिया।" इस पर वीर

सैनिकों ने उत्तर दिया "हे प्रिय तुमने अपने नेत्रों से तो सब कुछ देख ही लिया, हम क्या कहें। अब तो अपने हृदय की उमग निकालने के लिए अश्वमेध यज्ञ की प्रतीक्षा करनी होगी।

मज्जन पूर्वक पथ पति का। (पृ० ४९०)

शब्दार्थ—मज्जन=स्नान। वर्ण वर्ण=विभिन्न रङ्गों की। रति=प्रेम वासक सज्जा=वह नायिका जो विविध श्रृङ्गार कर अपने पति के आगमन की प्रतीक्षा करती है।

भावार्थ—प्रभु राम के स्वागतार्थ अयोध्या नगरी ने अमृत जल से स्नान किया। तदनन्तर उसने विविध रगों की सुन्दर वेश भूषा धारण की। स्थान स्थान पर स्वागत के अनेक सुन्दर वाक्य लिखकर अपने अनन्य प्रेम का परिचय दिया।।इस प्रकार अयोध्या नगरी वासक सज्जा नायिका बनकर अपने पति राम के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

आया, आया, किसी तरङ्गों से लहराया। (४९०--४९१)

शब्दार्थ—मारुति=पवन पुत्र हनुमान। परों=दूसरों के कृती=पुण्यात्मा प्रवृत्ति=सांसारिक विषयों का ग्रहण। निवृत्ति=मोक्ष मार्ग। पुष्पक=पुष्पक विमान, फूल। मानस=मान सरोवर।

भावार्थ—किसी भाति प्रभु रामचन्द्र जी के आगमन का वह दिवस भी आया जब स सार ने अपना ऐश्वर्य और अयोध्या के प्रत्येक घर ने अपना गौरव पुन प्राप्त किया। पहले पवन पुत्र हनुमान नगर में पूर्व प्रसाद रूप आए फिर प्रभु रामचन्द्र जी ही प्रगट हुए। जो सबके हृदय में छिपे हुए थे वे अपनों के लिए ही नहीं दूसरों के प्रति भी धर्म का पालन करने वाले पुण्यात्मा प्रवृत्ति और निवृत्ति के मार्ग की मर्यादा का रहस्य जानने वाले राजा होकर भी गृहस्थ और गृहस्थ होकर भी सन्यासी की भाँति रहने वाले तथा सबके हृदय में वास करने वाले आदर्श रूप प्रभु रामचन्द्र जी प्रगट हुए आकाश कुसुम की भाति आकाश में अपना सुगन्ध फैलाता हुआ पुष्पक विमान भी हमने प्राप्त किया। असख्य नेत्रों ने पुष्पक विमान स्थित प्रभु के दर्शन कर अपना हर्ष प्रगट किया मानो अनेक नेत्र रूपी भ्रमरों ने उस पुष्पक की ओर उड़कर प्रभु के गुणों का गु जार किया हो। मनुष्यों के मन रूपी मा

सरोवर में हर्ष से भरी असख्य भाव लहरियाँ उठने लगीं।

भुक्ति विभीषण और उनके जागे। (पृ० ४६१)

शब्दार्थ—भुक्ति = सॉसारिक सुख वैभव। आतिथेय=अतिथि की सेवा करने वाले।

भावार्थ—लका के राज्य के रूप मे विभीषण को सासारिक सुख वैभव प्रदान कर तथा रावण को मुक्ति प्रदान कर लक्ष्मणाग्रज प्रभु रामचन्द्र जी ˜वित्र सीता के साथ विजय रूपी सखी लेकर घर आए। उनके साथ दक्षिण ी लका के नरेश विभीषण मन भावने अतिथि के रूप में थे और स्वय भु आतिथेय बनने के लिये अयोध्या लौटे। भरत और शत्रुघ्न नगर के ।मुख द्वार के आगे उनके स्वागत मे खड़े थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो ाम और लक्ष्मण के अयोध्या पहुँचने से पूर्व ही उनका प्रतिबिम्ब भरत और ात्रुघ्न के रूप मे दिखाई दे रहा हो।

कहा विभीषण ने गगन-सम। (पृ० ४६१)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—विभीषण ने आत्म-विस्मृत होकर अपने मधुर कण्ठ से कहा 'भाई लक्ष्मण के साथ प्रभु रामचन्द्रजी आज दुगने से होकर प्रगट हो रहे हैं।"

अपने वाहन गरुण से उतरने वाले विष्णु के समान रामचन्द्रजी सुन्दर पुष्पक विमान से नीचे उतर पड़े। वे भरत से उसी प्रकार मिले जैसे क्षितिज में समुद्र और आकाश का मिलन होता है।

उठ भाई, तुल सका पाकर रोया।" (पृ० ४६२)

शब्दार्थ—श्रात=थका हुआ।

भावार्थ—चरणों में गिरे हुये भरत को सम्बोधित करते हुए राम बोले "हे भाई भरत उठ। तुम्हारा राम तुम्हारे सामने खड़ा है। वह तुम्हारी समता नहीं कर सकता। तुम्हारे गौरव का पलड़ा आज उससे भारी होकर पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। (भरत रामचन्द्रजी के चरणों मे पृथ्वी पर पड़े हैं और रामचन्द्रजी खड़े हुए हैं।) चौदह वर्ष व्यतीत हो गए और इतनी लम्बी अवधि में मैंने वन, पर्वत, गुफा, समुद्र को पार किया, लका में भीषण युद्ध किया, फिर भी वन के उस भ्रमण से मैं नहीं थका। परन्तु आज तुझे सबसे अलग

एकातवास करते हुए देखकर मेरा हृदय शिथिल हो गया। हे भाई भरत अब उठ, मुझसे मिल, मुझे अपने हृदय से लगा ले। हे भाई भरत, बन गमन के अवसर पर मुझे हर्ष हुआ था, परन्तु आज घर लौटने पर तेरी यह दशा देखकर मैं अपार दुख से भर गया। हे भरत अपनों से वञ्चित होने पर तो सभी रोते हैं, परन्तु मैं आज अपने परिवार और अयोध्या वासियो को पाकर शोक प्रकट कर रहा हूँ।

"आर्य, यही अभिषेक घूम घटाएँ। (पृ० ४६२)

शब्दार्थ—भृत्य=सेवक। अन्तर्बाह्य=भीतर बाहर। ऊनी=अधूरी।

भावार्थ—भरत ने कहा "हे आर्य! राज्याभिषेक के स्थान पर भरत का सच्चा अभिषेक तो यही है कि उसे तुम प्राप्त हो गए। आज उसका अन्तर और बाह्य सभी पूर्णत. कृतार्थ हो उठे हैं।

अब तक इस मिलन से पूर्व राम और भरत की युगल मूर्तियाँ पूर्ण होने पर भी अलग होने से अपूर्ण थीं, अधूरी थीं। अब इस मिलन से उनके एकाकार होजाने पर उनकी आनन्दमयी पूर्णता दूनी हो गई थी। भाव यह है कि राम और भरत के युगल रूप में जो पूर्णता थी वह उनके एक होने पर कम नहीं हुई वरन् दुगनी हो गई। दोनों की जटाएँ हिलहिल कर परस्पर लिपट कर मिल गई। उन जटाओं के रूप में मानो घटाएँ ही झूमती हुई राम और भरत के मुख-चन्द्रों पर घूम रही थीं।

साधु भरत के में रहकर।' (पृ० ४६२–४६३)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—साधु भरत के आँसू सीताजी के चरणों में गिरें इससे पूर्व ही सती सीता ने उन्हें अपने नेत्रों में भर लिया। अर्थात भरत के प्रणाम करने से पूर्व ही सती सीता के नेत्र प्रेमाश्रुओं से सजल हो उठे। इस प्रकार जगलों के लता मूलों को सींचने वाला वह जल अब उल्लास रूपी फूलो में प्रकट हुआ। उन हर्ष और उल्लास के फूलों से फैली हुई सरस सुगन्ध सदा सबके लिए आनन्द और उपभोग की वस्तु बन गई। देवर और भाभी तथा सभी भाइयों ने परस्पर भेंट की। उस समय पृथ्वी पर फूल बरस रहे थे और स्वर्ग में देवतागण जय-जयकार कर रहे थे। भरत ने सुग्रीव और विभीषण से

यह कहकर भेंट की, "तुम्हारे साथ रहकर हमारा भ्रातृ सम्बन्ध सफल हो गया।"

पैदल ही प्रभु हमने पाए।" (पृ० ४६३)

शब्दार्थ—अमाई=पूरी भर गई। ऊली-ऊली=उछली-उछली।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्रजी ने पैदल ही जन समुदाय की भीड़ के साथ नगर में प्रवेश किया। नगर में इतनी भीड़ थी कि लोगों के शरीर से शरीर टकरा रहे थे। गर्व से फूली हुई अयोध्या के हर्ष की आज सीमा नहीं थी। राम आगमन के इस अवसर पर नगर-निवासियों की भीड़ अपनी पूर्णता के के साथ उमड़ पड़ी। नगर कन्याएँ प्रभु रामचन्द्रजी पर खील, फूल और धन धान्य की वर्षा कर रही थीं। कुल-वधुए सिर पर भरे हुए शुभ घड़े रखे हुए मगल गीत गा रही थीं "हमारे प्रभु रामचन्द्रजी ने पुनः हमारे घर में पदार्पण किया है। हमने जीवन के चारों फल धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इसी लोक में प्राप्त कर लिए।"

द्वार-द्वार पर उसको देने का। (पृ० ४६३-४६४)

शब्दार्थ—शील-सीला = शील सम्पन्न। शालाएं=भवन। चौंर=चवर। प्रणति-युतों=प्रणाम करते हुए।

भावार्थ—प्रभु के स्वागत में नगर के प्रत्येक द्वार पर शुभ मालाएं झूल रही थीं। शील सम्पन्न स्त्री पुरुषों का जिनमें वास था ऐसे भवनों की वायु में हिलती हुई ध्वजाए मानो प्रभु पर पखा झल रही थीं। राजमार्ग पर फूलों के पाँवड़े बिछे हुए थे। भरत प्रभु रामचन्द्रजी के ऊपर छत्र उठाए हुए थे और शत्रुघ्न चवर ढुला रहे थे।

राम अभी राज्य-तोरण पर पहुँच भी नहीं पाए थे कि माताओं के सोए भाग जाग उटे। वे इतनी आत्म विभोर हो गईं कि कण्ठ अवरुद्ध हो जाने के कारण पुत्रों से न तो कुछ बोल सकीं और नेत्रों में अश्रु जल भर आने के कारण न उन्हें भली भाँति देख सकीं। प्रणाम करते हुए पुत्रों को उठा उठा कर वे उनसे रोती हुई लिपट गईं। हर्ष के बोझ से तीनों माताएं थर-थर काँप रही थीं। हृदय भर-भरकर वे तीनों आज हीरे मोती लुटा रही थीं। राम, लक्ष्मण और सीता की वे आरती उतार रही थीं। भला ऐसी कौन-सी वस्तु

थी जिसे अपने पुत्रों पर न्यौछावर करने की अभिलाषा उनके हृदय में नह
थी। वास्तव में यही तो वह दिन था जबकि विवाह के पश्चात् घर में व
और वधू का प्रवेश करवाया जाता है और सबको अभिलषित वस्तु हर्ष पूर्व
उपहार स्वरूप भेंट की जाती है।

"बहू, बहू, वैदेहि पलता आऊँ।" (पृ० ४६४)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—माता कौशल्या ने सीता को सम्बोधित करते हुए कहा '
वधू सीता, बनवास में तूने बड़े कष्ट सहे।" उत्तर में सीताजी बोलीं "हे म
बनबास के कष्ट सहन करने के उपरात तो मेरे सुख आज दु
हो गए हैं।"

कौशल्या माता ने राम से कहा—"हे राम, आज तुझको पाकर
ऐसा लगता है कि तू फिर मेरी कोख में आगया है।" लक्ष्मण को सम्बो
करते हुए वे फिर कहने लगीं "हे लक्ष्मण, मेरी गोद तेरे लिए फिर f
शैया बने।" राम ने माता से कहा "हे माता, मेरी यही अभिलाषा है
जन्मजन्मातर में तुम्हारी ही कोख से मेरा जन्म हो। इसी प्रकार लक्ष्म
कहा तुम्हारी ही गोद में मेरा पालन हो।"

सुप्रभु प्रभु ने कहा फल की?" (पृ० ४६४–४६५)

शब्दार्थ—सरल है।

भावार्थ—तेजस्वी प्रभु रामचन्द्रजी ने माता सुमित्रा से झुककर कहा
माता, तुम्हारे लक्ष्मण को एकबार खोकर मैंने उसे प्राप्त किया। तुमने लक
को जो मुझे सौंपा था उसकी मैं रक्षा भी न कर सका। तुम्हारे पुण्य धन
जिसके कारण इस द्रुम रूप लक्ष्मण ने पुन. जीवन प्राप्त किया।" सु
ने इस पर उत्तर दिया "परतु हे राम मै तो लक्ष्मण को तुम्हें ही सौंप
हूँ। फिर जिसे एक बार समर्पित कर चुकी हूँ, उसे वापिस कैसे ले सकती
मेरे दूसरे पुत्र शत्रुघ्न का भार भरत ने ले लिया है। मैं तो अब स
निश्चिन्त हो गई हूँ। जब मैंने तुम्हें प्राप्त कर लिया फिर किस फल
इच्छा शेष रही अर्थात तुमको पाकर अब मुझे किसी फल की अभि
नहीं है।"

भावार्थ—बहुत दिनो की मनोकामना पूर्ण होने पर उर्मिला का रोम रोम उल्लास में पगा हुआ था। सखी ने इस पर विनोद पूर्वक उससे कहा "इस आनन्द के रग को तुम कहाँ छिपाए हुए थीं ? आज के सुन्दर प्रभात में बहुत दिनों के स्वप्न सत्य बनने जा रहे हैं। (विरह रूपी रात्रि में उर्मिला ने अपने पति के गौरवमय जीवन के जो स्वप्न देखे थे, आज के सुप्रभात में वे स्वप्न सत्य सिद्ध होने जा रहे थे। क्योंकि पति लक्ष्मण सकुशल और अपरिमित गौरव लेकर लौट रहे थे।) परन्तु हे सखि तुम्हारे वे गीत कहा विलीन होगए जब कि उन गीतों का सुनने वाला आज यहाँ आ गया है। (अर्थात् वस्त्राभूषणों से तुमने अपने को क्यों नहीं सजाया, जिससे सुशोभित तुम्हारे सुन्दर रूप को देखने का अधिकारी यहाँ आने वाला है)। आज तुम्हारा वाँया नेत्र फड़क रहा है, हृदय आनन्द से प्रफुल्लित है। अब भी क्या हे सुन्दरी तुम्हें किसी अशुभ बात का सशय अथवा डर है ? हे सखि आओ, तनिक तुम्हारा शृङ्गार कर के अपनी बरसों की आकाक्षा पूर्ण कर लू और अपने को तुम पर न्यौछावर कर दूँ।

"हाय ! सखी, शृ गार ही होती है।" (पृ० ४६६)

भावार्थ—उर्मिला उत्तर देती है "हे सखि, क्या अब भी शृ गार मुझे शोभा देंगे ? क्या विविध वस्त्रों और आभूषणों से सजे मेरे तन को देखकर ही वे (मेरे पति लक्ष्मण) मोहित होंगे ? मैंने जो "दग्ध वर्तिका" चित्र की रचना की है, क्या तू उस दीप शिखा की लौ को फिर से प्रज्ज्वलित करना चाहती है। अर्थात मैंने तो पति प्रेम में अपने जीवन की जलती हुई दीप शिखा पर अपने रूप यौवन की पहले ही आहुति चढ़ा दी है, अब तू उस रूप यौवन को फिर से जगाना चाहती है ? नहीं नहीं वस्त्र आभूसणों से सजी हुई मुझको देखकर मेरे पति इस प्रकार धोका न खावें। वे तो मेरे सच्चे स्वरूप को ही अपनी आँखों के सामने पावें। शूर्पणखा की भाँति अपने शृ गार से मै उन्हें लुभाना नहीं चाहती। यह क्या हे सखि ! तुम तो रो रही हो। अरे हृदय की प्रीति तो हृदय से होती है। शरीर के शृ गार से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

"किन्तु देख   पाऊँगी मैं ?" (पृ० ४६७)

शब्दार्थ—भूषण-वसन=गहने कपड़े। इष्ट=चाहे हुए। यौवन उन्माद= यौवन का नशा अथवा मस्ती।

भावार्थ—सखी ने इस पर उर्मिला से कहा—परन्तु तुम्हारा यह मलिन वेश देखकर वे (लक्ष्मण) कितने दुखी होंगे। उर्मिला कहती है "तब फिर जितने चाहो, उतने वस्त्र और आभूषणों से मेरा शृङ्गार कर दो। परन्तु हे सखि मैं पहले जैसा यौवन का उन्माद कहाँ से लाऊँगी। अपने खोए हुए यौवन को पुनः कहाँ से प्राप्त करूंगी ?"

"अपराधी-सा   पद-रज धोऊं। (पृ० ४६७)

शब्दार्थ-पानी=गौरव, प्रतिष्ठा। प्रीति-स्वाति=प्रेम रूपी स्वाति (स्वाति एक नक्षत्र) शुक्ति = सीप। राजहंसिनी=राजरानी यहाँ उर्मिला से अभिप्राय है। रीति-मुक्ता=नीति रूपी मोती।

भावार्थ—सखि कहती है "आज तुम्हारा वही यौवन धन ही तो अपराधी की भाँति तुम्हारे पास आने वाला है। चौदह वर्ष से तुम्हारे हृदय में छाई हुई मलिनता आज दूर होने वाली है। कल तक तुम अपने प्रियतम के वियोग में आँसू बहाया करती थीं, उनसे मिलने के लिए अपनी आतुरता प्रगट किया करती थी किन्तु आज उनसे मिलन के अवसर पर मान किए बैठी हो। "हे सखि भला यह कौनसा स्वर है जिसकी तान आज तुम छेड़ने बैठी हो, (अर्थात् यह कैसी नीति है, जिसे आज तुम प्रयोग मे ला रही हो।) मुर्झाई हुई कमलिनी सूर्य की किरणें पाकर पुनः खिल जाती हैं। लेकिन विना ओस की बूंदो के वह खिली हुई कमलिनी शोभा नहीं पाती।" इस पर उर्मिला कहती है "हे सखि क्या मेरी इन आँखो में आज आँसू नहीं है ? तो सखि ऐसी आँखें फूट जाए जिनमें जीवन का तेज न हो।"

सखी ने कहा "हे उर्मिला अब तक तुमने सीप बनकर प्रेमरूपी स्वाति नक्षत्र की बूंदों का पान किया है। अतएव हे राजहंसिनी अब तुम प्रीतिरूपी स्वाति नक्षत्र के जल से बनी नीतिरूपी मुक्ताओ को चुगो। अर्थात राजरानी की भाँति राजकुलोचित नीति का पालन करो। (यह स्वय सिद्ध नीति है कि स्वाति नक्षत्र का जल सीप मे गिरकर मोती बन जाता है। वियोग के दिनों मे

उर्मिला ने जो आँसू बहाए थे वे ही आज जैसे मिलन के इस अवसर पर आनन्द के मोती बन गए हैं। सखि उर्मिला से उन्हीं मिलन रूपी आनन्द मोतियों को चुगने के लिए शृङ्गार आदि से सज कर राजकुलोचित रीति का पालन करने का आग्रह करती है।) उर्मिला ने उत्तर में कहा—"हे सखि मैंने वियोग के दिन रोते हुए व्यतीत किए हैं। आज के मिलन के अवसर पर भी मैं रोना चाहती हूं। हे सखि मैं अपने आँसुओं के जल से उनके पैरों को धोऊँगी। उनका स्वागत करूँगी। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहती।

जब थी तब थी मेरे मन चीते। (पृ० ४९७-४९८)

शब्दार्थ– बाला = बालिका। ढीठ=हठी। मन चीते=मन की इच्छाएँ।

भावार्थ—उर्मिला कहती है "हे सखि किसी समय मैं उनकी रानी थी परन्तु वह वर्षों पहले की बात थी बात आज पुरानी पड़ गई है। अब तो उनकी अर्द्धाङ्गिनी बन उनसे समानता का अधिकार प्राप्त कर उन पर शासन नहीं करना चाहती परन्तु मैं तो सेविका बनकर उनके चरणों की सेवा करना चाहती हूँ। हे सखि शरीर से चाहे मैं युवती हूँ अथवा बालिका, परन्तु मन से मैं क्या हूँ यह मैं स्वय भी नहीं जानती। तू ही बता आज मैं अपने प्रियतम के रूप में उस मिलन के सपने को सत्य होता हुआ देखू अथवा शृङ्गार से सजधज कर उनके सामने अपना प्रदर्शन करूँ। इसीलिए हे सखि इस अवसर पर शृङ्गार करना उचित नहीं। यह धुली हुई स्वच्छ धोती ही शृगार के नाम पर मेरे लिए बहुत है। मेरी लज्जा तो उनके हाथों में है। वे चाहे जैसा सोचें यह तो उनके अधिकार में है। तू तो व्यर्थ ही चिंता कर रही है। मेरा हृदय आज हर्ष के कारण फूला नहीं समा रहा। तू इसे अपनी अङ्क में भर ले। हे सखि देख तो सही। यह सध्या की लालिमा भी कितनी धृष्ट है। वे दिन तो समाप्त होगए जब मै मान करने की अधिकारिणी थी। इसलिए मिलन के इस अवसर पर भला मै क्या मान करूँगी? फिर भी मेरे हृदय की समस्त इच्छाएँ पूर्ण होगई हैं।

टपक रही पर थी। (पृ० ४९८)

शब्दार्थ—कुज शिला=उपवन का चबूतरा। शेफाली=फूलों का वृक्ष विशेष। सुमन=फूल, अच्छा मन।

भावार्थ-चौदह वर्ष की लम्बी अवधि से लौटनेवाले प्रियतम को कुछ भेंट देने के लिए उर्मिला अपनी सखि से कहती है ' देख सखी वह कुंज शिला ाली शेफाली फूलो से लदी हुई है। तू उसके नीचे से दो चार फूल चुनकर ा। हे सखि वे बन से लौटकर आए हैं, इसलिए उन जैसे बनवासी के लिए मन अर्थात् फूल और अच्छे मन की भेंट ही उचित रहेगी। इतने में ही लक्ष्मण वहाँ यह कहते हुए प्रविष्ट होगए "हे प्रिये, यह भौंरा वह सुमन तो हुत पहले ही प्राप्त कर चुका है।" उर्मिला ने चकित होकर अपने प्रियतम ो देखा। सखी न जाने किधर चली गई थी और चरणों में गिरती हुई र्मिला लक्ष्मण के हाथो मे थी अर्थात लक्ष्मण ने उसे बीच में ही रोक कर अपने हाथों में उठा लिया।

लेकर मानो विश्व नए अहेरी।' (पृ० ४६८-४६९)

शब्दार्थ—अन्तःपुर=रनिवास, राजमहल का भीतरी भाग। मुखर=बहुत अधिक बोलने वाली वाचाल। चेरी=दासी। अहेरी=शिकारी।

भावार्थ—उर्मिला और लक्ष्मण के उस मिलन से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उस अन्तःपुर में ससार का विरह लेकर दोनों एक दूसरे के हृदय में समा रहे थे। उधर दासी वाचाल मैना को कुछ कहने से रोक रही थी, फिर भी मैना बोल ही उठी "ये शिकारी हत हरिणी छोड कर क्यो गए थे?"

"नाथ, नाथ अपना स्वामी।" (पृ० ४६९)

शब्दार्थ—पाद पल्लवों=चरणकमलों। परिधि=सीमा। सुधांशु=चन्द्रमा। सताप = दुख। विमोचन=नष्ट करने वाला। हिमधौत=बर्फ के समान रूप, श्वेत। रोचन=रोचक, शोभायमान लगने वाला। अनावृत = खुला हुआ, बिना किसी आवरण का।

भावार्थ—आत्मविभोर सी होकर उर्मिला ने पूछा "क्या सचमुच ही आज मैंने तुम्हें पा लिया।" लक्ष्मण ने उत्तर दिया "हाँ प्रिये, आज ही वह दिन आया है। मेघनाद की शक्ति सहन करके भी मेरी यह छाती अब भी क्या तुम्हारे पादपल्लवों के स्पर्श से शीतल न होती? जिस दिन वन में आर्या सीताजी के बिना प्रभु रामचन्द्र जी का हृदय रोया था वास्तव में उसी दिन आत्मविस्मृत सा होकर ही मै तुम्हें प्राप्त हुआ था। सुनो, पूर्ण रूप से

मैंने तुम्हें उस दिन प्राप्त किया था जब कि हनुमान ने आकर प्रभु को आर्या सीता का विरह सुनाया था। अब तक तो वस्त्राभूषण आदि सौंदर्य के उपकरणों से ही तुमने मुझे रिझाया था, परन्तु आज तो तुमने स्वय अपने आपको ही मुझे समर्पित कर दिया है। अपने रूप सौंदर्य के कारण अब तक तुम केवल मेरे नेत्रों में ही बसी हुई थी, परन्तु आज तुमने मेरे हृदय में अपना अटल स्थान बना लिया है। जिसके प्रकाश की सीमा नहीं है ऐसे चन्द्रमा के समान, समस्त दुखों को नष्ट करने वाला, धूल से रहित वर्फ के समान निर्मल, सुमन की भाँति नेत्रों को रजनकारी अपनी ही आभा से उदित आडम्बर रहित, मेरे सम्मुख आज तुम्हारा यह जो नैसर्गिक और प्रकृत रूप प्रगट हुआ है वह धन्य है। अब तक जो लक्ष्मण तुम्हारे रूप सौंदर्य पर लुब्ध था, आज वह वास्तव में तुम्हारा स्वामी है। अब वह तुम्हारे रूप पर नहीं तुम्हारे गुणों पर अनुरक्त है।

"स्वामी, स्वामी, जन्म चढ़ती बेला!" (पृ० ४६६)

शब्दार्थ—खेला=क्रीड़ा। चढ़ती वेला=जीवन का मध्याह्न काल, उठता यौवन।

भावार्थ—उर्मिला ने कहा—स्वामी, स्वामी, मेरे जन्म जन्म के स्वामी, अब वे पहिले के समान रात दिवस और सध्या-सवेरा कहाँ है? अपनी वे आनन्द से परिपूर्ण सरस क्रीड़ाएँ कहाँ खोगई। हे प्रिय, जीवन की वह चढ़ती हुई वेला अब कहाँ वह तो समाप्त होगई।

काँप रही थी ईश्वर है हमारा।" (पृ० ५००)

शब्दार्थ—अलक्ष = भविष्य। समक्ष=वर्त्तमान।

भावार्थ—उर्मिला की शरीर रूपी लता रह रह कर काँप रही थी। उसके आँसू कपोलों पर बह बह कर टपक रहे थे। उर्मिला को सान्त्वना प्रदान करते हुए लक्ष्मण ने कहा "हे प्रिये, यौवन के वे दिन तो वर्षा की बाढ के समान थे। यदि वे बीत गए तो उन्हें व्यतीत हो जाने दो। उनकी स्मृति में दुखी मत बनो। अब तो शरद् की सी पवित्र गम्भीरता ही जीवन में वाँछनीय है। (यौवन वर्षा जल की भाँति उद्दाम होता है और प्रौढावस्था शरद के समान स्थिर और गभीर। यौवन की चढ़ती वेला के दिन समाप्त होने से दुखी

उर्मिला को लक्ष्मण इसी पवित्र और गभीर जीवन के स्वरूप का बोध कराते हैं।) सपूर्ण पृथ्वी को आज रामराज्य के गीत गाने दो। हमारा भाग्य हमारे प्रति प्रेम भाव रखकर जो कुछ हमें प्रदान कर रहा है उसे स्वीकार करो। सुनो, जो अपना आराध्य है वह सदैव अपने समीप ही रहता है। (दूर होकर भी वह हमारे हृदय में बसा रहता है।) आओ हम अपने जीवन में यथा शक्ति उसी की साधना करें जो वास्तव में इस जीवन का साध्य है। भविष्य में क्या होगा, यह तो भविष्य के गर्भ में ही निहित है, परन्तु यह वर्त्तमान जो प्रत्यक्ष रूप में हमारे सम्मुख है उसे हम क्यों न स्वीकार करें ? अतः अलक्ष्य की चिंता छोड़ हमारे प्रेम की सरिता सदैव प्रत्यक्ष की ओर प्रवाहिता रहे। यह आदर्श ही हमारा ईश्वर है।

स्वच्छतर अम्बर ' वाला व्योम। (पृ० ५०१)

शब्दार्थ—अम्बर=वस्त्र, आकाश। सोम=रस। याग = यज्ञ। जायापती= पति-पत्नी, लक्ष्मण-उर्मिला। आपा = स्वतत्र अस्तित्व। होम=आहुति देना। काश-कुश—एक प्रकार की लम्बी घास। मेदिनी=पृथ्वी।

भावार्थ—स्वाद, मिठास और सुगन्ध से सुवासित वायु रूपी रस अत्यन्त निर्मल आकाश रूपी वस्त्र से छन कर आ रहा था (पेय पदार्थ वस्त्र में छाने जाते हैं।) त्यागी और प्रेम यज्ञ के व्रती वे पुण्य आत्मा पति पत्नी लक्ष्मण तथा उर्मिला परस्पर आलिंगन मे आवद्ध उस प्रेम यज्ञ में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की आहुति देकर अर्थात एक दूसरे में अपने को लीन कर उस मधुर रस का पान कर रहे थे। उस समय पृथ्वी के कास कुस जैसे तुच्छ से तुच्छ पदार्थों से लेकर समुद्र के विशाल पदार्थों तक किसका अङ्ग अत्यंत प्रसन्नता से भरा हुआ नहीं था। उस दम्पत्ति पर हर्ष से उत्फुल्ल चन्द्रमा अपनी किरणों का चँवर ढोल रहा था और दिव्य दीप अर्थात तारों से भरा आकाश उनकी आरती उतार रहा था।

———

उर्मिला को लक्ष्मण इसी पवित्र और गंभीर जीवन के स्वरूप का बोध कराते हैं।) सपूर्ण पृथ्वी को आज रामराज्य के गीत गाने दो। हमारा भाग्य हमारे प्रति प्रेम भाव रखकर जो कुछ हमें प्रदान कर रहा है उसे स्वीकार करो। सुनो, जो अपना आराध्य है वह सदैव अपने समीप ही रहता है। (दूर होकर भी वह हमारे हृदय में बसा रहता है।) आओ हम अपने जीवन में यथा शक्ति उसी की साधना करें जो वास्तव में इस जीवन का साध्य है। भविष्य में क्या होगा, यह तो भविष्य के गर्भ में ही निहित है, परन्तु यह वर्तमान जो प्रत्यक्ष रूप में हमारे सम्मुख है उसे हम क्यों न स्वीकार करें ? अतः अलक्ष की चिंता छोड़ हमारे प्रेम की सरिता सदैव प्रत्यक्ष की ओर प्रवाहित रहे। यह आदर्श ही हमारा ईश्वर है।

स्वच्छतर अम्बर ' वाला व्योम। (पृ० ५०१)

शब्दार्थ—अम्बर=वस्त्र, आकाश। सोम=रस। याग = यज्ञ। जायापती= पति-पत्नी, लक्ष्मण-उर्मिला। आपा = स्वतंत्र अस्तित्व। होम=आहुति देना। काश-कुश—एक प्रकार की लम्बी घास। मेदिनी=पृथ्वी।

भावार्थ—स्वाद, मिठास और सुगन्ध से सुवासित वायु रूपी रस अत्यन्त निर्मल आकाश रूपी वस्त्र से छन कर आ रहा था (पेय पदार्थ वस्त्र में छाने जाते हैं।) त्यागी और प्रेम यज्ञ के व्रती वे पुण्य आत्मा पति पत्नी लक्ष्मण तथा उर्मिला परस्पर आलिंगन में आबद्ध उस प्रेम यज्ञ में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की आहुति देकर अर्थात एक दूसरे में अपने को लीन कर उस मधुर रस का पान कर रहे थे। उस समय पृथ्वी के कास कुस जैसे तुच्छ से तुच्छ पदार्थों से लेकर समुद्र के विशाल पदार्थों तक किसका अङ्ग अत्यंत प्रसन्नता से भरा हुआ नहीं था। उस दम्पत्ति पर हर्ष से उत्फुल्ल चन्द्रमा अपनी किरणों का चँवर ढोल रहा था और दिव्य दीप अर्थात तारों से भरा आकाश उनकी आरती उतार रहा था।